सोमनाथ महालय

ऐतिहासिक उपन्यास
(विद्यार्थी संस्करण)

लेखक
आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
२७३६, कूचा चेलाँ, दरियागंज,
दिल्ली-६

यह बृहद् 'सोमनाथ' का संक्षेप है जो विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है।
यह विद्यार्थी संस्करण सर्वथा निर्दोष और सात्विक है।

स्वाईनार्क प्रिन्टर्ज, ४७६ मटिया महल, दिल्ली-६

इस उपन्यास के विषय में

जहाँ समुद्र की गम्भीर जल-राशि चट्टानों पर आज भी सिर धुनती है, जहाँ भारत भर के हिन्दुओं का महाप्राण जागृत ज्योतिर्लिङ्ग स्थापित था जहाँ हीरे, मोती कङ्कड़-पत्थरों की तरह बखरे जाते थे जिसके अपार वैभव की कहानियाँ देशदेशान्तरों में विख्यात थी, जहाँ रूप और यौवन से भरी देवांगनाओं जैसी सैंकड़ों देवदासियाँ अपने नृत्य और गान से महालय के प्रांगण में दर्शकों के चित्त को आह्लादित करती थीं और जहाँ भगवान सोमनाथ के ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा-अर्चना के लिए देश-देशान्तर के राजा-महाराजा महालय की सीढ़ियों पर महीनों पड़े रहते थे—उस अतीत काल के प्रभासपट्टन पर आज भी समस्त गुजरात गर्व करता है।

कैसे गजनी का धूमकेतु उस पर भूचाल की भाँति आ धमका, कैसे सम्पूर्ण गुजरात के प्राण वहाँ आ जूझे कैसे वह गगनस्पर्शी सोमनाथ महालय देखते-ही-देखते भूमिसात होकर मलवे का ढेर हो गया, कैसे वहाँ की युग-युग की संचित सम्पदा ऊँटों और बर्बर सैनिकों के घोड़ों पर लदकर उडन्छू हो गई—यह सब वर्णन आपको यहाँ पढ़ने को मिलगा।

आचार्य की सामर्थ्यवती लेखनी की करामात से आप इस उपन्यास में तेरहवीं शताब्दी में ध्वस्त सोमनाथ महालय को अपने मानस नेत्रों से एकबार स्वर्ण, रत्न और नर मुण्डों से परिपूर्ण, रूप और यौवन से मत्त देवदासियों की नूपुर-ध्वनि से गुञ्जित, सोलंकी भीमदेव की शमशेर से चमत्कृत और नवनीत कोमलांगी चौला की सुषमा से सुशोभित और कौल, अघोरी, कापालिक और तान्त्रिकों के जटिल मुमातक प्रयोगों से व्याप्त देखेंगे।

बाल विधवा शोभना वैधव्य की आपदाओं से व्याप्त किस प्रकार अपने प्रियतम देवस्वामी को जो दासीपुत्र होने के कारण, हिन्दू जाति में घृणा और निरादर की दृष्टि से अपमानित किया जाकर मुसलमान बन गया था—

धर्मद्रोही हो जाने पर अपने हाथों से क़त्ल करके देश और राजभक्ति का अत्युच्च आदर्श उपस्थित करती है और अन्त में किस प्रकार मानवीय कोमलतम भावना, दर्प, सेवा, दया, कर्तव्य और औदार्य की पराकाष्ठा दिखाकर आत्मसमर्पण करती है, और किस प्रकार प्रान्तीय राजा महाराजा पारस्परिक कलह, ईर्ष्या, द्वेष और फूट के कारण सगठित न हो सके और अन्त में अपने देश और राज्य को खो बैठे, एव किस प्रकार महालय के परमरक्षक और विधाता गगसर्वज्ञ के प्रताप और प्रभाव से जलभुनकर सोमनाथ की गद्दी को प्राप्त करने के लोभ से लुब्ध होकर रुद्रभद्र और सिद्धेश्वर जैसे धर्म-द्रोही तान्त्रिकों ने शत्रु से मिलकर गग सर्वज्ञ का सर्वनाश तो कर ही दिया, साथ में देश के लाखों प्रजाजनों का भी महमूद के हाथों विध्वस कराया और देश को अपने लोभ और स्वार्थ के वश विदेशी महमूद के हाथों बेच दिया और बाद में इस घोर घातक पाप के फलस्वरूप स्वय महमूद की विश्वासपात्रता प्राप्त करने में असफल रहकर महमूद के सकेत से मौत के घाट उतारे गये और साथ में उनके अघोरी पापाचारी साथी भी—इसका रोमाचकारी वर्णन पढ़ना हो तो इस उपन्यास में देखिए।

देश स्वतन्त्र हो चुका है और इस स्वातन्त्र्य-युग में देश की भावी सन्तानों में देशभक्ति और राज्यभक्ति के महामन्त्र को फूंकना हमारा सर्वप्रथम और सर्वोच्च कर्तव्य है—इस दृष्टि से यह उपन्यास हमारे नवयुवकों के लिए सर्वथा उपयोगी रहेगा क्योंकि इसमें देश-द्रोह के भयानक परिणाम उपस्थित कर सगठित शक्ति का प्रयत्न साम दर्शनवत स्पष्ट और तेजोमय दर्शाने का भरपूर यत्न किया गया है। अछूत जातियों के प्रति हमारी घृणित और अपमानजनक धर्मनीति ने किस प्रकार अपने ही घर में अपने शत्रु उत्पन्न किये इसका भयकर परिणाम आपको इस उपन्यास में फतहमुहम्मद के रूप में मिलेगा।

इस उपन्यास के पढ़ने से मुझे विश्वास है कि हमारे छात्र भली प्रकार इस तथ्य को हृदयगम कर सकेंगे कि जातियों के उत्थान-पतन—विकास और विनाश के मूलाधार कारण क्या हैं। इसके सिवा चरित्र की महानता, शौर्य और निष्ठा का माहात्म्य भी वे इस उपन्यास में भलीभांति देख सकेंगे।

परिच्छेद-सूची

१ : प्रभासपट्टन

सौराष्ट्र के नैऋत्य कोण में समुद्र तट पर वेरावल नाम का एक छोटा-सा बन्दरगाह और आखात है। वहाँ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ और गुंजान है। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य भी अपूर्व है। मीलों तक फैले हुए सुनहरी रेत पर क्रीडा करती रत्नाकर की उज्ज्वल फेनराशि हर पूर्णिमा को ज्वार पर अपूर्व शोभा विस्तार करती है। आखात के दक्षिणी भाग की भूमि कुछ दूर तक समुद्र में धँस गई है, उसी पर प्रभासपट्टन की अतिप्राचीन नगरी बसी है। यहाँ एक विशाल दुर्ग है, जिसके भीतर लगभग दो मील विस्तार का मैदान है। दुर्ग का निर्माण सन्धिरहित भीमकाय शिलाखण्डों से हुआ है। दुर्ग के चारों ओर लगभग पच्चीस फुट चौड़ी और इतनी ही गहरी खाई है, जिसे चाहे जब समुद्र के जल से लबालब भरा जा सकता है। दुर्ग के बड़े-बड़े विशाल फाटक और अनगिनत बुर्ज हैं। दुर्ग के बाहर मीलों तक प्राचीन नगर के खंडहर बिखरे पड़े हैं। टूटे-फूटे प्राचीन प्रासादों के खंडहर, अनगिनत टूटी फूटी मूर्तियाँ, उस भूमि पर किसी असह अघट घटना के घटने की मौन सूचना-सी दे रही हैं। दुर्ग का जो परकोटा समुद्र की ओर पड़ता है, उससे छूता हुआ और नगर के नैऋत्य कोण के समुद्र में घुसे हुए ऊँचे शृङ्ग पर महाकालेश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर के ध्वंस दीख पड़ते हैं। मन्दिर के ये ध्वंसावशेष और दूर तक खड़े हुए टूटे-फूटे स्तम्भ मन्दिर की अप्रतिम स्थापत्य-कला और महत्ता की ओर संकेत करते हैं।

अब से लगभग हज़ार वर्ष पहले इसी स्थान पर सोमनाथ का कीर्तिशाली महालय था, जिसका अलौकिक वैभव बद्रिकाश्रम से सेतुबन्ध रामेश्वर तक, और कुमारी कन्या से बंगाल के छोर तक विख्यात था। भारत के कोने-कोने से

श्रद्धालु यात्रियों के ठठ के ठठ बारहो महीना इस महातीर्थ में आते और सोमनाथ के भव्य दर्शन करते थे। अनेक राजा-रानी, राजवधी, धनी-कुबेर, श्रीमन्त-साहूकार यहाँ महीनों पड़े रहते और अनगिनत धन, रत्न, गाँव, धरती, सोमनाथ के चरणों पर चढ़ा जाते थे। इससे सोमनाथ का वैभव अवर्णनीय एवं अतुलनीय हो गया था।

उन दिनों भारत में वैष्णव धर्म की अपेक्षा शैव धर्म का अधिक प्राबल्य था। सोमनाथ महालय के निर्माण में उत्तर और दक्षिण दोनों ही प्रकार की भरतखण्ड की स्थापत्य-कला की पराकाष्ठा कर दी गई थी। यह महालय बहुत विस्तार में फैला था, दूर से उसकी धवल दुग्धावलि चाँदी के चमचमाते पर्वत-शृङ्ग के समान दीख पड़ती थी। सम्पूर्ण महालय उच्चकोटि के श्वेत मर्मर का बना था। महालय के मण्डप के भारी-भारी खम्भों पर हीरा, मानिक, नीलम आदि रत्नों की ऐसी पच्चीकारी की गई थी कि उसकी शोभा देखने से नेत्र थकते नहीं थे। जगह-जगह खम्भों पर सोने-चाँदी के पत्र चढ़े थे। ऐसे छः सौ खम्भों पर महालय का रंग-मण्डप खड़ा था। इस मण्डप में दस हजार से भी अधिक दर्शक एक साथ सोमनाथ के पुण्य-दर्शन कर सकते थे। इस मण्डप में द्विजमात्र ही जा सकते थे। मण्डप के गर्भगृह में सोमनाथ का अलौकिक ज्योतिर्लिङ्ग था। गर्भगृह की छत और दीवार पर रत्ती-रत्ती रत्न और जवाहरात जड़े थे। इस कारण साधारण घृत का दीया जलने पर भी वहाँ ऐसी झलमलाहट हो जाती थी कि आँखें चौंधिया जाती थीं। इस भूगर्भ में दिन में भी सूर्य की किरणें प्रविष्ट नहीं हो सकती थीं। वहाँ रात-दिन सोने के बड़े-बड़े दीपकों में घृत जलाया जाता था तथा चन्दन, केसर, कस्तूरी की धूप रात दिन जलती रहती थी, जिसकी सुगन्धि से महालय के आसपास दो-दो योजन तक पृथ्वी सुगन्धित रहती थी। रंग-मण्डप के चिकने, स्वच्छ फर्श पर देश-देश की उच्च कुल की महिलाएँ रत्नाभूषणों से सुसज्जित, रूप-यौवन से परिपूर्ण, गुणगरिमा से युक्त जगह-जगह बैठी श्रद्धा और भक्ति से नत-मस्तक कोमल स्वर से भगवान सोमनाथ का स्तवन घण्टों करती रहती थीं। नियमित पूजन और नित्यविधि के समय पाँच सौ वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर

वेदपाठ करते और तीन सौ गुणी गायक देवता का विविध वाद्यों के साथ स्तवन तथा इतनी ही किन्नरियों और अप्सरा-सी देवदासी-नर्तकियाँ नृत्यकला और उनके भक्तों को रिझाती थीं। नित्य विशाल चांदी के सौ घड़े गंगाजल ज्योतिर्लिंग का स्नान होता था, जो निरंतर हरकारों की डाक लगाकर एक हजार मील से अधिक दूर हरद्वार से मंगवाया जाता था। स्नान के बाद बहुमूल्य द्रव्यों से तथा सुगन्धित जलों से लिंग का अभिषेक होता था, इसके बाद शृंगार होता था। सोमनाथ का यह ज्योतिर्लिङ्ग आठ हाथ ऊँचा था। इस कारण स्नान, अभिषेक, शृंगार आदि एक छोटी-सी सोने की सीढ़ी पर चढ़ कर किये जाते थे। शृंगार सम्पन्न हो जाने पर आरती होती थी, जिसमें शंखनाद, चौघड़ियाँ, घण्टे-घड़ियाल का महाघोष होता था। यह आरती चार योजन विस्तार में सुनी जाती थी। मण्डप में दो सौ मन सोने की ठोस शृंखला से लटका हुआ एक महाघंट था, जिसका बादल की गरज के समान घोर रव मीलों तक सुना जाता था। सोमनाथ महालय के चारों द्वारों पर एक-एक पहर के अन्तर से नौबत बजती थी। इस प्रकार ऐश्वर्य और वैभव से इस महातीर्थ की महिमा दिग्दिगन्त में व्याप्त थी। इन सब कामों में अपरिमित द्रव्य खर्च होता था, पर उससे महालय के अक्षय कोष में कुछ भी कमी नहीं होती थी। दस हजार से ऊपर गांव महालय को राजा-महाराजाओं के द्वारा अर्पण किये हुए थे। महालय के गगनचुम्बी शिखर पर समुद्र की ओर जो भगवे रंग की ध्वजा फहराती थी, वह दूर देशों के यात्रियों का मन बरबस अपनी ओर खींच लेती थी। महालय के शिखर के स्वर्ण-कलश सूर्य की धूप में अनगिनत सूर्यों की भांति चमकते थे।

महालय के चारों ओर असंख्य छोटे-बड़े मन्दिर, घर, महल और सार्वजनिक स्थान थे जो मीलों तक फैले थे, तथा जिन से महालय की बहुत शोभा बढ़ गई थी। इस महालय के संरक्षण के लिए चारों ओर काले पत्थरों का अत्यन्त दृढ़ परकोटा बंधा हुआ था, जिसमें स्थान-स्थान पर अठपहलू बुर्ज बने हुए थे। मैदान में चालीस हजार सैनिक एक-साथ खड़े रह सकें, इतना स्थान था। महालय की खाई में समुद्र का जल भर दिया जाता था, तब समुद्र के बीच द्वीप का-सा उसका दृश्य बन जाता था। परकोटे के भीतर नगर, बाजार,

[illegible] ओं के मकान आदि थे, जहा अनगिनत देश-देश के व्यापारी, शिल्पी और [illegible] कर्मचारी अपना-अपना कार्य करते तथा निवास करते थे। उनके आराम के लिए अनेक कुएँ, बावडी, तालाब, सर-सरोवर, उपवन आदि विद्यमान थे।

देश के भिन्न-भिन्न राजाओं की ओर से बारी-बारी महालय पर चाकरी-चौकसी होती थी। इसके अतिरिक्त महालय की ओर से भी एक सहस्र सिपाही नियत थे, जो सावधानी से महालय की करोडो की सम्पत्ति की तथा वहा के बसने वाले कोटयधीश व्यापारियो की सावधानी से रक्षा व्यवस्था करते थे।

प्रतिवर्ष श्रावण की पूर्णिमा और शिवरात्रि के दिन तथा सूर्य और चन्द्रग्रहण के दिन महालय में भारी मेले लगते थे, जिनमें हिमालय के उस पार से लेकर लंका तक के यात्री आते थे। इन मेलो में पाँच से सात लाख तक यात्री एकत्र हो जाते थे। इन महोत्सवो में पट्टन के सात सौ हज्जाम एक क्षण के लिए भी विश्राम नही पाते थे। दूर-दूर के राजा-महाराजा अपने-अपने लाव-लश्कर लेकर लम्बी-लम्बी मंजिलें काटते हुए, तथा मार्ग के कठिन परिश्रम को सहन करते हुए, प्रभासपट्टन में आकर जब महालय की छाया में पहुँचते, तो अपने जीवन को धन्य मानते थे। भरतखण्ड भर में यह विश्वास था कि भगवान सोमनाथ के दर्शन बिना किये मनुष्य-जन्म ही निरर्थक है। अनेक मुकुटधारी राजा और श्रीमन्त अपनी-अपनी मानता पूरी करने को सैकडो मील पाँव-प्यादे चल कर आते थे। इन सब कारणों से उन दिनो पट्टन नगर भारत भर में व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया था। मालव, हिमालय, अर्बुद, अग, बग, कलिंग के अतिरिक्त अरब, ईरान और अफगानिस्तान तक के व्यापारी तथा बंजारे कीमती माल ले-लेकर इन मेलों के अवसरों पर आकर अच्छी कमाई कर ले जाते थे। पट्टन के बाजार उन देश-देश की हल्की-भारी कीमत की जिन्सों और सामग्रियो से पटे रहते थे।

२ : निर्माल्य

सूर्य अस्त हो चुका था। सन्ध्या का अन्धकार चारों ओर फैल गया था केवल पश्चिम दिशा में एकाध बादल क्षण-क्षण में क्षीण होती अपनी लाल झलका रहा था, जिसका स्वर्ण प्रतिबिम्ब सोमनाथ महालय के स्वर्ण-शिखरों अपनी क्षीयमान झलक दिखा रहा था। इसी समय एक अश्वारोही कोटद्वार पर आकर खड़ा हो गया। कोटद्वार अभी बन्द नहीं हुआ था। प्रहरियों के प्रमुख ने आगे बढ़ कर पूछा—"तुम कौन हो, और कहां से आ रहे हो ?"

अश्वारोही कोई बीस-बाईस वर्ष का एक बलिष्ठ और सुन्दर तरुण था। उसकी मुख-चेष्टा तथा अश्व के रंग-ढंग देखने से प्रकट होता था कि वह दूर से आ रहा है, तथा सवार और अश्व दोनों ही बिल्कुल थक गये हैं। अश्वारोही ने थकित भाव से किन्तु उच्च स्वर से एक हाथ ऊंचा करके तथा दूसरे से अपने गट्ठर को सम्हालते हुए पुकारा—"जय सोमनाथ"।

"किन्तु तुम्हारा परिचय-पत्र ?"—प्रहरी ने उसके निकट जा कर्कश स्वर में पूछा।

"यह लो।"—अश्वारोही ने एक चांदी की नली रेशम की थैली से निकालकर उसे दी। प्रहरी ने नली खोलकर उसमें से एक पट्ट-लेख निकाला। उलट पुलट कर उसे पढ़ा। फिर कुछ भुनभुनाते हुए कहा—"तो तुम भरुकच्छ से आ रहे हो ?"

"जी हां, दद्दा चौलुक्य ने त्रिपुर-सुन्दरी के लिए निर्माल्य भेजा है, उसी को लेकर।" प्रहरी ने एक बार अश्व की पीठ पर लदे भारी गट्ठर पर दृष्टि डाली

सवीर "जय सोमनाथ" कहकर पीछे हट गया। अश्वारोही ने कोट के भीतर प्रवेश

कोट के भीतर बड़ी भीड़ थी। देश-देश के यात्री वहाँ भरे थे। उन दिनों प्रभासपट्टन समस्त भरतखण्ड भर में पाशुपत आम्नाय का प्रमुख केन्द्र विख्यात था। भारत के कोने-कोने से श्रद्धालु भक्तगण शिवरात्रि महापर्व पर सोमनाथ महालय में सोमनाथ के ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन करने को एकत्र हुए थे। इस वर्ष गजनी के अप्रतिरथ विजेता अमीर सुलतान महमूद के सोमनाथ पर अभियान करने की बड़ी गर्म चर्चा थी। इसी कारण दूर-दूर से क्षत्रिय क्षेत्रधारी महीपगण इस देव के लिए रक्त-दान देने और अनेक श्रद्धालु "कल न जाने क्या हो" इस विचार से एक बार भगवान सोमनाथ का दर्शन करने जल, थल दोनों ही मार्ग से ठठ के ठठ प्रभास में इकट्ठे हो गये थे। राजा-महाराजाओं के रथ, अश्व, गज, वाहन, सैनिक, सेवक, मोदी, व्यापारी, यात्री सब मिलाकर इस समय प्रभासपट्टन में इतनी भीड़ हो गई थी कि जितनी इधर कई वर्षों से देखी नहीं गई थी। पट्टन की सब धर्मशालाएँ और अतिथिगृह भर गये थे। बहुत लोग मार्ग में, वृक्षों के नीचे तथा घरों की छाया में विश्राम कर रहे थे।

यात्री धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ धर्मशाला में आश्रय खोजने लगा, पर धर्मशालाएँ सब भरी हुई थीं। एक भी कोठरी खाली न थी। धर्मशाला के बाहर की कोठरियों में गरीब यात्री, भिखारी और चौकीदार प्रहरीगण रहते थे। वहीं एक छोटी-सी कोठरी खाली देखकर अश्वारोही अश्व से उतर पड़ा। फिर उसने सावधानी से अपना गट्ठर उतारा। अश्व एक वृक्ष के नीचे बाँधकर वह कोठरी में गया। उसे साफ कर उसने यत्न से भार का गट्ठर खोला। इसके बाद चकमक जलाकर कोठरी में प्रकाश किया। उस धीमे और पीले प्रकाश में एक रूपसी बाला की भव्य क्षुद्र कोठरी के आसपास ठहरे हुए यात्रियों को दीख पड़ी। पर क्षण भर में ही युवक ने कोठरी का द्वार बन्द कर उसमें बाहर से ताला जड़ दिया और स्वयं अश्व का चारजामा बिछाकर कोठरी के द्वार पर ही लेट गया। कमर की तलवार म्यान से बाहर कर उसने अपने पार्श्व में रख ली।

बराबर की कोठरी के बाहर दो साधु बैठे धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे।

उन्होंने उस रूपसी बाला की झलक देख ली। पहले आँखों ही आँखों में ... मन्त्रणा की, फिर उनमें से एक ने आगे बढ़कर पूछा—

"कहाँ से आ रहे हो जवान ?"

"तुम्हें क्या" युवक इतना कह, मुँह फेरकर पड़ा रहा। परन्तु साधु ने ... कहा—

"पर इस गट्ठर में की इस सुन्दरी को कहाँ से चुरा लाये हो ?"

"तुम्हें क्या" युवक ने क्रोध में फिर यही जवाब दिया।

दोनों साधुओं ने परस्पर दृष्टि-विनिमय किया, इसके बाद एक साधु स्वर्ण-दम्म से भरी थैली युवक पर फेंक कर कहा—

"बेच दो वह माल !"

युवक क्रुद्ध होकर बैठ गया। उसने तलवार की मूठ पर हाथ धर ... कहा—

"क्या प्राण देना चाहते हो ?"

साधु हँस पड़ा। उसने कहा—"ओह ! यह बात है !"

उसने धीरे से अपने वस्त्रों से तलवार निकाल कर कहा—"यह खिलौना ... हमारे पास भी है, परन्तु तकरार की जरूरत नहीं, हम मित्रता किया चाहते हैं वह थैली यथेष्ट नहीं तो यह और लो।" उसने वस्त्र में से बड़े-बड़े मोतियों ... एक माला निकाल कर युवक पर फेंक दी।

युवक अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—"तुम अवश्य कोई छद्मवेशी दस्यु हो प्राण प्यारे हैं, तो कहो कौन हो ?"

"इससे तुम्हें क्या, यह कहो, वह सुन्दरी तुम प्राण देकर दोगे या ... लेकर।"

"मैं अभी तुम्हारे प्राण लूँगा।" युवक पैंतरा बदलकर उठ खड़ा हुआ। साधु ने भी तलवार उठा ली। चन्द्रमा के उस क्षीण प्रकाश में दोनों की ... खनखना उठीं। युवक अल्पवयस्क था, पर कुछ ही क्षण में मालूम हो गया कि वह तलवार का धनी है। उसने कोठरी के द्वार से पीठ सटा कर शत्रु पर वार करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु साधु भी साधारण न था। ज्यों ही उसे युवक

दक्षता का पता चला, वह अति कौशल से तलवार चलाने लगा। दूसरा साधु चुपचाप देखता रहा। थोडी देर में वहाँ बहुत-से यात्री एकत्र हो गये और शोर मचाने लगे। लोग दोनो वीरो का हस्तकौशल देख वाह-वाह कहने लगे परन्तु इस अकस्मात् और असमय के युद्ध का कारण क्या है—यह कोई नही जान सका।

युवक का एक करारा आघात खाकर साधु चीत्कार करके गिर पडा। यह देख सिंह की भाँति उछाल मारकर दूसरा साधु तलवार सूतकर युवक पर टूट पडा। परन्तु युवक थक गया था, वह एक-आध घाव भी खा गया था, उसके घाव से रक्त बह रहा था। इससे वह सुस्त होने लगा। इतने में पीछे से एक ललकार सुनकर दोनो योद्धा ठिठक कर रह गये। एक बलिष्ठ और तेजस्वी योद्धा भीड को चीर कर आगे आ रहा था—उसके साथ बहुत-से सेवक मशाल लिये थे। मशालो के प्रकाश में उसका श्यामल मुख तप्त ताम्र की भाँति दमक रहा था। बडी-बडी काली आँखें लालचोट हो रही थी। उसके मुख पर, शरीर पर तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर एक अभय तेज विराज रहा था। उसके कन्धे पर धनुष और तरकस, फेंट में कटार और हाथ में लम्बी तलवार थी। उसके सिर पर केसरी पगडी में देदीप्यमान हीरे का तुर्रा बँधा था। उसने हाथ की तलवार ऊँची करके कहा—"मूर्खो, देवस्थान में लडते हो ?" युवक ने इस आगन्तुक को देखकर तलवार नीची कर ली। परन्तु साधु ने लाल-लाल आँखें करके निर्भय स्वर से कहा—"दो आदमियों के झगड़े में बिना बुलाये बीच में पडकर उन्हे मूर्ख कहनेवाला ही मूर्ख है।"

आगन्तुक योद्धा ने जलद गम्भीर स्वर से पूछा—"तुम कौन हो ?"

"यही मैं तुमसे पूछता हूँ।" साधु ने उद्दण्डता से कहा।

"इस झगड़े का कारण ?"

"तुम्हारे पचायत में पडने का कारण ?"

"तब देख कारण।" आगन्तुक योद्धा ने तलवार का भरपूर हाथ साधु पर फेंका। साधु भी असावधान न था। क्षण भर में ही दोनो योद्धा असाधारण दक्षता से युद्ध करने लगे।

लोगों ने एक ध्वनि सुनी—शान्त पापम्, शान्त पापम् ! पहिले क्षीण फिर

स्पष्ट। तब सहसा एक भव्य मूर्ति सामने आती दिखाई पड़ी। उपस्थित भीड़ सहमकर पीछे हट गई। दोनों योद्धाओं ने भी हाथ रोक लिये। आगन्तुक ऊँचे कद का गौरवर्ण एक तेजस्वी महापुरुष था। उसके ऊर्ध्व रेखांकित मस्तक पर त्रिपुण्ड, शीश पर जटाजूट, कमर में व्याघ्रचर्म, अंग में गेरुक, मुख पर नाभि तक लम्बी हिम-धवल दाढ़ी, पैरों में चन्दन की खड़ाऊँ, दृष्टि निर्मल और भयहीन, एवं मस्तक में त्रिकाल-ज्ञान की रेखा।

उपस्थित जनता 'जय स्वरूप' 'जय सर्वज्ञ' कहकर पृथ्वी में झुक गई। युवक ने पृथ्वी में लोटकर साष्टांग दण्डवत् की। आगन्तुक योद्धा ने भी चरण-रज ली। परन्तु साधु तलवार हाथ में लिये खड़ा वृद्ध को घूरता रहा।

वृद्ध महापुरुष ने योद्धा के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"युवराज भीमदेव, तुम्हारी जय हो। परन्तु देवस्थान में रक्तपात नहीं होना चाहिए। तलवार को म्यान में करो।"

भीमदेव ने चुपचाप तलवार म्यान में कर ली।

फिर उन्होंने मुस्कराकर साधु की ओर देखा और कहा—"प्रतापी सुल्तान महमूद! तुम चिरंजीव रहो वत्स, साधुवेश तुमने धारण किया, पर उसे निभा न सके। देवस्थान में भी लड़ पड़े। अब तुम भी तलवार को म्यान में करो।"

साधु का परिचय सुनकर सब उपस्थित जन भीत तथा चकित हो, आँखें फाड़-फाड़कर साधु को देखने लगे। बहुत लोग उत्तेजित भी हुए, परन्तु वृद्ध ने हाथ ऊँचा करके सतेज स्वर में कहा—"शान्त पापम्, शान्त पापम्। देवस्थान में काम, क्रोध, लोभ—सभी दोषों का निराकरण होना चाहिए।"

सुल्तान ने तलवार म्यान में रख ली। अब उस सौम्य मूर्ति ने युवक की ओर घूमकर कहा—"तुम भरुकच्छ से देव निर्माल्य लाये हो?"

"जय सर्वज्ञ" युवक ने बद्धांजलि हो विनीत स्वर में कहा।

"निर्माल्य अर्पण करो, द्वार खोलो।" युवक ने मस्तक से भूमि स्पर्श करके कहा—"जय सर्वज्ञ, जय स्वरूप।" परन्तु निर्माल्य त्रिपुर-सुन्दरी की सेवा में है। दद्दा चौलुक्य की आज्ञा है कि वह आचार्यपाद रुद्रभद्र को अर्पण किया जाय।"

"वत्स ! चौलुक्य और इस्मद्र दोनों ही मेरे आज्ञानुवर्ती हैं—द्वार खोलो।"

युवक ने और आपत्ति नहीं की। कोठरी का द्वार खोल दिया। वृद्ध महापुरुष ने वात्सल्यभरे स्वर में पुकारकर कहा—"बाहर आओ चौला !"

षोडशी बाला लाज, रूप, यौवन में डूबती-उतराती धीरे-धीरे बाहर आ वृद्ध के चरणों में गिर गई।

वह रूप, वह माधुर्य, वह स्वर्ण-देहयष्टि देखकर सब कोई आश्चर्य-विमूढ़ रह गये। युवराज भीमदेव मन्त्रमुग्ध से उसे देखते रहे। गंग सर्वज्ञ ने उसे उठाकर कहा—"अभय ! आओ मेरे पीछे। युवराज, तुम भी और सुल्तान तुम भी। अपने साथी की चिन्ता न करो। उसका अभी औषध-उपचार हो जायगा। यह कहकर वृद्ध महापुरुष ने दोनों हाथ ऊँचे कर समुपस्थित सैकड़ों विनयावनत भावुक भक्तों को मौन आशीर्वाद दिया और धीरे-धीरे अन्तरायण की ओर चल दिये। उनके पीछे चौला, पीछे युवराज भीमदेव और वह तरुण और उसके पीछे सुल्तान चुपचाप चले।

चन्द्रकुण्ड के समीप आकर वृद्ध पुरुष रुके। उन्होंने इधर-उधर देखकर ताली बजाई। एक अन्तरंग सेवक ने आकर अभिवादन किया। सर्वज्ञ ने चौला की ओर संकेत करके कहा—"इसे गंगा के आवास में ले जा और उससे कह कि अभी इसके आहार-विश्राम की व्यवस्था कर दे और कल ब्राह्ममुहूर्त में गंगाजल से स्नान करा गर्भगृह में ले आये, तब मैं इसे देवार्पण करूंगा।"

सेवक 'जो आज्ञा' कह चौला को लेकर चला गया। अब उन्होंने स्मित हास्य करके कहा—"वत्स भीमदेव, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो। अब जाओ, तुम विश्राम करो।"

भीमदेव प्रणाम कर चले गये। महापुरुष कुछ देर स्थिर गम्भीर, मौन खड़े रहे, फिर सुल्तान से बोले—"सुल्तान, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ?"

महमूद ने कहा—

"आप ही क्या गंग सर्वज्ञ हैं ?"

"सब ऐसा ही समझते हैं सुल्तान।"

"आप सत्ताईस वर्ष से इस मन्दिर के पुजारी हैं ?"

"पुजारी हो-नहीं—पाशुपत आम्नाय का एकनिष्ठ सेवक।"

"आप गजनी के सुल्तान से कुछ मांगते हैं?"

"सुल्तान! मैं तो भगवान सोमनाथ से भी कुछ नहीं मांगता। निष्काम सेवा मेरा एकमात्र धर्म है।"

सुल्तान कुछ देर तक चुपचाप सोचता रहा। गंग सर्वज्ञ ने कहा—"क्या सोच रहे हो सुल्तान?"

"आप सर्वज्ञ हैं, आप ही कहिए।"

सर्वज्ञ हंस दिये। फिर उन्होंने कहा—"सुल्तान! मैं तुम्हें आशीर्वाद दे चुका हूं—वह क्या यथेष्ट नहीं है?"

"परन्तु मेरे मन की बात?"

"व्यर्थ है।"

"इस तलवार के रहते।"

"सुल्तान! यह तुम भी जानते हो कि इस हाड-मांस के शरीर में जो कुछ है, वह नगण्य है। जो सर्वत्र व्याप्त है, वही सब कुछ है। परन्तु जाओ अब तुम, रात अन्धेरी है और राह बीहड़। ऋतु भी अनुकूल नहीं है। तुम्हारा अश्व और साथी सिंहद्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं। महालय के चर तुम्हें सकुशल महालय की सीमा के उस पार पहुंचा देंगे।"

सुल्तान ने क्षण भर गंग सर्वज्ञ को और फिर आकाश में ऊंचा सिर किये महालय के शिखर की ओर देखा। एक बार उस रूपसी बाला का—देव निर्माल्य का—स्मरण किया और फिर सिर नीचा कर, बिना ही गंग को प्रणाम किये सीढ़ियां उतरने लगा।

गंग ने दोनों हाथ उठाकर उसे मौन आशीर्वाद दिया।

३ · उदयास्त

सोमनाथ महालय के कोट की दक्षिण दिशा में चतुर्थ तोरण था। उसे पार करने पर देवदासियों का आवास था, जो दृढ़ परकोट से घिरा था। इस समय इस आवास में सात सौ सुन्दरियाँ रहती थीं। कुछ गुजरातनें थीं, जिनका सलोना श्याम वर्ण, मध्य कद और मृदु भाषण अनायास ही दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता था। कुछ उत्तरापथ की निवासिनी थीं, जिनकी उन्नत नाक और प्रशस्त मस्तक, गौर वर्ण तथा उच्च स्वर उनके व्यक्तित्व को प्रकट करता था। कुछ सुदूर हिमाचल-शृंग के परे की निवासिनी थीं, जिनकी चपटी नाक, ठिगना कद और पीतवर्ण अलग छटा दिखाता था। कुछ दक्षिण-पथ की श्याम वामाएँ थीं, जो अपने उज्ज्वल वेश और चंचल नेत्रों से क्षण-भर ही में यात्रियों का हृदय जीत लेती थीं। कोई मृदुल सरज के स्वरों से, कोई कुशल प्रगल्भ आलाप से, कोई भावपूर्ण नृत्य-विलास से देव और देव भक्त जनों को रिझाती थीं। सब देवार्पण थीं और नृत्य, गीत, विलास से देव सोमनाथ और उनके भक्तगणों की आराधना करती थीं। ये सुन्दरियाँ नख-शिख से विलास, शृंगार और भाव की प्रतिमूर्तियाँ सी बनी रहती थीं। राजा और रंक मन्त्रमुग्ध बने सोमनाथ महालय में महीनों-वर्षों पड़े उनकी नूपुर ध्वनि का ध्यान करते जीवन धन्य करते थे।

इस आवास में सबसे पृथक् एक ओर छोटा-सा किन्तु सुन्दर एक घर सबसे निराला था। इस घर के द्वार पर एक बिल्व वृक्ष था। यही गंगा दासी का घर था। गंगा का यौवन अब सम्पूर्ण हो चुका था। उत्फुल्ल नेत्रों के चारों ओर स्याही की रेखा दौड़ गई थी। गुलाबी गालों की कोर पर एक-आध लकीर दीख पड़ती

४ : समर्पण

सोमनाथ पट्टन को शताब्दियो की श्रद्धा और भक्ति ने एक देव-भूमि बना दिया था। लक्षावधि लोग वहाँ कुछ काल वास करके समझते थे कि भव के समस्त पाप-तापो से हम मुक्त हो गये। महालय का अन्तर्कोट कोई बीस हाथ ऊँचा और दस हाथ चौडा था। चार सैनिक आसानी से उस पर बराबर खडे हो सकते थे। अन्तर्कोट के सिंह द्वार के ठीक सामने गणपति का भव्य मन्दिर था। उसी पर नक्कारखाना था, जिसमें पहर-पहर पर चोघडियाँ बजती थी। इस द्वार के दोनो पार्श्वों में दो विशाल दीपस्तम्भ थे, जिन पर संगतराशी का अत्यन्त शोभनीय काम हो रहा था। प्रत्येक स्तम्भ पर प्रतिदिन सहस्र दीप जलते थे, जिनका प्रकाश दूर से समुद्र के पथगामी जहाजो को सोमनाथ महालय के ज्योतिर्लिंग की दिशा का भान कराता था। इन विशाल और ऊँचे दीपस्तम्भों के शिखर पर दो विशालकाय गण स्थापित थे, जो श्वेत मर्मर के थे। दक्षिण दीपस्तम्भ के सम्मुख चन्द्रकुण्ड था, जिसके विषय में प्रसिद्ध था कि उसमें स्नान करने से सर्वरोग-मुक्ति होती है, तथा मनोकामना सिद्ध होती है।

इन्ही दीपस्तम्भो के बीचोंबीच सभामंडप में आने की विस्तृत सीढियाँ थी। सभामंडप में से होकर गर्भगृह का द्वार था। इसी गर्भगृह में वह त्रिभुवन विख्यात प्रज्वलन्त ज्योतिर्लिंग था। गर्भगृह के ऊपर एक विशालकाय शिखर था जिसके प्रत्येक स्तम्भ पर देश-देश के शिल्प-विशारदो ने विविध भाव-भंगियो से परिपूर्ण चित्र खोदे हुए थे। ये चित्र इतने उत्कृष्ट थे कि इनकी मूक, मौन भावभंगी देखकर मनुष्य मूक, मौन होकर मुग्ध रह जाते थे। यह शिखर स्वर्ण-निर्मित था। ऊपर

स्वर्ण-जडित था, भीतर रत्न-जडित। सूर्य की सतेज किरणों की चमक में वह द्वितीय सूर्य की भांति चमकता था और भीतर के रत्न गर्भगृह के सहस्र दीपों के प्रकाश में मुखरित हो अद्भुत शोभा विस्तार करते थे। सभामडप में प्रवेश करते ही दोनों तरफ दो विशालकाय ऐरावत कसौटी के बने थे, जिन पर भगवान् इन्द्र समूची स्फटिक मणि के खोद कर बनाये गये थे। देवराज इन्द्र की भावभंगी ऐसी थी—मानो वे सोमनाथ ज्योतिर्लिंग की पूजा करने अभी अमरपुरी त्याग कर महालय में आये हैं। सभामडप अड़तालीस खम्भों पर खड़ा था, और वह इतना विशाल था कि उसमें पांच सहस्र आदमी खड़े होकर ज्योतिर्लिंग के दर्शन कर सकते थे। खम्भों पर रंगबिरंगे रत्नों की पच्चीकारी की गई थी जिनके कीमती पत्थरों की खुदाई की शोभा देखते ही बनती थी।

मण्डप के सामने पूर्व दिशा में मुँह किये विशालकाय नन्दी था, जो ठोस चांदी का बना था। वह एक सहस्रभार वजनी था। सहस्रावधि श्रद्धालु यात्री उसकी पूँछ का स्पर्श करके ही अपने को भव-बाधा से मुक्त समझते थे। ज्योतिर्लिंग पर रात-दिन अखण्ड रुद्री होती थी और सम्मुख सभामडप में सूर्योदय से मध्यरात्रि तक निरन्तर नृत्य होता था।

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, गंग सर्वज्ञ बाघ-चर्म पर बैठ अर्चन-विधि सम्पन्न करा रहे थे। गर्भगृह के बाहर सभा-मडप में सहस्रों भावुक भक्त दर्शनों की अभिलाषा से खड़े थे। रुद्राभिषेक और शृङ्गार हो चुकने पर सर्वज्ञ ने गंगा की ओर संकेत किया। गंगा चौला का हाथ पकड कर सर्वज्ञ के सम्मुख गई। चौला आशंका से परिपूर्ण थी। गंग सर्वज्ञ ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—"कल्याणी! यह आज कार्तिक एकादशी का महापर्व है। महालय की नृत्यशाला के नियमानुसार जो अठारह प्रकार का नृत्य, बारह प्रकार के अभिनय और सात प्रकार के संगीत-शास्त्र में निष्णात हो वही आज आरती के समय पहिली बार देवता के आगे नृत्य कर सकती है। वत्से! वह अधिकार गंगा की साक्षी से आज मैं तुझे देता हूँ। आज के इस धन्य क्षण में तू अपनी देह-यष्टि का बालपुष्प देवता को अर्पण कर। तन-मन मय नृत्य देवार्पण कर, जिससे देवाधिदेव सोमनाथ तुझ पर प्रसन्न हों, आज तेरी जन्म-जन्म की तपश्चर्या सफल होगी। तू अपनी इन्द्रियां

का और मनोवृत्ति का घोर दमन कर। आहार, निद्रा और वासना का संयम रख और भगवान् सोमनाथ में जीवन को लय कर।" यह कहे सर्वज्ञ ने चौला के मस्तक पर हाथ रक्खा और चौला अर्द्धमूर्छित सी उसी स्थान पर पृथ्वी पर गिर कर भगवान सोमनाथ के चरणों में जैसे लीन हो गई।

आरती का समय हो गया, प्राची दिशा में उषा की लाली झलकने लगी। दीपस्तम्भों पर सहस्र-सहस्र दीप जल रहे थे। परकोट पर दीपावलि झलक रही थी। सभा-मण्डप में लोगों के ठठ जमे थे, और स्वर्ण के दीपस्तम्भों पर घृत के सुगन्धित दीप जल रहे थे। मडप के बीचोंबीच सोने की अस्सी मन वजनी जंजीर में लटके हुए महाघण्ट का अकस्मात् घोर रव होने लगा, जो मेघ-गर्जन जैसा लगता था, घण्टरव बार-बार होने लगा। सहस्र सहस्र कण्ठों से 'सोमनाथ की जय', 'ज्योतिर्लिङ्ग की जय' 'महेश्वर की जय' के निनाद से दिशाएँ कम्पित होने लगीं। सबकी उत्सुक दृष्टि गर्भगृह की ओर थी, जहाँ रत्न-जटित स्वर्ण-दीपाधारों में अगर और चन्दन के तेल के दिये जल रहे थे। गर्भ गृह के बीचोबीच छाती के बराबर ऊँचा सोमनाथ का ज्योतिर्लिङ्ग पुष्प और बिल्वपत्रों के ढेर में दीख रहा था, जिसके ऊपर पन्ने का छत्र था, और स्वर्ण-जलधारी से गंगोत्तरी का जल बूँद-बूँद टपक रहा था। सौ वेदज्ञ ब्राह्मण सामगान-युक्त स्वर से पुरुषसूक्त का पाठ कर रहे थे।

नक्कारखाने में नक्कारे पर चोट पड़ी। शहनाई बज उठी। लोग धक्कापेल करते हुए आगे बढ़े। अलमस्त बाबाओं ने दुपट्टों के चाबुक मार मार कर गर्भद्वार के सामने का स्थान रिक्त कराया। एक ने विशाल शङ्ख फूंका, जिसका प्रचण्ड रव दिशाओं में व्याप्त हो गया। इसके बाद लोगों में सन्नाटा छा गया और सब कोई गर्भगृह की सीढ़ियों की ओर देखने लगे।

सर्वप्रथम गग सर्वज्ञ शान्तमुद्रा से बाहर आये। उनके होठ हिल रहे थे और शैवसूक्तों की मन्दध्वनि उनसे स्फुटित हो रही थी। लोग सहम कर स्तब्ध रह गए। यही वह पुरुष है जो पाशुपत-धर्म का एकमात्र अधिष्ठाता कहा जाता है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञाता है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और विन्ध्य से हिमालय के उस पार तक जिसकी अखण्ड शिष्य परम्परा है, देश-

देश के नृपति जिसके चरणों में अपने रत्न-जटित मुकुट से जगमगाते मस्तक झुकाते हैं जिसकी आज्ञा को लोग भगवान सोमनाथ की आज्ञा के रूप में मानते हैं।

लोग श्रद्धा से झुक गये। सहस्र कण्ठों से निकला—'जय स्वरूप', 'जय सर्वज्ञ'।

गग सर्वज्ञ के पीछे गंगा चौला का हाथ पकड़े हुए आई। चौला का नवलगात्र, नवविकसित यौवन, लज्जावनत कमल-मुख, मधुर कौमार्य और नवीन केले की-सी कान्ति देख कर जनता मूढ़मुग्ध रह गई। अकस्मात् हर्षातिरेक से लोग चिल्ला उठे—'जय देव', 'जय जय देव'।

परन्तु तुरन्त ही गर्भगृह से और एक व्यक्ति बाहर आये। उन्हें देखते ही भीड़ में भूचाल-सा आ गया। लोग हर्षोल्लास से चिल्ला उठे—'जय गुर्जरेश', 'जय चौलुक्यराज भीमदेव'।

युवराज भीमदेव एक हाथ तलवार की मूठ पर रखे धीर-गम्भीर गति से चारों ओर देखते अपने साथी से धीरे-धीरे बातें करते आ रहे थे।

पहले सर्वज्ञ ने हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद दिया। सब कोई चुपचाप गर्भगृह के द्वार पर देवता के सम्मुख खड़े हो गये। सर्वज्ञ ने एक बार भूमि पर प्रणिपात कर देवता को नमन किया, फिर एक शिष्य ने आरती उनके हाथ में दी और वे आरती करने लगे। इसी प्रकार गग सर्वज्ञ आज सत्ताईस वर्ष से अखण्ड रूप से बिना एक दिन विश्राम किए, प्रतिदिन दोनों समय आरती करते रहे हैं। हजारों घण्टाओं का स्वर, महाघण्ट का रव और दुंदुभी की मेघ-गर्जना सब मिल-कर ऐसा प्रतीत होता था जैसे देवाधिदेव अभी ताण्डव-नृत्य कर रहे हों और पृथ्वी पर भूचाल आ गया हो।

आरती सम्पूर्ण होने पर 'जय देव, जय जय देव, जय सोमनाथ, जय ज्योतिर्लिङ्ग' का सर्वज्ञ ने उच्चारण किया, जिसका सब लोगों ने अनुकरण किया। यह जयघोष उत्तुंग वायु की लहरों पर, कोट, परकोट, समुद्र-तट, और नगर, नगर-कोट तक प्रतिध्वनित और परिवर्द्धित होकर प्रभासपट्टन के वातावरण में गूंज उठा।

यात्रियों ने आरती की आस ली।

सर्वज्ञ ने कहा—"अब नृत्य हो"।

सर्वज्ञ बाघाम्बर पर बैठे। अन्य अतिथि भी उचित आसनों पर बैठे।

सब लोग यथास्थान बैठे। मृदंग और वाद्य बजने लगे।

वातावरण में स्वर-ताल की तरंगें उठ चलीं।

गंगा ने स्तवन प्रारम्भ किया, और उसके साथ छः नर्तकियों ने नृत्य प्रारम्भ किया। क्षण भर ही में गंगा की कला मूर्तिमान हो उठी। माधुर्य की नदी उसके कण्ठ से बह चली। उसमें भक्ति-भाव और विलास तैरने लगा। उसकी दृष्टि गग सर्वज्ञ के गम्भीर मुख पर थी, और सर्वज्ञ की दृष्टि पृथ्वी पर। वे निश्चल, अडिग, जड़वत् बैठे थे। संगीत के वे परम पारदर्शी थे।

संगीत रुका और गग सर्वज्ञ ने एक बार आंख उठा कर गंगा की ओर देखा। फिर उनकी दृष्टि चौला की ओर गई। उन्होंने मृदु स्वर से पुकारा—'चौला'।

चौला का हृदय धड़कने लगा। उसने सर्वज्ञ की ओर देखा। सर्वज्ञ ने उंगली से संकेत कर देवता को दिखाया। चौला ने उठकर प्रथम देवता को साष्टांग दण्डवत् और फिर गग सर्वज्ञ को प्रणिपात किया और वह नृत्य करने को खड़ी हुई। वातावरण नीरव हो गया। सहस्रों दृष्टि उसी पर थी, केवल गग सर्वज्ञ पृथ्वी पर आंखें जमाये थे।

गंगा ने उसका ऊपर का आवरण हटाया। मण्डप के उन रत्न-दीपों के प्रकाश में वह शतदल श्वेत कमल-सी किशोरी जब अपना समस्त अनावृत सौरभ लेकर लोगों की दृष्टि में चढ़ी, तो जन-समूह में उन्माद की आंधी आ गई। जन-समूह मुग्ध-मौन, अवाक् रह गया।

मृदंग पर थाप पड़ी और कोमल पद की हल्की ठोकर से सुनहरी घुंघरू बज उठे, 'छन्न'। मृदंग ने दौड़ भरकर फिर थाप मारी, और घुंघरू बजे 'छन छन छुन'। फिर तो नूपुर-शोभित लाल कमल-से वे चरण श्वेत प्रस्तर के उस सभा-भवन के विस्तार को छू-छूकर ऊधम मचाने लगे। घुंघरुओं की झनकार जैसे लोगों के हृदयों में ज्वारभाटा उत्पन्न करने लगी। अब सुनहरी जरी से कसी चोली, कारचोबी काम का लहंगा और हीरों से दमकता वक्ष, नीलम से लिपटी

छोटी-सी कमर, पैरों की प्रत्येक गति पर जो हलचल मचाने लगे और उनके साथ ही सिंहल के मुक्ताओं से सम्हारे हुए कुन्तल केश वायु में लहरा कर जैसे उस नृत्य का अनुकरण करने लगे। फिर मृदुल मृणाल भुजाएँ विषधर नाग की भाँति हिलोरें मारने लगीं, यह सब देखकर दर्शक सुध-बुध खो बैठे। इस सुप्रभात-सी सुकुमार नवल किशोरी का वह अद्भुत परम शुद्ध शैव नृत्य देखकर बड़े-बड़े कलाकार आश्चर्यचकित रह गये। ऐसा प्रतीत होता था जैसे शुभ्रशोभना शरद् ऋतु मूर्तिमती होकर उषा के उस मनोरम काल में सोमनाथ महालय में आई है।

धीरे-धीरे उसका बाह्य ज्ञान लुप्त होने लगा। उसके सामने सहस्रों नरमुण्ड एकटक उसी को देख रहे हैं, यह उसे सुध न रही। वह एक बार गंग सर्वज्ञ और फिर देवता के ज्योतिर्लिंग को देख अधीर भाव से नृत्य करने लगी। उच्च पर्वत-शृंग से गिरते हुए झरने के वेग के समान उसका वेग हो गया। मृदंगवादक हाफने लगे। तन्तु-वाद्य केवल कंपन ध्वनित करने लगे। चौला के चरणों ने जो गति ली वह मानो गतिहीन हो गई। अन्ततः उसकी गति मन्द पड़ने लगी। वह पुष्प-भार से झुकी डाली की भाँति धीरे से नीचे को झुकती गई। ताल का ठेका धीमा हुआ, और चौला वहीं देवसान्निध्य में सहस्रों जनता के समक्ष पृथ्वी पर बेसुध हो गिर पड़ी। जन-जन की नसों में प्रत्येक रक्तबिन्दु नृत्य कर रहा था। दर्शक निर्निमेष-निश्चल बैठे रह गये। गंग सर्वज्ञ ने अश्रुपूरित नेत्रों से गंगा की ओर देखकर संकेत किया। गंगा ने यत्न से चौला को अंक में भरा, और उसे वक्ष के बाहर ले गई। गंग सर्वज्ञ स्वप्निल-से चुपचाप उठकर अपने आवास में गये। सबके हृदय में एक ही कल्पना, एक ही छलना, एक ही मूर्ति जागृत हो रही थी और वह थी चौला। शुक्र नक्षत्र की भाँति देदीप्यमान और शुभ्र चाँदनी की भाँति व्यापक, शीतल चन्द्रमणि की भाँति बहुमूल्य और दुष्प्राप्य शारदीय सुषमा की भाँति धनधौत शुभ्र।

रूप नहीं बनेगा।

"तो भगवन्! हम कैसे न हैं—?"

"ऐसे कहो पुत्र, कि यदि कोई आततायी देव की अवज्ञा करेगा तो भारत उसे कभी सहन न करेगा।"

"तो प्रभु, यही सही............"

भीमदेव आगे और भी कुछ कहना चाह रहे थे कि इसी समय गंगा घबराई आई, उसने कहा—"प्रभु, चौला आवास में नहीं है?"

"आवास में नहीं है तो कहाँ है?" सर्वज्ञ ने जिज्ञासा की।

"यह मैं नहीं जानती, परन्तु मुझे सन्देह है............"

गंग सर्वज्ञ अस्थिर हो गये। उन्होंने व्यग्र हो उठते हुए कहा—"कुमार, तुम मेरे साथ आओ।" और एक गुप्त गर्भमार्ग द्वारा त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर की ओर चले। उनके पीछे नंगी तलवार हाथ में लिये कुमार भीमदेव।

६ : मौनी बाबा

सरस्वती के उत्तर तट पर दधिस्थली ग्राम था। उस ग्राम से कोई डेढ़ कोस के अन्तर पर बटेश्वर नाम का एक प्राचीन शिवालय था। शिवालय जीर्णावस्था में होने पर भी अतिभव्य था। उसके आसपास चारों ओर अनेक छोटे-बड़े कई मन्दिर थे। इनमें भी शिवलिंग की स्थापना थी। स्थान अतिरमणीय था। उसकी तीन दिशाओं में बहुत-से बड़े-बड़े छायादार वृक्ष थे। चौथी दिशा में महानदी सरस्वती शिवालय के चरण पखारती, कलकल निनाद करती बह रही थी। शिवालय से कोई तीन कोस के अन्तर पर श्रीस्थल तथा आठ-नौ कोस के अन्तर पर अनहिलपट्टन था। बीच के मैदान में मनुष्यों की बस्ती न थी। शिवालय एकान्त, निर्जन था। शिवालय का शिखर बहुत ऊँचा था। वहाँ से चारों ओर का दृश्य अतिभव्य दीखता था।

कुछ दिन से इस शिवालय में एक सन्यासी आकर टिके थे। सन्यासी परदेशी थे और बहुत वृद्ध। उनका शरीर अत्यन्त कृश और लम्बा था। उस पर श्वेत लम्बी दाढ़ी अतिभव्य दीख पड़ती थी। सन्यासी मौनी थे, मुँह से बोलते नहीं थे, न आसपास के ग्रामों में भिक्षा करने जाते थे। ग्रामीण भक्तजन और जंगल के चरवाहे जो आकर भक्ति-भाव से कुछ खाने-पीने की वस्तु रख जाते थे, उनसे वे केवल संकेत से बहुत कम बातें करते थे। आसपास के ग्रामों में वे मौनी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। दिन में एक दो ग्रामीण उनके पास बने रहते थे, परन्तु रात्रि को बाबा अकेले ही उस निर्जन में रहते थे। उनकी निस्पृह वृत्ति और गंभीर आकृति से प्रभावित हो ग्रामीण उन पर श्रद्धा करते थे।

अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गई थी। रात अंधेरी और जंगल सुनसान था। ऐसे समय में दो अश्वारोहियों ने शिवालय के प्रांगण में प्रवेश किया। दोनों अश्वारोहियों में एक छद्मवेशी सुल्तान महमूद और दूसरा उनका साथी था। दोनों साधु वेष में ही थे। घोड़ों का पदचाप सुनते ही मौनी बाबा बाहर निकल आये। और अश्वों की व्यवस्था कर तीनों शिवालय के अलिन्द में जा बैठे। बैठते ही तीनों ने वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया। वार्ता शुद्ध अरबी भाषा में हुई। उसका अभिप्राय इस प्रकार था—

"हज़रत, अब्बास ज़ख्मी हो गया।"

"यहाँ तक नौबत क्यों आने दी, सुल्तान!"

"नौबत आगे तक आती, परन्तु गुसाईं बीच में आ गया।"

"गग को आपने देखा?"

"देखा।"

"और कुछ?"

"दो चीज़ें और देखीं।"

"वे क्या?"

"गुजरात का राजा।"

"चामुण्डराय?"

"नहीं, भीमदेव।"

"देख लिया?"

"अच्छी तरह, अफ़सोस यही रहा—दो दो हाथ और न हो पाये।"

"अब्बास को उसी ने ज़ख्मी किया?"

"नहीं, एक दूसरे नौजवान ने।"

"मगर तकरार हुई किस बात पर?"

"यह फिर कहूँगा, अभी यह फर्माइए कि लाहौर से कोई आया है?"

"अलीबिन उस्मान अलहज्ज बीसी का क़ासिद आया है। उन्होंने कहलाया है कि तमाम फ़ौज दर्रा पार कर चुकी है, और जलालाबाद में उसे लेकर मसऊद सुल्तान के हुक्म की इन्तज़ारी कर रहा है।"

"और मुल्तान की क्या खबर है ?"

'शेख इस्माइलबुखारी ने कहलाया है कि यदि सुल्तान की सवारी सिन्ध की राह गुजरात जाना चाहती है तो उसे कडी-से कडी मुहिम का मुकाबला करने को तैयार रहना चाहिए।"

"इसका मतलब ?"

"मतलब यह, कि राह में जो राजा हैं वे गुमराह हैं।"

'उन्हें क्या राह पर नहीं लाया जा सकता ?"

'शेख ने कोशिश की थी, मगर कुछ बना नहीं।"

"शेख को कहिए कि फिर कोशिश करें और गुमराहों को राह पर लायें, चाहे भी जिस कीमत पर।"

"बहुत खूब, लाहौर को क्या हुक्म भेजा जाय ?"

"मसऊद गजनी लौट जाय।"

"ऐं, यह कैसी बात ?"

"यह सुल्तान का हुक्म है शेख। और आप अभी यहीं मुकीम रहें। अब्बास के जख्म भर जायें तो वह गजनी को रवाना हो जाय।"

"और कुछ हुक्म है ?"

"नजर रखनी होगी।"

"गुजरात के राजा पर-?"

"नहीं।"

"गुसाईं गग पर।"

"नहीं।"

"और कौन।"

"वह नाजनीन।"

"कौन है वह।"

"सोमनाथ की सबसे बडी दौलत।"

'लेकिन··· ······"

'शेख ! वह आपकी आँखों से एक लहमे को भी ओझल हुई तो गर्दन पर

सर नहीं रहेगा।"

"उसका नाम ?"

"चौला।"

"चौला ?"

सुल्तान उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"मैं गजनी जाऊँगा। राह में बिखरी हुई फौज और जासूस सब उसी तरह काम करते रहें।"

"जो हुक्म।"

"हज़रत अलबेरूनी क्या अभी अनहल्लपट्टन से नहीं लौटे ?"

"रात ही लौटे हैं, वे अच्छी खबर लाये हैं।"

"ठीक है, इस वक्त वे कहाँ हैं ?"

"नदी के उस पार, उसी झोपड़ी में।"

"ठीक है। उनके पास घोड़ा है ?"

"शायद नहीं।"

"तो मैं अब्बास का घोड़ा भी ले जा रहा हूँ। अब्बास दूसरा खरीद लेगा।"

सुल्तान उछलकर अपने असील घोड़े पर सवार हुआ और दूसरे की रास काठी में बाँध नदी की ओर चल दिया, उसी सूनी अँधेरी रात में।

७ : विधिभंग

"विधि भंग हो गई, अब क्या होगा ?"

"विनाश होगा।"

"रोकिए बाबा, प्रसन्न हूजिए।"

"जब देव-परम्परा भंग हुई, तो गु -परम्परा भी भंग होगी।"

"अनर्थ हो जायगा।"

"प्रलय भी हो सकती है।"

प्रभात हो गया था। त्रिपुर-सुन्दरी के निर्माल्य को बलात् हरण कर मन्दिर के पट सर्वज्ञ ने बन्द कर दिये हैं—यह बात आग की भाँति पट्टन में फैल गई थी। रुद्रभद्र ने प्रायश्चित्तस्वरूप उपवास करके पंचाग्नि तप प्रारम्भ कर दिया था। मन्दिर के तोरण के बाहर निकट ही एक विशाल वट वृक्ष था—उसी के नीचे पांच बड़ी-बड़ी धूनियाँ धधक रही थीं, उनके बीच रुद्रभद्र का भीमकाय शरीर एक कुशासन पर विराजमान था। उसकी बड़ी बड़ी पलकें झुकी हुई थीं। मोटे-मोटे काले होंठ निरन्तर हिल रहे थे। वह उच्चाटन मन्त्र पाठ कर रहा था। उसके सम्पूर्ण अंग में भस्म लगी हुई थी। अंग पर मात्र कौपीन था। सैकड़ों भक्त दर्शक वहाँ उपस्थित थे। और भी आते जाते थे। लोग भाँति-भाँति की बातें करते थे। दो-चार बाबा हुरंग उसे घेरे बैठे थे। दो-चार धूनी में लक्कड़ डाल रहे थे। सिन्दूर का भैरवी चक्र बना था। उस पर लाल सिंदूर से रंगा, रंग-बिरंगे धागों से लपेटा एक मानव पुतला उड़द के आटे का पड़ा हुआ था। लोग भयभीत और चकित मुद्रा से उसे देख रहे थे। रुद्रभद्र बीच-बीच में कुछ अस्फुट उच्चारण कर पुतले पर उड़द फेंक रहा था।

एक हुरंग बाबा करबद्ध हो आगे आया। उसने भीति-भरे नयनों से देखकर कहा—"रोकिए प्रभु, रोकिए।"

"नहीं"—संक्षेप में कहकर रुद्रभद्र जल्दी-जल्दी कोई मन्त्र पढ़ने और उर्द फेंकने लगा। उपस्थित जनों में घबराहट फैल गई।

रुद्रभद्र यद्यपि गग सर्वज्ञ का अन्तर्वासी और शिष्य था पर था वह वाममार्गी। वह त्रिपुरसुन्दरी का अनन्य उपासक था। वह तन्त्र-शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित और अभिचार-योग का प्रसिद्ध ज्ञाता समझा जाता था। मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचार-कार्य वह प्राय करता रहता था। यह प्रसिद्ध था कि कालभैरव उसका वशवर्ती और दास है, तथा उसकी आज्ञा से यह देवता सब सम्भव-असम्भव, कृत्य-कुकृत्य कर सकता है। रुद्रभद्र जिस पर कुपित हुआ, उसके जीवन की खैर न थी। शीघ्र या विलम्ब से कालभैरव उसे खा जाता था। बहुत-सी सेवा करके तथा सुवर्ण-दान से सन्तुष्ट करके रुद्रभद्र को भी देवता को सन्तुष्ट करने के लिए राजी किया जाता था। रुद्रभद्र का शरीर जैसा बेडौल और भयावह था, चेष्टाएँ भी वैसी ही थी। वह वातावरण ही ऐसा था कि मूर्ख और विद्वान्, धनी और गरीब सब कोई इस पाखण्ड पर विश्वास करते थे।

त्रिपुरसुन्दरी का पट बन्द होना तथा वाम पूजन-विधि भग होना—बड़ी भारी और भयानक घटना समझी गई। मन्दिर में आचार के नाम पर अनाचार करने वाले मुष्टण्डों का तो सारा मौज-शौक ही समाप्त हो गया। मद्य-मांस का प्रसाद, सुन्दरियों का आलाप, और देवी की आड़ में होने वाले सब पाखण्ड-कृत्य रुक गये।

एक मुष्टण्डे मदघून ने कहा—"बाबा! ऐसा तो पचास वर्ष में एक दिन भी नहीं हुआ।"

बाबा ने एक हुङ्कार की। कहा कुछ नहीं। उसके होंठ हिलते रहे।

एक भयानक वेशधारी अघोरी ने खड़े होकर महालय की ओर हाथ उठाकर उच्च स्वर से कहा—"सर्वज्ञ ने पाप किया है, सर्वज्ञ का पतन हो गया है।"

दो-एक मदघूनों ने चिमटे उठाकर कहा—"बाबा, आज्ञा कीजिए। हम सर्वज्ञ के पास जायें, निर्माल्य लें, पट खुलवायें—भोग, अर्चना, विधि सम्पन्न करें, नहीं तो सर्वज्ञ का सिर फोड़ डालें।"

"नहीं रे नहीं, महामाया अब मन्दिर में नहीं है।" रुद्रभद्र ने वज्र-गर्जन की भाँति कहा। फिर कुछ अस्फुट मन्त्र ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण कर फट्-फट् कहा।

अवधूत ने काँपते-काँपते कहा—"महामाया कहाँ है बाबा ?"

'विनाश को निमन्त्रित करने गई है। इधर-उधर देखो" उसने उन्मत्त की भाँति सुदूर मरुस्थली की ओर हाथ उठाये, और उन्मत्त की भाँति हँसने लगा। फिर वह जड़वत् समाधिमग्न हो गया। उपस्थित जनों में भीति की भावना फैल गई। बहुत लोग उस रात नहीं सोये। बहुतों ने उपवास किया। कापालिक और अघोरी सैंकड़ों-पचासों की संख्या में आ-आकर पंचाग्नि तापते हुए रुद्रभद्र के चारों ओर नरमुण्ड ले-ले नाचने और नर-कपाल में भर-भर कर मद्य पीने लगे। उन्हें देख भयभीत हो नगरवासी भाग गये।

परन्तु प्रभात होने पर लोगों ने देखा—रुद्रभद्र अपने आसन पर नहीं है। आसन सूना है, पचाग्नि जल रही है पर तपस्वी नहीं है। यह देखते ही एक दूसरा कोलाहल उठ खड़ा हुआ। किसी ने कहा—"रुद्रभद्र बाबा आकाशमार्ग से महा-माया के साथ 'विनाश' को आमन्त्रित करने गये हैं।" किसी ने कहा—"बाबा, अन्तर्धान हो गये।" किसी ने कहा—"हमने उन्हें उस तारे के निकट उड़ते देखा है।" जितने मुँह उतनी बात। समस्त देवपट्टन इन सब घटनाओं से हिल गया। अचल रहे केवल गग सर्वज्ञ। उनके पास आकर बहुत जनों ने बहुत भाँति अनुनय किया—क्रोध किया—भय दिखाया, परन्तु सर्वज्ञ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके इस गूढ़ मौन से भी लोग चिन्तित हो गये।

सम्पूर्ण देवपट्टन में एक अशुभ वातावरण व्याप्त हो गया।

८ : कृष्णस्वामी

कृष्णस्वामी बडे भारी तान्त्रिक और मन्त्रशास्त्री प्रसिद्ध थे। वे सोमनाथ महालय के अधिकारी थे। अत: अधिकारी जी के ही नाम से प्रसिद्ध थे। परन्तु उनका अधिक समय मन्त्र-तन्त्र की सिद्धि में ही जाता था। प्रसिद्ध था कि वे बहुत से भूत, प्रेत, वैतालो के स्वामी हैं तथा उन्हें कर्ण-पिशाचिनी सिद्ध है। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की सब विद्याएँ वे जानते थे। स्वभाव उनका बहुत सौम्य और हँसमुख था। इससे लोग उनसे डरते न थे। उनसे पाटन के बहुत लोगो का काम निकलता था। अपने भूत, प्रेत, वैतालो की सहायता से वे बात-की-बात में लोगों के असाध्य काम कर डालते थे, उनके शत्रुओं का विनाश कर डालते थे। जिस पर उनका कोप छा जाता था उसकी खैर नहीं थी। या तो वह खून थूक-थूक कर मर जाता, या उन्मत्त हो जाता। कृष्णस्वामी ज्योतिष के भी पारगत थे। भूत, भविष्य का सारा ज्ञान उन्हें था। पीला-पीला स्वर्ण और चांदी का सिक्का उन्हें बहुत प्रिय था। सोना देकर उनसे भला-बुरा सब कुछ कराया जा सकता था। बहुत-से गर्जमन्द लोग उन्हें घेरे रहते थे। सोना भी खूब बरसता था। महालय से भी उन्हें उचित-अनुचित बहुत आय थी। अधिकारी थे, बहुत अधिकार उन्हें था। सर्वज्ञ के बाद मन्दिर के प्रबन्ध, आय-व्यय-व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी कृष्णस्वामी के ही ऊपर थी। लाभ के लिए उचित क्या और अनुचित क्या—इसकी चिन्ता कृष्णस्वामी नही करते थे। बस लाभ होना चाहिए, यही एक उनके जीवन का प्रमुख ध्येय था। लाभ से उनके पास बहुत-सा स्वर्ण-भण्डार एकत्र हो गया था।

कृष्णस्वामी की पत्नी का नाम था—रमाबाई। बहुत भारी भरकम थी। एक कन्यारत्न को जन्म देकर फिर उनकी कोख सूख गई थी। कृष्णस्वामी के मन्त्र-तन्त्र, भूत-प्रेत कोई भी इस मामले में तरी न ला सके। रमाबाई का स्वभाव तीखा और उग्र था। रमाबाई की उग्रता के आगे कृष्णस्वामी के भूत, प्रेत, वैताल सभी हार खाते थे, किसी की आन वह मानती न थी। कभी-कभी तो वह खीझ कर कृष्णस्वामी को उन्हीं के मुंह पर पाखण्डी कह देती थी। रमाबाई का शरीर एक गठरी-सा तथा चाल हथिनी के समान थी। पत्नी की चाल को देखकर कभी-कभी कृष्णस्वामी उन्हें गजगामिनी कह कर लाड-प्यार से लगी-लिपटी ठठोली किया करते थे। परन्तु जब यह गजगामिनी अपनी गोल-गोल आँखें लट्टू की भाँति घुमा-फिराकर, कृष्णस्वामी को घूर कर हुकारती तो वे झटपट 'ओ ह्रीं, क्लीं, चामुण्डायै फट्' आदि मन्त्र-जाप करने लगते थे।

कृष्णस्वामी की एक बाल-विधवा पुत्री थी। उसका नाम था—शोभना। शोभना शोभा की खान थी। आयु अभी उसकी केवल सत्रह वर्ष की ही थी। उसका रंग चम्पे के ताजे फूल के समान अथवा आम के फूले हुए बौर के समान अथवा केले के नवीन पत्ते के समान था। सातवाँ वर्ष लगते ही अधर्म के भय से कृष्णस्वामी ने लग्नशोध कर उसका विवाह कर दिया था। पर आठ वर्ष की आयु पूरी होने से पहले ही वह विधवा हो गई। विधवा होने पर भी वैधव्य की आन वह मानती न थी। वह हर समय खूब ठाट-बाट का शृंगार किये रहती। आँखों में अंजन, दाँतों में मिस्सी, बालों में ताजे फूलों का जूड़ा, पैरों में महावर, होठों में पान और हाथों में मेंहदी आठों पहर आप उसको सज में देख सकते थे।

विधि-निषेध करने पर, समझाने-बुझाने पर वह सबकी सुनी-अनसुनी करके नृत्य करने और हँसने लगती थी। उसे इस मुद्रा में देख कृष्णस्वामी आँखों में पानी भर आने पर भी हँस पड़ते थे। पर रमाबाई क्रोध से अपनी गोल-गोल आँखें खूब विस्तार में फैलाकर इधर-उधर घुमाने लगती थी। शोभना को उसके पिता ने पढ़ाया लिखाया था। वह कुशाग्रबुद्धि थी। गुस्सा उसे भी खूब आता था। गुस्सा आने पर वह पिता-माता किसी की भी आन न मानती थी। सब मिलाकर वह एक सजीव 'कनक छुरी सी कामिनी' थी, अथवा फूलों से लदी एक डाल।

रमाबाई शकुन, स्वप्न और सुहाग का बहुत विचार करती थी। शोभना उसकी इकलौती बेटी थी, यह तो ठीक है, पर विधवा होने के कारण वह प्रात काल उठते ही उसका मुंह देखना अशुभ समझती थी। वह अपने सुहाग का जब श्रृंगार करती, तब भी वह विधवा का दर्शन नही करना चाहती थी। पर शोभना जैसे उसे चिढाने के लिए उसकी आँखों के आगे आ ही जाती थी। माँ के क्रोध-फटकार पर वह मुँह चिढाकर भाग जाती थी। यह कहती थी, "मुझे जब न देखना चाहो तो आँखें बन्द कर लिया करो।"

अब प्रसग आने पर अनुपस्थित बात भी कहनी पडी। बहुत दिन हुए कृष्ण-स्वामी ने एक शूद्रा दासी रमाबाई की सेवा के लिए खरीदी थी। दासी युवती और सुन्दरी थी। पर उसके सम्बन्ध में कुछ अपवाद थे, वह गर्भवती थी। रमाबाई उस पर कडी दृष्टि रखती थी। समय पाकर दासी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। उसी समय शोभना का जन्म हुआ। वह दासी-पुत्र शोभना के साथ खेलकर बडा होने लगा। पर शूद्रा दासी के पुत्र के साथ अपनी लडकी का खेलना-खाना रमाबाई को रुचता न था, परन्तु दासी बहुधा पुत्र के लिए मालकिन से उलझ पडती थी। बालक बहुत ही सुन्दर और शुभ लक्षणो से युक्त था। कृष्णस्वामी उसे मन-ही-मन प्यार करते थे, पर वह पूरे निष्ठावान् ब्राह्मण थे। शूद्र के हाथ का छुआ जल पीना तो दूर, शूद्र को दूर से देख पाने पर भी वह स्नान करते थे। इस लिए उस बालक को गोद में बैठाकर वह प्यार नही कर सकते थे। कभी कृष्णस्वामी उस पर कुछ कृपा करते तो इस पर रमाबाई बहुत तूम-तडाम करती। इस पर शूद्रा दासी मुंह फेरकर हँस देती। वह हँसी यदि रमाबाई देख पाती तो उसका झोटा पकड कर सारे घर में घुमाती।

इतना होने पर भी दासी रमाबाई की बडी सेवा करती थी। उसके बिना उनका काम चलता न था। बालक शोभना के साथ बहुत हिलमिल गया। कृष्णस्वामी ने शोभना को पढाना प्रारम्भ किया तो बालक भी पढने लगा। वह कृष्णस्वामी के कक्ष में नही जा सकता था। वे उसे पढा भी नही सकते थे, परन्तु इससे क्या। वह कक्ष से बाहर दूर बैठकर पढता, समय पर शोभना उसे पढाने में सहायता करती। बालक बुद्धि का चैतन्य और कुशाग्र था। शोभना उसके बिना क्षण-

भर भी नहीं रह सकती थी। माता-पिता का कोई आदेश न मान वह सदा उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखती। अपना आहार उसे खिलाती। बाद में शोभना का ब्याह हुआ, वह विधवा हुई, तो यह बालक उसका और भी सहारा हो गया। शोभना ने जाना भी नहीं कि वैधव्य क्या है। रमाबाई को पुत्री के साथ उस दासी-पुत्र की इतनी घनिष्ठता रुचती न थी। पर शोभना निषेध करने पर रो-रोकर घर भर देती, रूठती। बाल विधवा पुत्री के दुःख का विचार कर रमाबाई तरस खा जाती।

दिन बीतते चले गये और शोभना और वह दासी-पुत्र सयाने हो गये। इसी समय अचानक वह दासी मर गई। इस दुःख पर दोनों ने संयुक्त आँसू बहाये। परन्तु अब रमाबाई की अधिक सतर्कता ने दोनों की घनिष्ठता में बाधा उपस्थित की। उसने पुत्री की ताड़ना की और बालक की भी। ताड़ना बहुत बढ़ गई और अन्त में असह्य हो गई। बालक घर से बाहर रहने लगा।

इन दिनों प्रभास में एक दण्डी बाबा रहते थे। बाबा बहुत बूढ़े थे। वे व्याकरण, ज्योतिष और दर्शनों के भारी पण्डित थे। संयोगवश बालक की दण्डी बाबा से मुठभेड़ हो गई। उसे अत्याचार-पीड़ित और अनाथ जान बाबा ने उस पर दया की। उसे पढ़ाना-लिखाना शुरू किया। बालक व्याकरण, काव्य और ज्योतिष मनोयोग से पढ़ने तथा दण्डी बाबा की सेवा करने लगा। घर से अब उसका सम्बन्ध सोने और खाने का रह गया। वह चोर की भांति बहुत देर से रात को आता और ठण्डा-बासी जो मिलता खाकर पड़ा रहता। अपने पढ़ने की तथा दण्डी बाबा के साथ आने-जाने की बात उसने किसी से नहीं कही। केवल शोभना से कोई बात छिपी न थी।

समय आगे बढ़ता गया। शोभना को उसका घर से दूर-दूर रहना अधिक खलने लगा। वह अनुनय-विनय से उसे घर में बाँध रखने की बहुत चेष्टा करती। एक दिन वह भगवान् सोमनाथ के दर्शन को महालय में भीतरी पौर में चला गया तो पुजारियों ने धक्के देकर उसे निकाल दिया। इस बात पर शोभना बहुत रोई। संक्षेप में, ब्राह्मण-घर में शूद्र युवक का रहना असम्भव हो गया। अपमान और अवज्ञा सहते-सहते उसका मन विद्रोह और क्रोध से भर गया। एक दिन उसे मन्त्र पढ़ता देख कृष्णस्वामी क्रुद्ध हो तलवार लेकर उसे मारने दौड़े। अन्ततः उसे

शोभना से विदा लेनी पड़ी और वह शोभना से विदा लेकर, उसे बहुविध आश्वासन देकर, उसे आँसुओं से भरी छोड़कर घर से चल खड़ा हुआ। कृष्णस्वामी ने मन का मोह छिपा, राज-नियम का आश्रय लिया, कहा—"दासी का पुत्र श्रीलदास भागेगा कहाँ, उसे खोजकर दण्ड दूँगा। परन्तु रमाबाई ने उन्हें गोल-गोल आँखों से घूर कर कहा—"पाप कटा। घर में जवान विधवा बेटी है। चला गया, अच्छा ही हुआ।"

६ : पीरो-मुर्शद

युवक का नाम उसकी माता ने 'देवा' रखा था पर अब वह अपना नाम देव-स्वामी बताता था। अब वह निर्बाध रूप से दण्डी स्वामी के पास रहने और शास्त्राभ्यास करने लगा। परन्तु उसका यह आसरा भी देर तक रहा नहीं, वृद्ध दण्डी स्वामी का एक दिन स्वर्गवास हो गया। उसके शोक और निराशा का अन्त नहीं रहा।

उन्हीं दिनों सोमपट्टन से बारह कोस परे, बीथल ग्राम के निकट, समुद्र-तट से थोड़ा हटकर, वृक्षों के झुरमुट में एक साधारण-सी झोंपड़ी बनाकर एक मुस्लिम फकीर आकर एकान्तवास कर रहे थे। वृद्ध फकीर बड़े विद्वान् थे। वे केवल अरबी भाषा में बात करते थे। किसी से मिलते न थे, न किसी का दान ग्रहण करते थे। उनके पास बहुत सोना था। ग्रामीण जनों को, जो बहुधा उनके पास जा निकलते थे, वे अनायास ही स्वर्ण-दान देते थे। लोगों में वे कीमियागर साधु प्रसिद्ध थे। पर स्वभाव के वे बड़े रूखे थे। सप्ताहों तक वे बिना खाये-पिये मूढ़-वत् पड़े रहते। कभी-कभी कई-कई दिन तक अरबी भाषा में कुछ निरंतर लिखते रहते। उस समय वे किसी से बोलते नहीं थे। उनकी एकान्तता में विघ्न डालने पर वे क्रुद्ध हो जाते थे। प्रसन्न होने पर स्वर्ण देते थे। परन्तु वे स्वयं अत्यन्त निरीह भाव से रहते थे। केवल एक बार दो टिक्कड़ अपने हाथ से बना खा लेते थे।

देवा भटकता हुआ इस फकीर के पास आ पहुँचा और उनका मुरीद होकर वहीं रहने लगा। सब विवरण सुनकर तथा उसका बलिष्ठ और सतेज शरीर देख

एव उसकी बुद्धि और विद्या से सतुष्ट होकर फ़क़ीर ने उसे रख लिया। फ़क़ीर ने स्वय उससे हिंदुस्तानी बोलना सीखा और उसे अरबी पढाई। धीरे-धीरे उसकी सेवा, विनय और सद्गुणो से प्रसन्न हो वे उसे पुत्रवत् प्यार करने लगे। कुछ दिन बाद युवक ने इसी फ़क़ीर के हाथो मुस्लिम धर्म अगीकार कर लिया। फ़क़ीर ने उसका नाम रखा—'फ़तह मुहम्मद।' दोनो पीरो-मुर्शद की भाति झोपडी में रहने लगे।

यह वृद्ध मुस्लिम फ़क़ीर वास्तव में गज़नी के विख्यात विद्वान् अलबेरूनी थे जो अमीर के आदेश से सोमनाथपट्टन की गतिविधि देखने छद्मवेश में यहाँ आ बैठे थे। मुसलमान होने पर युवक पर भी यह भेद खुल गया। छद्मवेशी सुल्तान का आना और पीर के साथ उनका सम्बन्ध भी उससे छिपा नहीं रहा। उसकी श्रद्धा पीर पर बहुत बढ गई। अवसर पाकर शोभना के प्रति अपनी आसक्ति भी उसने पीर को बता दी, कुछ भी नहीं छिपाया। वृद्ध फ़क़ीर ने आश्वासन दिया—"धीरज धर, वक्त आने पर शोभना तेरी होगी। लेकिन इसके लिए तुझे इस तलवार की धार पर चलकर उसके पास पहुँचना होगा।" इतना कहकर फ़क़ीर ने एक बहुमूल्य विकराल तलवार युवक को दी। युवक ने तलवार मस्तक से लगाकर चूम ली। फ़क़ीर ने खुश होकर कहा—"तो तू अपने को अमीर का एक सिपहसालार समझ, और हर तरह अपने को इस योग्य बना।" इतना कहकर, फ़क़ीर ने उसे बहुत स्वर्ण देकर कहा—"घोडा और हथियार खरीद और सिपहसालार की तरह रह।" फतह मुहम्मद खूब ठाठ से रहने लगा। वृद्ध फ़क़ीर जैसे प्रौढ विद्वान् थे, वैसे ही तलवार के भी धनी थे। उन्होंने युवक को घुडसवारी और तलवार के फ़न में कुछ ही दिनो में अद्वितीय बना दिया। वह पक्का योद्धा और शहसवार बन गया तथा उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जब इन घमण्डी हिन्दुओ की छाती को अपनी तलवार से चीर कर अपनी शोभना को वह प्राप्त करेगा। अपमान की आग और प्यार की तडप ने उसे सिंह के समान पराक्रमी और साहसी बना दिया।

अवसर पाकर पीर की आज्ञा से वह गुप्त रूप से शोभना से मिला। उसे देखकर शोभना चौंक उठी। उसके बहुमूल्य वस्त्र और अश्व को देख वह आश्चर्य से विमूढ हो गई। उसने कहा—यह सब उसके पीर की महिमा है। उसने यह भी

बता दिया कि वह मुसलमान हो गया है, और शीघ्र गजनी के सुल्तान की रकाब के साथ रहकर वह सोमनाथ का भग कर, इसी तलवार के जोर पर शोभना को लेकर रहेगा। उसने यह भी कह दिया कि वह अमीर गजनी का एक सिपहसालार है।

शोभना कुछ समझी, कुछ नहीं समझी। वह उसकी बातों से भीत-चकित भी हुई, प्रसन्न भी। वह इस बात पर सहमत थी कि उसके साथ पति-पत्नी की भाँति जैसे भी सम्भव हो वह रहे।

फतह मुहम्मद ने उसे एक मुट्ठी भर सोना देकर कहा—"यह मेरे पीर ने तेरे लिए दिया है। अब जब-जब मैं आऊँगा, इतना ही सोना साथ लाऊँगा। मेरे पीर औलिया हैं, कीमियागर हैं। वह सोने का पहाड़ बना सकते हैं।"

सोना पाकर और बातें सुनकर शोभना का एक-एक रक्तबिन्दु नाचने लगा। उसे सब भाँति तसल्ली दे, फतह मुहम्मद विदा हुआ। शोभना आनन्द-विभोर हो गई।

१० : अली बिन-उस्मान अलहज़वीसो

लाहौर की अनारकली के उस छोर पर, जहाँ इस समय नीला गुम्बज है, उस काल में एक खानकाह था। इसमें प्रसिद्ध अरब विद्वान् संत अली-बिन-उस्मान अलहज़वीसी निवास करते थे। यह तत्त्वदर्शन के प्रसिद्ध ग्रंथ कशकुल महजूब के रचयिता थे। हज़रत अली-बिन-उस्मान का शरीर काला, ठिगना और वज़नी था। उनकी नाभि तक लटकती सफेद दाढ़ी उनकी गम्भीरता को बहुत बढ़ाती थी। अपने यौवन-काल में ये एक बलिष्ठ पुरुष रहे होंगे। प्रसिद्ध था कि ये एक पहुँचे हुए संत थे। और अपने पूर्व जीवन में एक भारी कबीले के सरदार थे। परन्तु ये अपने संबंध में कभी एक शब्द भी नहीं कहते थे। वे शुद्ध अरबी भाषा में भाषण करते थे। परंतु बहुत आवश्यकता होने पर टूटी-फूटी हिन्दी भी बोल लेते थे। खानकाह कच्ची थी, और उसके चारों ओर हरे-भरे बहुत-से पेड़-पौधे लगे थे। रात-दिन इस फकीर के पास आने-जाने वालों का मेला लगा रहता था। लाहौर में उनके बहुत शागिर्द थे। उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। सुबह-शाम यह संत उनसे तत्त्वदर्शन की बातें करते और दिन-भर मौन पड़े रहते। भक्तगण आते, बैठते, दर्शन करते और चले जाते। हज़रतअली की उम्र सत्तर को पार कर गई थी। यह प्रसिद्ध था कि लाहौर का हाकिम उनका मुरीद है, इस कारण भी इनकी बहुत प्रतिष्ठा बढ़ गई थी।

सन्ध्या गहरी होती जा रही थी, दो-चार भक्त इस साधु के पास बैठे धर्म-चर्चा कर रहे थे। उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। धीरे-धीरे एक-एक करके लोग उठने लगे। अभी रात होने में कुछ देर थी, इसी समय एक परदेशी सवार खानकाह के दरवाज़े पर उतरा। उसने आगे बढ़कर इस साधु को छूकर हाथ आँखों से

लगाया। आगन्तुक को देखकर वृद्ध फकीर अस्थिर हो गये। उनका संकेत पाकर एक शिष्य ने सब मनुष्यों को दूर कर दिया। एकान्त होने पर फकीर ने शुद्ध अरबी भाषा में कहा—

'आप क्या अकेले ही हैं ?"

"नहीं, मेरा घोड़ा और तलवार भी है" आगन्तुक हँसा।

"अलहम्दुलिल्लाह ! सुल्तान की यही हिम्मत उसको फतह दिलाती है।"

"और आप जैसे बुजुर्ग का साया भी। मगर इस बार की मुहिम मामूली नहीं है।"

"यह तो अमीर गजनी का कल्मा नहीं।"

"यह महमूद के दिल की बात है हज़रत !"

"क्या कोई नई बात देखने में आई ?"

"एक नहीं, तीन-तीन"

"वल्लाह, तो क्या ये बातें ऐसी हैं जिससे अमीर गजनी का दिल दहलता है।"

"बेशक हज़रत !"

'मसलन ?"

"वह जिनों का बादशाह, गैबी ताकतों और करामातों का मालिक।"

"आपने देखा ?"

"मुझे उसका महमान होने का फ़ख्र है।"

"महमान !"

"और शायद आदमजाद में मुझ हकीर को ही यह फख्र हासिल है।"

"क्या यह कुफ्र नहीं।"

"मैं नहीं जानता, हज़रत अल्बरूनी भी यही कहते थे।"

"अल्बरूनी ?"

"वे मेरी रकाब के हमराह थे।"

"हूँ, जिनों का यह बादशाह क्या अमीर गजनी का दुश्मन है ?"

"नहीं, दोस्त।"

"खैर, दूसरी दो।"

"वह गुसाईं।"

"गग ?"

"जी।"

"उसे देखा ?"

"देखा हज़रत !"

"उससे आप डरते हैं ?"

"जी नहीं, परस्तिश करता हूँ।'

"हुश, वह काफिर है।"

'हज़रत ! वह औलिया है।"

'क्या अमीर ग़ज़नी पर भी कुफ्र ग़ालिब हुआ ?"

"वह भी अर्ज करता हूँ।"

"और भी कुछ है ?"

"तीसरी बात।"

"वह क्या है ?"

"कुफ्र।"

"तोबा-तोबा।"

"हज़रत ! उस कुफ्र ने महमूद के दिल में डेरा डाला है।"

"क्या मैं अमीर ग़ज़नी से बात कर रहा हूँ ?"

"जी नहीं, आपके कदमों में यह नाचीज़ महमूद-बिन-सुबुक्तगीन है, जो बेव-कूफी से अपना दिल एक बेखबर काफिर के कदमों में फेंक आया है।'

'लेकिन सुल्तान महमूद तो ऐसे सौदों का आदी नहीं।"

"लेकिन जो होना था वह हो चुका।"

"अब अमीर का क्या ख्याल है ?"

"बस इसी पर यह मेरी तलवार है।"

"दोनों ईमान ?"

"वही मेरा दोनों ईमान है।"

"इस्लाम ?"

"उसके बाद।"

फकीर चुप हुए। बहुत देर तक सन्नाटा रहा। फिर उन्होंने धीरे से कहा—

"कौन है वह बला ?"

"एक नाजनीन।"

फकीर फिर गहरी चिन्ता में डूब गये। उसके होठ फड़के, एक फुस्फुसाहट हुई—"अफ़सोस-सद अफ़सोस।" फकीर की आंखों से झर-झर आंसू झरने लगे।

महमूद एक बालक की भांति विकल होकर डरते-डरते बोला—"क्या मेरी यह मुहिम नाकामियाब होगी ?"

"अलहम्दुलिल्लाह! कामियाब होगी। मगर यही आखिरी मुहिम होगी। और सुल्तान जिन्दा जरूर गज़नी पहुँचेगा, मगर बेकार।"

सुल्तान का मुंह सूख गया। उसने कहा—"क्या मैंने हज़रत को नाराज कर दिया ?"

"सुल्तान! जब तुम अपना दिल और तलवार एक नाजनीन को दे आये हो तो अब मुझे क्यों तकलीफ देते हो ?"

"लेकिन हुजूर! महमूद ने अपनी सत्रह शानदार फतह आप ही के पाक साये में हासिल की है।"

"खैर, अब मुझसे क्या चाहते हो ?"

"रहम, हज़रत! आखिर महमूद भी एक हाड-मांस का आदमी है।"

"मैं तुम पर रहम करता हूँ महमूद!"

"तो दुआ दीजिए।"

"दह चुका—फ़तह होगी।"

"लेकिन·········।"

"अमीरे गज़नी को मुनासिब नहीं कि फ़कीर को तंग करे। अमीर के सब अहकाम बजा लाये गये हैं, मसऊद को वापस गज़नी भेज दिया गया।"

"मैं भी गज़नी वापस जा रहा हूँ।"

"सोचने समझने के लिए नहीं—दिल का जो सौदा कर आये हो उसकी जितनी मुमकिन हो कीमत जुटाने के लिए। खैर, मुझसे सुल्तान अब क्या चाहते

हैं ?"

"सिर्फ एक काम।"

"क्या ?"

'सिर्फ मुल्तान को ठीक कर दीजिए, और सब मैं देख लूंगा।"

"वहाँ का राजा जयपाल मेरा मुरीद है, मैं कसर न रखूंगा।"

"हज़रत! आपकी इस एक ही मदद से मैं अपने मकसद को पहुँच सकूँगा।"

"तो अमीर, इन्शा अल्ला ताला यह कुछ मुश्किल न होगा। मेरी दुआ से उसे बेटा हुआ है। वह मेरी बात टाल न सकेगा।"

महमूद प्रसन्न हुआ। उसने झुककर उस फकीर का क़बा चूम लिया।

साधु ने कहा—"क्या सुल्तान आज ही रवाना होंगे ?"

"नहीं हज़रत, मैं और मेरा घोड़ा दोनों ही एकदम थक गये हैं। आज मैं आपकी खानकाह में आराम करूँगा। क्या कुछ खाने को मिलेगा ?"

"मकई की रोटियाँ और सरसों का साग है।"

"तो लाइए हज़रत।"

"फकीर उठकर दो रोटियाँ ले आया।"

सुल्तान ने हथेली पर रखकर मकई की रोटियाँ सरसों के साग से खाईं, और साधु की सुराही से ठण्डा पानी पिया। फिर हँसकर कहा—"हज़रत! बड़ी मीठी रोटियाँ हैं।" इसके बाद अमीर अपने हाथ से घोड़े का चारजामा बिछा और नगी तलवार सिरहाने रख वहीं भूमि पर सो गया। वृद्ध फकीर सारी रात उस अप्रतिहत-विजेता के सिरहाने बैठ प्यार और अफ़सोस के आँसू बहाते रहे।

११ : ईद का दरबार

गज़नी नगर के निकट कोहे सुलेमान की तराई में एक खुशनुमा घाटी थी जो तमाम तातार में फूलों की घाटी के नाम से विख्यात थी। वह खुशनुमा घाटी बारहों मास चमेली और गुलाब से आच्छादित और उन्हीं के फूलों से सुवासित रहती थी। वहाँ से दूरतर गज़नी की अनगिनत मस्जिदों की गगन-चुम्बी मीनारें और उन्नत गुम्बज सुनहरी धूप में चमकते दीख पड़ते थे। यहीं अमीरे-गज़नी ने, अपनी नई छावनी डाली थी। वह आज ईद का दरबार अपने शाही दीवानखाने में न करके अपने उन योद्धाओं के बीच करना चाहता था, जिनके साथ उसने निरन्तर इक्कीस वर्ष तक धरती को रौंदा था, अपनी वज्र की एड़ियों से देशों, नगरों, जनपदों को कुचला था, रक्त की नदियाँ बहाई थीं, अपने हाथ से काटे हुए लक्ष-लक्ष नर-मुण्डों पर विजय-स्तम्भ स्थापित किए थे, मृत्युदूत बनकर जीवन का विनाश किया था।

बीस हज़ार गोल तम्बू वृत्ताकार फैले थे। जिन पर रंग-बिरंगी रेशमी पताकाएँ हवा में लहरा रही थीं। सबके बीच में महमूद का विशाल खीमा था, जिसका हर बाजू सवा सौ कदम लम्बा था। उसकी ऊँचाई तीन नेज़ों के बराबर थी। और उसका मध्य भाग बारह स्वर्ण-स्तम्भों पर टिका था, जिनकी मोटाई मनुष्य की मोटाई के बराबर थी। लाल रंग की पाँच सौ रेशमी डोरियाँ उस विराट् खीमे को थामे हुए थीं। नीली, पीली, लाल और हरे रंग की पट्टियों से खीमे का बाहरी भाग सुसज्जित था। यह समूचा तम्बू सफ़ेद चमड़े का बना था।

खीमे के फ़र्श पर बहुमूल्य ईरानी कालीन बिछे थे, जिन पर सुनहरी

तारों का काम हो रहा था। खीमे के बीचोबीच ठोस सोने का सिंहासन था, जिसके चारों कोनो पर चार उकाब चाँदी के बने थे। सिंहासन पर कमख्वाब का चदोवा तना था, जो रत्न-जटित डडो पर फैला हुआ था। सिंहासन पर वह अजेय, अप्रतिहत रथी, सखीमे फिरानी, बादशाहो का बादशाह, अमीर महमूद बैठा था।

वह जो चोगा पहने था, उस पर हजारो मोती और हीरे टँके थे। उसके मस्तक पर जो हरी पगडी सुशोभित थी और उसके तुर्रे पर जो तेजस्वी लाल जडा था, वह उसके इधर-उधर सिर हिलाने पर ऐसा दीख पडता था, मानो एक अग्नि-स्फुलिङ्ग पूर्ण विश्व को भस्म करन के लिए उसके मस्तक में उदय हुआ हो। उसकी आँखें लम्बी और तेज थी। उनसे कुछ भी नही छिपाया जा सकता था। अरबों का प्रिय रत्न जमर्रद का एक बडा-सा तोक उसके गले में पडा।

सुवासित मद्य से भरे हुए चार सौ घडे और शाही भोज का सुस्वाद दस्तर-खान करीने से प्रस्तुत था, जिनमें भाँति-भाँति के मेवे, तले और भुने हुए मास तथा भाँति-भाँति के मिष्टान्न पक्वान थे।

अमीर के पीछे गवैये और पैरों के पास रिश्तेदार, दूसरे बादशाह, अमीर, सरदार आदि बैठे थे, किन्तु उसकी बगल में कोई न था।

आनन्द और विजयोत्सव के जितने साधन जुटाये जा सकते थे। वे सब वहाँ एकत्र थे। चारो ओर जोर से बाजे बज रहे थे। खीमे के सामने मैदान में अनेक मनोरजक खेल खेले जा रहे थे, जिन्हें जनता और सैनिक उत्साह और आनन्द से देख रहे थे। कहीं भाँड और हँसोड अपने करतब दिखा दिखाकर लोगो को हँसा रहे थे। कहीं पहलवान कुश्ती लड रहे थे, कही नट अपने अग मरोड रहे थे, कही तलवारबाजी, नेजेबाजी और घुडसवारी का चमत्कार दिखाया जा रहा था। कहीं लौंडे जनाने कपडे पहने नाच-गा रहे थे। टफ़ की ताल पर उनकी आँखों के पलक और पैर एक साथ ही उठते गिरते थे। लोग खुश होकर तालियाँ पीट रहे थे।

अमीर खुश किन्तु गम्भीर था। वह उस भारी जनरव और ऐश्वर्य के बीच जैसे डूबा जा रहा था। जब सलामी और नजराने की रसूमात पूरी हो चुकी, तो उसने जलद गम्भीर स्वर में एक हाथ ऊँचा करके कहा—"मैं, अमीर महमूद,

खुदा का बन्दा वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। रसूलेपाक और खुदा के नाम पर—जिसके समान दूसरा कोई नहीं है—मैं अमीर महमूद खुदा का बन्दा, आज ईद मुबारक के साथ तुमसे, जो मेरी रकाब के जाँनिसार साथी हैं, और जिनके घोडों की टापों ने आधी दुनिया रौंदी है, वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। हम चल रहे हैं, *अपनी सबसे बड़ी मुहिम को फतह करने, जिसकी इन्त-* जारी फिरदौसी और अलबरूनी उस काफिर जमीन पर कर रहे हैं, जिसकी हर शै दीनदारों के लिए है। दोस्तो, मैं जानता हूँ, तुम्हारी तलवारों की धार तेज है, तुम्हारे घोड़े तरोताजा हैं, और तुम्हारे घोड़ों की जीनें, जिन्हें तुम पिछली बार चाँदी, सोने से भर लाये थे, खाली हो रही हैं और तुम मेरे दोस्तो, उन्हें फिर से *भरने के लिए बेचैन हो। मैं दुआ देता हूँ कि तुम्हारी मुराद बर आये। और तुम* में से प्रत्येक अपनी जीन की लम्बी थैलियों को चाँदी, सोना और जवाहरात से भरकर और अपने घोड़ों की लगाम से चार-चार गुलाम बाँधकर घर लौटे—आमीन।"

जय-जयकार और तालियों की गड़गड़ाहट से दिशाएँ काँप उठीं। बड़े-बड़े नक्कारे और ढोल गरज उठे। *तलवारें झनझना उठीं। हजारों लाखों कण्ठों से* निकला—"आमीन—आमीन।"

इसके बाद सब सरदारों, सेनापतियों, वीरों और पदाधिकारियों को खिलअत इनाम बाँटे गये, विद्वानों का मुहरों और पदवियों से सम्मान किया गया।

दरबार बर्खास्त हुआ। अमीर की शाहखर्ची, शान और जलाल का बयान हर मुँह से सुनाई पड़ रहा था। वह ईद गजनी में *उमग, उत्साह, विजय* और सफलता की ईद थी।

१२ : कठिन अभियान

ईद का दरबार करके अमीर ने दूसरे दिन भोर में ही प्रस्थान किया। प्रस्थान के समय उसने सेना के समक्ष एक छोटा-सा सारगर्भित भाषण किया। यह अभियान अमीर के लिए अब तक के सब अभियानों से अधिक कठिन था। भारत की भूमि पर पैर रखने से प्रथम उसे एक-सौ पचहत्तर गाँवों की विकट मरुभूमि पार करनी थी। इस मरुभूमि में रेत और काली चिकनी मिट्टी को छोड़ दूसरी वस्तु न थी। न घास-फूँस, न जल, न वृक्ष, न छाया। प्रतिदिन बादे समूम के झोंके आते और दिन की रात हो जाती। पर अमीर को इस मरुस्थली का अनुभव था, यद्यपि उसको पार करना एक महासमर विजय करने के समान था, परन्तु अमीर ने अपने पूर्व अनुभव के आधार पर सब आवश्यक साधनों की व्यवस्था कर ली थी। उसने मार्ग में स्थान-स्थान पर सहायता-केन्द्र स्थापित कर लिये थे। इस तरह एक साहसिक और व्यवस्थित योद्धा की भांति वह अभियान पर आगे बढ़ा था। महमूद अपनी सम्पूर्ण सेना का सेनापति था। पर पहाड़ी लुटेरों की टुकड़ियों पर उसने पहाड़ी सरदारों को ही अधिकार दे रखा था। गज़नी की राजसत्ता महमद ममँदी को सौंप दलबल सहित वह खूब सतर्कता और सावधानी से अग्रसर हुआ था।

कूच का यह दृश्य भी अद्भुत था। उस दिन सब नगर-बाज़ार बन्द थे। लोग भाव भरी आँखों से इस विजेता का यह अभियान देख रहे थे। मातुर माताएँ आँखों में आँसू और आँचल में आशीर्वाद भरे पुत्रों को अज्ञात देश की ओर जाते देखने खड़ी थीं। कुलवधुएँ गोद में अबोध शिशुओं को और धड़कते हृदयों को हाथ से

•आए प्रिय पति को देख रही थी। मस्जिदों में मुल्ला उच्च स्वर से दुआ पढ़ रहे थे।

कटक का विस्तार बहुत था। पचपन हज़ार मर मिटने वाले तुर्क सवार नगी तलवारें चमचमाते, पिघले हुए लोहे की नद की भाँति बढ़े चले जा रहे थे। दस हज़ार मर मिटने वाले ममलूक योद्धा कीमती अरबी घोड़ों पर सवार एक जीवित दुर्ग बनाकर चल रहे थे। इसके बाद बुखारे के बीस हज़ार ऊँटों पर चालीस हज़ार सधे हुए तीरन्दाज़ थे। डेरा-तम्बू वाले, मार्ग-दर्शक, मार्ग-सशोधक, तेली, तम्बोली, बावर्ची, साईस, मल्लाह, दुकानदार, वेश्याएँ, लौंडे, दर्वेश, मुल्ला, साँई आदि की गिनती न थी।

मंजिल पर मंजिल मारता अमीर का यह कटक डेरा इस्माईल खाँ के उस ओर के पहाड़ों की तलहटी में आ पहुँचा। ये पहाड़ियाँ अतिविकट, दुर्गम और निर्जन थीं। उनके शिखर बारहों मास बर्फ से ढके रहते थे। ग्रीष्मकाल में जब बर्फ पिघलता तो दर्रे को चीरता हुआ और वहाँ के यात्रियों को अपने में लपेटता हुआ चला जाता था। शीतकाल में वहाँ इतनी ठण्ड पड़ती थी कि मनुष्य के शरीर का रक्त ही जम जाता था। परन्तु महमूद के अनुभवी मस्तिष्क के कारण उसकी सेना का इस कष्ट से बहुत कुछ बचाव हो गया। इसके दो कारण थे, एक तो अभी वर्षाऋतु समाप्त ही हुई थी और शीतकाल नहीं आया था। कड़ी ठण्ड नहीं पड़ी थी। बर्फ जमने से पहले ही उसकी सेना ने घाटी पार कर ली थी। दूसरे उसकी सेना के सभी योद्धा उस शीत बर्फ और कठिनाई के अभ्यस्त थे। उनके लिए यह कुछ नई वस्तु न थी।

गाड़ियाँ और दूसरे वाहन इस तंग दर्रे को पार नहीं कर सकते थे। इसलिए महमूद ने ऊँट, खच्चर और घोड़ों से ही काम लिया था। उसने निर्विघ्न इस दर्रे को पार कर लिया। यहाँ से दर्रे के आस पास के खूँखार कबाली पठानों के दल-बादल सुल्तान की सेना में मिलते गये। जैसे नदी में बहाव आता है, उसी भाँति अमीर का कटक दिन-दिन वृद्धि पाता हुआ अटक के कूल पर आ टिका।

१३ : महानद के तट पर

सिन्धुनद भारतीय सीमा पर महानदी है। इसका विस्तार देखकर इसे नदी न कहकर नद कहते हैं। यह नद पर्वतेश्वर हिमालय के अंचल से निकलकर अरब समुद्र में गिरता है। बारहों मास यह नद अथाह जल से परिपूर्ण रहता है। उसका प्रवाह तीव्र, जल अगाध और पाट मीलो तक का है। इस महानद को पार उतर-कर ही भारत-भूमि पर चरण रखना पडता है। सुल्तान महमूद ने इस कठिन कार्य की भी सब व्यवस्था ठीक कर रखी थी।

अमीर ने सिन्धु के उस पार दो दिन विश्राम किया। तीसरे दिन सिन्धु नद पार उतरने की व्यवस्था की। प्रत्येक पूर्णिमा को नद में ज्वार आता है। तब नद का जल ऊपर खारा और नीचे मीठा होता है। इस समय महानद समुद्र की भाँति गर्जना करता है और उसमें पर्वत के समान बडी-बडी लहरें उठती हैं।

अमीर ने तट से कुछ हटकर—कुछ ऊँची जगह पर अपनी छावनी डाली थी। छावनी का प्रबन्ध अति उत्तम था। घुडसवारों की टुकडियाँ उसके चारों ओर घूम फिरकर रात दिन पहरा देती थीं। पहरे का यह दायित्व एक दरबारी सरदार के सुपुर्द था। बीच में अमीर का लाल रंग का तम्बू था। जिसे चारों ओर कनातों से घर दिया गया था।

तीसरे दिन भोर होते ही नद पार करने की हलचल प्रारम्भ हो गई। कछुवे ,और बेडे नद में डाल दिये गये। बोझा ढोने वाले ऊँट और भारवाही पलटन पार उतरने लगी। घोडों पर, मशकों पर, बेडो पर, नावों पर साहसिक योद्धा तैर-तैरकर पार उतरने लगे। दिन भर नदी पार करने का क्रम चलता रहा।

सायंकाल के समय अमीर अपने मन्त्रियों एवं सेनापतियों के साथ नदी पार होने का दृश्य देखने तीर पर आया। दूसरे दिन मध्याह्न काल होते-होते सम्पूर्ण लश्कर भारत-भूमि पर निर्विरोध उतर गया। इस बर्बर डाकू का इस भाँति निर्विरोध इस पार उतर जाना और भारत का निश्चिन्त पड़े सोते रहना एक आश्चर्य की बात थी।

नद के इस पार अमीर का लश्कर विश्राम करने लगा। समय और ऋतु अति सुहावनी थी। वन में हरिण, मोर और दूसरे सहज शिकार बहुत थे। सुलतान के सरदारों ने अमीर से शिकार की आज्ञा चाही। सुलतान ने कुछ क्षण चुप रह-कर कहा—

"मेरे बहादुर सरदारो, हम ग़ज़नी की भूमि को छोड़कर यहाँ शिकार और तफरीह के लिए नहीं आये हैं। हमारा काम बहुत महत्त्व का एवं दायित्वपूर्ण है। अभी हमें बहुत कार्य करना है। वीरत्व-प्रदर्शन का मैदान अभी दूर है। इस बार हमें विकट मरुस्थली को चीरकर सोमनाथ की ईंट-से-ईंट बजानी है। दुश्मन का शिकार ही हमारा सच्चा शिकार है। वही हमारा सबसे प्रथम कर्तव्य है। इस सच्चे शिकार को छोड़कर बेकसूर हिरनों और परिन्दों को मारने से क्या लाभ। यह सब मुझे पसन्द नहीं। चलो बहादुरो, कूच करो, फतह करो और सुर्खरुही हासिल कर दीनोदुनियाँ में खुशहाली हासिल करो।"

इसके बाद ही अमीर ने तत्काल कूच करने का हुक्म दे दिया। खूँटों पर हथौड़ों की चोटें पड़ने लगीं। पलक मारते ही वह मायानगर अदृश्य हो गया। और ऊँटों, अश्वों, खच्चरों और पैदलों की अटूट कतार-की-कतार महासर्प की तरह रेंगती हुई भारत-भूमि पर अग्रसर हुई, जैसे यह विजयी योद्धा किसी बिना द्वार के दुर्ग में घुस रहा हो।

१४ : अजयपाल का धर्मसंकट

मुलतान के चौहान राजा अजयपाल बड़े धर्मसंकट में पड़ गये। लाहौर के जागृत पीर औलिया अली-बिन-उस्मान अलहजवीरी ने उन्हें संदेश भेजा था—कि "गजनी का सुलतान मुलतान की राह अपने रास्ते खुदा के हुक्म से जा रहा है, उसे जाने दे। इसमें दरेग करेगा तो तुझ पर और तेरी औलाद पर कहर नाजिल होगा।"

महाराज अजयपाल इस संदेश से व्याकुल हो गये। वे सिन्धु नद के दिग्पाल थे। गजनी के इस लुटेरे को वे अच्छी तरह जानते थे। परन्तु अभी तक मुलतान की ओर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी थी। जब से लाहौर के महाराज जयपाल ने अग्नि प्रवेश किया था, महमूद ने सदैव लाहौर होकर ही सोलह अभियान किये। मुलतान को उल्लंघन करने का यह पहिला ही अवसर था। इस बार उसे गुजरात को आक्रान्त करना था। इसलिए वह लाहौर न जाकर मुलतान की राह सीधा मरुस्थली को पार कर सपादलक्ष जाना चाहता था।

यद्यपि महाराज अजयपाल को अभी तक यह पता न था कि सुलतान किस अभिप्राय से इधर अभियान कर रहा है, फिर भी धर्मकेन्द्रों के इस शत्रु की प्रवृत्ति वे जानते थे। उनके सामने दो कठिनाइयाँ थीं। एक यह कि लाहौर के इस औलिया की आज्ञा का उल्लंघन वे नहीं कर सकते थे। उस वृद्ध मुसलिम फ़क़ीर पर इनकी श्रद्धा के तीन कारण थे। एक यह कि इसी की कृपा-सिफारिश और सहायता से उसे मुलतान का राज्य प्राप्त हुआ था। दूसरे उसके आशीर्वाद ही से उसे एकमात्र पुत्र उपलब्ध हुआ था। तीसरे यह कि ये औलिया बड़े पहुँचे हुए साधु प्रसिद्ध थे।

यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वे सुलतान के भेदिए हैं। उनकी आज्ञा खुदा की आज्ञा समझी जाती थी और वे यदि किसी भक्त को कोई आदेश देते थे तो यह समझा जाता था कि यह उसकी भलाई के लिए ही होता था। और यह बात स्पष्ट ही सत्य प्रतीत होती थी क्योंकि सुलतान की अथाह सेना से लड़ना आत्मघात था। उनके सामने घोघाबापा की तेजस्वी मूर्ति आई। वह सोचने लगा—समय पर मैं घोघाबापा को क्या मुंह दिखाऊँगा। क्या मैं उन्हें सूचना दूं? उनसे परामर्श करूँ, परन्तु इतना समय कहाँ है? फिर यदि उन्होंने युद्ध का ही परामर्श दिया और ऐसा तो वे करेंहीं गे। वे वीर पुरुष हैं, मरुस्थली के भीष्म हैं। वे यह थोड़ा ही विचारेंगे कि आगे-पीछे क्या होगा। वे तो सच्चे योद्धा हैं। कर्तव्य पर मर मिटना उनका मूलमन्त्र है। मैं क्या उन्हें जानता नहीं।

महाराज अजयपाल भारी धर्मसंकट में पड़े। वे कुछ भी निर्णय न कर सके। उन्होंने बहुत सोच-विचार कर गुप्तरूप से लाहौर की यात्रा करने की ठानी। अपनी तलवार और एक विश्वासी सेवक को ले एक अंधेरी रात में लाहौर की राह पर घोड़ा छोड़ा।

औलिया ने उनसे बहस नहीं की, अधिक बात भी नहीं की। वह जैसा विद्वान् और तेजस्वी प्रसिद्ध था, वैसा ही दम्भी भी था। बिना दम्भ के धर्म और सिद्धि का कारबार चलता भी नहीं। फिर इस फकीर पर तो सुलतान के गूढ़ आदेश थे। जब राजा ने विनम्र भाव से अपनी कठिनाई साधु के सामने रखी और नेक सलाह माँगी तो औलिया ने केवल इतना कहा—"खुदा का हुक्म हमने तुझे भेज दिया, अब तू जान। खुदा का हुक्म मान या गज़ब की आग में अपने तई और मुलतान को फूँक डाल। जा—फकीर को तंग न कर।"

औलिया फिर मौन हो गये। बोले ही नहीं। पार्षदों ने राजा को समझा-बुझाकर चलता किया।

मुलतान लौटकर अजयपाल ने राज्य-परिषद् बुलाई। शिष्ट नागरिकों का दल बुलाया। सबसे परामर्श किया। बहुत विचार-परामर्श हुआ। अन्त में निर्णय यही हुआ—युद्ध करना तो आत्मघात करना होगा। इससे हमारा सर्वनाश हो जायगा, अमीर रुकेगा नहीं। भलाई इसी में है कि सुलतान को राह

दे दी जाय। वह सिर्फ राह मांगता है, हम पर चढाई नही करता। औलिया ने ठीक कहा है। वे जागृत पीर हैं। हमारे शुभचिन्तक हैं, निर्लोभ हैं, उनका हुक्म खुदा का हुक्म है।

अमीर के सैन्य-सागर के सामने अजयपाल की सेना एक बूंद के बराबर भी नहीं थी। यदि वह लडता तो उसका, उसकी सेना का और मुलतान का सर्वनाश निश्चित था। अपना सर्वनाश करके भी वह सुलतान को रोक नहीं सकता था। फिर अपना सर्वनाश करने से क्या लाभ ? परन्तु देश और धर्म के इस प्रबल शत्रु को कैसे वह देश में घुसने दें ? यह भी एक प्रश्न था। यह उसके क्षत्रियत्व का प्रश्न था। मरुस्थली के द्वार पर घोघागढ में उसके दादा घोघाबापा बैठे हैं। लोहकोट में भीमदेव है। सपादलक्ष में महाराज धर्मगजदेव है। ये सब सम्बन्धी वीर और तेजस्वी पुरुष हैं। ये सब उसकी कायरवृत्ति देखकर क्या कहेंगे ?

महाराज अजयपाल को कोई ओर-छोर नही मिला। वह सोचने लगे—अवश्य ही अमीर को राह देना पाप है, परन्तु पाप का भागी क्या मैं ही हूं ? यह अभागा भारत देश क्यो खण्ड-खण्ड है। क्यो नही एक सूत्र में सगठित है। सब लोग छोटे-छोटे राजा बने बैठे हैं। वे सब अपनी ही अकड में मस्त हैं। इतना बडा विशाल भारत देश कैसे विदेशी लुटेरो के हाथ लूटा जाता है। यह तो हम देखते ही हैं, परन्तु सब हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं। कोई किसी की नहीं सुनता, फिर मैं ही क्या करूँ ? मेरी शक्ति ही कितनी, हैसियत ही क्या ? पाप ही है तो सबका है। मैं यदि सुलतान का विरोध करता हूँ, तो मेरा तो सर्वनाश होगा ही, यह समृद्ध मुलतान शहर भी लूट और आग की भेंट होगा। यह क्या पाप नहीं होगा ? मैं जिस देश का राजा हूँ, क्या उसे बचाना मेरा धर्म नहीं है ? क्या वह पाप इस पाप से भी बडा होगा ?

अन्त में अजयपाल ने इसी में भलाई समझी कि वह सुलतान को राह दे दे। फिर उसका परिणाम जो हो सो हो।

१५ : मुलतान के द्वार पर

गजनी से कूंच किये अभी पूरा एक महीना भी नहीं बीता था कि अमीर ने मुलतान के द्वार पर बाग रोकी।

काबुल की विकट घाटी पार कर सिन्धुनद जैसी अगाध नदी को पार उतर, और ऊजड़ रेगिस्तानों को लाँघकर केवल एक मास के अल्पकाल में शत्रु देश के एक समृद्ध राज्य की सीमा में निर्भय घुस आना कोई साधारण काम न था। पर महमूद के लिए यह एक मनोरंजक खेल था।

मुलतान सिन्धु के मुख पर अतिप्राचीन नगर है। उसका प्राचीन नाम मूलस्थान था। सम्भवतः आर्यों ने जब भारत प्रवेश करके पंचसिन्धु में अपना प्रथम राज्य कायम किया था तब इस नगर की बुनियाद पड़ी हो। मुलतान में सूर्य का प्रसिद्ध मन्दिर था, जिसके दर्शनपूजन के लिए देश-देश के यात्री निरन्तर आते रहते थे। यह मन्दिर कभी समूचा स्वर्ण का बना था, परन्तु जिस काल की हम बात कह रहे हैं, उस काल में भी उसका वैभव अतोल था। यह कैसे हो सकता था कि महमूद जैसे लुटेरे और उसके डाकू साथियों की लोलुप गृद्ध-दृष्टि उस पर न पड़ती।

परन्तु मुलतान ने बिना विरोध और बिना शर्त सुलतान को केवल आत्मसमर्पण ही नहीं किया, अपितु वहाँ के राजा ने बहुमूल्य भेंट लेकर अमीर का अभिनन्दन किया। यह एक चमत्कार कहा जा सकता था। जिसने सुना उसी ने चमत्कृत हो दाँतों तले उँगली दबाई। परन्तु इस चमत्कार के भीतर जो चमत्कार था, उसे तो केवल अमीर ही जानता था। बिना प्रयास मुलतान को ताबे होते देख

अमीर बड़ा प्रसन्न हुआ। इसे उसने एक शुभ शकुन समझा। अमीर की अवाई सुनकर बहुत जन भयभीत हो नगर छोड़ भाग खड़े हुए थे। अमीर के बर्बर लुटेरे मुलतान को लूटने को अधीर हो रहे थे। किन्तु हज़रत अली-बिन-उस्मान ने सुलतान को कहला भेजा था कि मुलतान को कदापि लूटा न जाय और महाराज अजयपाल से मित्रवत् व्यवहार किया जाय। अमीर ने औलिया को ऐसा ही आश्वासन कृतज्ञता सहित भेज दिया था।

अमीर महमूद जैसा साहसी योद्धा और कुशल सेनापति था वैसा ही विलक्षण राजनीतिज्ञ भी था। मुलतानपति महाराज अजयपाल की उसने एक दरबार करके धूमधाम से अभ्यर्थना की और उसे बराबर बैठाकर कुशलक्षेम पूछा।

वास्तव में महाराज अजयपाल अपने काम पर लज्जित थे। उनका कार्य चाहे भी जितना राजनीतिमूलक और बुद्धिमत्ता का था, पर निन्दनीय तो था ही। सबसे बड़ा भय उनको घोघाबापा का था, जिनके शौर्य और बड़प्पन के आगे अजयपाल को सदैव झुकना पड़ता था। अमीर की यह अभ्यर्थना उसे विष के समान लगी। और वह बड़ी देर तक अमीर के सम्मुख आँखें नीची किये बैठा रहा।

किन्तु अमीर ने राजा के मनोभावों को ताड़ लिया। उसने खुशामद भरे स्वर में कहा—"महाराज, जैसे मैं दुश्मनों के लिए सख्त हूँ, वैसा ही दोस्तों के लिए नर्म। आपसे मैं बहुत खुश हूँ और आज से आप मेरे दोस्त हैं। अपनी इस दोस्ती के सिले में मैं आपको पंजाब और सिन्ध के वे इलाके देता हूँ जो अब तक मेरे कब्जे में थे। मिहरबानी करके इन्हें कबूल फर्माइए और हमेशा ऐसी ही दोस्ती कायम रखिए।"

सिन्ध के इन इलाकों पर कब्जा हो जाना मुलतानपति के लिए साधारण प्रलोभन न था। इससे उसका राज्य ही दूना हो गया। वह सोचने लगा—एक तरफ अमीर को नाराज़ करके विनाश को निमन्त्रण देना था, दूसरी तरफ उसे प्रसन्न करके क्षण भर ही में उसका राज्य दूना हो गया।

उसने झुककर अमीर का अभिवादन किया और कहा—"सुलतान यदि सचमुच ही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे एक वचन दें, ताकि सुलतान की कृपा कभी न भूल सकूँ।"

सुलतान ने कहा—"मेरे दोस्त, जो चाहते हो, अपने सुलतान से ले लो।"

"तो यशस्वी सुलतान, हमारे इष्टदेव सूर्य के मन्दिर की रक्षा करें, उसे खण्डित न करें और मेरे मुलतान को भी अभयदान दें।"

सुलतान ने कहा—"मुलतान को लूटा नहीं जायगा, आप इत्मीनान रखिए, सिर्फ शहर के कुछ मुखियों को मेरे पास भेज दीजिए। मैं उनसे थोड़ा-सा दण्ड लेकर ही सन्तुष्ट होऊँगा। वह भी सिर्फ अपनी आन कायम रखने के लिए।"

राजा ने गर्दन नीची करके उदास भाव से कहा—"खैर, मगर दूसरी प्रार्थना।"

"आप जानते हैं महाराज, कि मैं कुफ्र को बर्दाश्त नहीं कर सकता, और मशहूर बुतशिकन हूँ।"

"जानता हूँ सुलतान, मगर सूर्यदेव के इस मन्दिर की बदौलत ही मुलतान की सारी समृद्धि, शोभा और प्रसिद्धि है। देश देश के जो यात्री सूर्यदेव के दर्शन को आते हैं, उनकी खरीद-बिक्री से मुलतान के बीस हजार कारीगर और पचास हजार दूकानदार अपनी रोटी चलाते हैं। मन्दिर भंग होने से उनकी रोजी तो जायगी ही—मुलतान का सारा गौरव-वैभव भी नष्ट हो जायगा। इससे तो अच्छा यही है कि सुलतान मेरा सिर काट लें और फिर नगर को लूट-पाटकर उसमें आग लगा दें।" बूढ़े राजा ने आँखों में आँसू भरकर उत्तेजना से काँपते-काँपते ये शब्द कहे।

अमीर ने तपाक से राजा का हाथ पकड़कर कहा—"नहीं दोस्त, ऐसा नहीं हो सकता। महमूद अपने मिहरबान दोस्त को कभी नाराज नहीं कर सकता। आपकी बात मानता हूँ, मगर आपको मेरा एक काम करना पड़ेगा।"

"कहिए।"

"लोहकोट, सपादलक्ष और झालौर के राजा आपके नजदीकी रिश्तेदार हैं। घोघाबापा भी आपके बुजुर्ग हैं। आप इन्हें समझा-बुझाकर मुझे गुजरात की राह दिला दीजिए। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि इन राजाओं से मैं उसी तरह पेश आऊँगा जैसे आपसे। मैं उम्मीद करता हूँ कि लोहकोट, सपादलक्ष और झालौर के राजा तथा घोघाबापा भी आपकी ही तरह अपना नुकसान-

फायदा समझ जायेंगे और मेरे रास्ते में हारिज न होंगे। मैं अपनी दोस्ती के सिले में आपके हाथों इन आपके सम्बन्धियों को मुनासिब नज़राना भी भेजना चाहता हूँ।"

महाराज का धर्मसंकट बढ़ गया। वे सोच में पड़ गये। अमीर ने ज़रा तेज़ स्वर में कहा—"मैं तो उनसे आप ही की भाँति दोस्ती का व्यवहार करना चाहता हूँ, इसे वे अस्वीकार करें तो उनकी मर्ज़ी है। अगर औलिया ने जो राह आपको भलाई की बताई है, वही आपके इन रिश्तेदारों के लिए भी है। फिर आपकी इस तकलीफ़ के बदले में सारा ही पश्चिमी पंजाब आपके हवाले कर दूँगा।"

अछता-पछताकर निरुपाय अजयपाल को अमीर का अनुरोध मानना ही पड़ा। भय और प्रलोभन ने उसका सिर नीचा कर दिया। अमीर ने प्रसन्नवदन सिरोपाव दे उसे विदा किया। अब उसे राजस्थान की विकट मरुस्थली पार करनी थी, जिसमें अनेक भौतिक और राजनैतिक बाधाएँ थीं। इस भयंकर मरुस्थली में सैंकड़ों कोस तक जल का नाम-निशान न था। न पेड़ पौदे या हरियाली थी, न राह-बाट। दिन में कई बार प्रचंड तूफ़ान आते और रात-सा अन्धकार छा जाता। पर्वत के समान रेत के टीले देखते-ही-देखते इधर-से-उधर लग जाते थे। परन्तु ये भौतिक बाधाएँ तो थीं ही। इस मरुस्थली के मुख पर चौहान भीष्म घोघा-बापा घोघागढ़ में सतर्क बैठे थे। घोघाबापा अजयपाल के सम्बन्धी थे। मुलतान और मरुस्थली के बीच में लोहकोट में अजयपाल का भतीजा भीमपाल चौकी दे रहा था। मरुस्थली के उस छोर पर झालोर के प्रसिद्ध रावल वाक्पतिराज की चौकी थी।

ये सारी बाधाएँ साधारण न थीं, पर अमीर का साहस भी साधारण न था। उसने सब ऊँच-नीच समझा-बूझाकर अजयपाल को अपने विश्वासी सेनापति सालार मसऊद और हज्जाम तिलक के साथ बहुत-सी रत्न मणि लेकर लोहकोट, सपादलक्ष, झालोर, घोघागढ़ एक मज़बूत दस्ते के साथ भेज दिया। अजयपाल अपने पुत्र को मुलतान सौंप अमीर के दूतकर्म करने चल दिया।

अब अमीर ने इस काम से निवृत्त होकर फिर नगर पर दृष्टि डाली। अजयपाल को वह नगर न लूटने का वचन दे चुका था—लाहौर के पीरमुर्शिद का भी

यही आदेश था। सूर्य का मन्दिर भी यह नहीं लूट सकता था, यद्यपि वहाँ की सम्पदा ने लोलुप दृष्टि को चल विचलित कर रखा था। उसने मुलतान के प्रमुख नागरिकों के प्रतिनिधि मण्डल को अपने सामने हाजिर होने का हुक्म दिया। नगर के इक्कीस प्रमुख भद्र नागरिक डरते-काँपते अमीर के सम्मुख आ उपस्थित हुए।

अमीर ने उनसे शान्त स्वर में कहा—

"नागरिको! आप लोगों को किस मतलब से यहाँ बुलाया गया है, यह आप समझ गये होंगे। आप लोगों ने हमारा सामना नहीं किया, हमारे साथ दुश्मनी नहीं की, इसलिए आपके नगर को लूटने या उसे हानि पहुँचाने की हमें तनिक भी इच्छा नहीं है। बस आप लोग हमें दो करोड़ रुपया दण्ड दे दें तो हम तुरन्त यहाँ से कूच करें। यदि आप यह जुर्माना अदा करने में देर या हीला-हवाला करेंगे और अकारण हमें रोक रखेंगे तो हमें लाचार दूसरा सख्त कदम उठाना पड़ेगा। इससे बताइए आप लोग जुर्माना अदा करने के लिए कितनी मुद्दत चाहते हैं?"

मुलतान की बात सुनकर नागरिकों ने भयपूरित नेत्रों से उसे देखा और करबद्ध कहा—

'हमने आलीजाह का कोई नुकसान नहीं किया, कोई कुसूर नहीं किया, फिर इतना भारी जुर्माना हमारे गरीब शहर पर क्यों? इतना भारी दण्ड मुलतान के गरीब लोग नहीं भर सकते।"

परन्तु सुलतान इस धातु का बना नहीं था कि ऐसे दीन वचनों से पिघल जाय। उसने तुरन्त उन प्रमुख जनों को कैद करने की आज्ञा दे दी। तथा उन्हें भूखा-प्यासा रहने दिया। परन्तु प्रमुख नागरिक—कष्ट भोगकर भी दण्ड देने में अपनी असमर्थता दिखाते रहे।

अली अब्बास ने अमीर को कुछ कम दण्ड करने का परामर्श दिया, पर अमीर ने यह स्वीकार नहीं किया। और नागरिकों पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। उन्हें चित्त लिटा कर उनकी छाती पर पत्थर रखवाये। उन्हें धूप में टाँगें फैलाकर खड़ा कर दिया।

राजा नगर छोड़कर भाग गया है और अमीर नगर के प्रमुखों पर अत्याचार

कर रहा है, यह अफवाह नगर में फैल गई। लोग चारों ओर से सिमटकर सूर्यदेव के पुजारी सोमदेव के पास पहुँचे।

सोमदेव की अवस्था अस्सी को पार कर गई थी। उन्होंने पूरे साठ वर्ष तक सूर्यदेव की आराधना की थी। नागरिकों को भयभीत और अरक्षित देख सोमदेव स्वयं सुलतान के पास गये। परन्तु अमीर ने उनका भी अनुरोध नहीं माना। इस पर सोमदेव ने मन्दिर का सब धन रत्न दण्ड देकर नगरजनों को मुक्ति दिलाई।

अनायास ही, केवल इतनी ही धूम-धमाके से इतनी भारी रकम पाकर अमीर प्रसन्न हो गया। अब उसने मरुस्थली की दिशा में प्रयाण करने की अविलम्ब तैयारियाँ कीं। उसने सारी सेना की परेड की। उसका नए सिरे से सगठन किया। नए दल नए सेनापतियों को बांटे। मरुस्थली पार करने के सब उपलब्ध साधन जुटाये। पांच सौ हाथियों पर बहुत-सी खाद्य-सामग्री और बीस हजार ऊँटों पर पीने का पानी साथ ले उसने मरुस्थली पर बाग उठाई, जिसके एक नाके पर गृध्र की-सी दृष्टि जमाये मरुस्थली के भीष्म घोघाबापा बैठे हुए थे और उस छोर पर झालौर के महावीर वृद्ध व्याघ्र रावल वाक्पतिराज की चौकी थी, जिसमें सैकडों कोस तक जल का नाम-निशान न था। न पेड़, न पौधे, न हरियाली, न राहबाट। जहाँ मृत्यु रेत और आंधी से आंखमिचौनी खेलती थी।

१६ : घोघाबापा

मरुस्थली के सिर पर घोघागढ नामक एक छोटा-सा किला था। किला एक ऊँची और सीधी खडी हुई अगम चट्टान की चोटी पर था। दुर्गम गिरि पर विराजमान गरुड की भाँति वह छोटा-सा दुर्ग उस समय बहुत महत्त्व रखता था। बिना इस दुर्ग की दृष्टि में पडे कोई इस मरुस्थली में प्रविष्ट न हो सकता था।

गढपति चौहान कुलशिरोमणि वीर घोघा राणा थे। घोघा राणा अतिवृद्ध थे। उनकी आयु नब्बे को पार कर रही थी। परन्तु उनकी दृष्टि सतेज और कण्ठस्वर वज्रघोष के समान गम्भीर था। घोघा राणा बडे वीर और धर्मपरायण थे। अपने उदात्त गुणो और वयोवृद्ध होने से वे आस-पास सर्वत्र राजवर्ग में तथा सर्वसाधारण में घोघाबापा के प्रिय नाम से चिर-विख्यात थे। घोघाबापा का रग गोर, कद लम्बा तथा शरीर इकहरा था। इतनी आयु में भी उनकी कमर नहीं झुकी थी। उनकी धवलगलमुच्छेदार मूछें उनके तेजस्वी चेहरे पर अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होती थीं। वे मन के शुद्ध, हँसमुख और सरल पुरुष थे। वे मरुस्थली के महाराजा कहाते थे।

घोघाबापा के परिवार में पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, दौहित्र, सब मिलाकर बयासी पुरुष थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम सज्जनसिंह था। सज्जनसिंह की आयु इस समय पैसठ को पार कर रही थी। उसमें पिता के सब गुण विकसित हुए थे। वे एक उत्कृष्ट योद्धा और सच्चरित्र पुरुष थे।

सज्जनसिंह के केवल एक पुत्र था सामन्त। इसकी आयु २५ या २६ वर्ष की

थो। सामन्त अति सुन्दर, सुकुमार और साहसिक युवक था और घोघाबापा सबसे अधिक इसे ही प्यार करते थे।

घोघाबापा के इष्टदेव सोमनाथ थे। उन्होंने सोमनाथपट्टन से महादेव का लिंग लाकर गढ के मध्य में बडी धूमधाम से प्रतिष्ठित किया था। इस मंदिर की पूजा-अर्चना घोघाबापा के कुलगुरु ब्राह्मण नन्दिदत्त करते थे।

नन्दिदत्त बडे विद्वान् और सच्चरित्र पुरुष थे। उनकी आयु भी सत्तर से ऊपर हो चुकी थी। नन्दिदत्त ही घोघाबापा के राज्य-मन्त्री, पुरोहित, गुरु और प्रिय मित्र थे। घोघाबापा जब क्रुद्ध होते और जब कोई भी उनके निकट नही जा सकता था, तब नन्दिदत्त ही उनके सम्मुख बात करने का साहस कर सकते थे। नन्दिदत्त ही ने सज्जन और सामत दोनो को अक्षराभ्यास कराकर शास्त्र का अध्ययन कराया था।

घोघागढ में कुल आठ सौ राजपूत और तीन सौ अन्य पुरुष थे। सब मिलाकर सात सौ स्त्रियां थी। बच्चे भी थे। ये सब, राजा और प्रजा इस मरुस्थली के शीर्षस्थल पर एक सम्मिलित परिवार की भांति रहते थे। घोघाबापा अपनी प्रजा के राजा ही न थे, पिता भी थे। प्रत्येक के छोटे से छोटे दुःख-सुख का उन्हें बहुत ध्यान रहता था।

गजनी के अमीर की अवाई सुनकर घोघागढ में भी उत्तेजना और चिन्ता की लहर फैल गई थी। घोघाबापा कानो से कुछ ऊंचा सुनते थे। यहां यह कहने की आवश्यकता नही कि लोहकोट के भीमपाल ने भी अजयपाल के परामर्श से अमीर को राह दे दी थी। मुलतान और लोहकोट का यह पराभव-वृत्तात घोघागढ पहुंच चुका था। सज्जनसिंह और नन्दिदत्त ने यह वृत्तात घोघाबापा को उनकी वृद्धावस्था का विचार करके सुनाया नही था परन्तु वे बडी बेसब्री से आगे के समाचार जानने को व्यग्र हो रहे थे।

एक दिन गजनी के दूतो ने घोघागढ की पौर पर सांढनी रोकी। गढवी एक अधेड वय का चौहान योद्धा था। उसका नाम राघव था। आयु उसकी भी सत्तर को पार कर गई थी। उसने चिन्तित भाव से दूतो को वही रोक सज्जनसिंह को सूचना दी। सज्जनसिंह ने नन्दिदत्त से परामर्श कर दूतो को गढ में प्रविष्ट होने

को लेकर घोघाबापा के पास पहुंचे ।

इधर-उधर की बात छिड़ने के बाद नन्दिदत्त ने कहा—"महाराज, गज़नी का सुलतान गुजरात में घुसा चला आ रहा है। उसके पास अगणित बर्बर म्लेच्छों की सैन्य है। सुनते हैं, वह इस बार सोमपट्टन को आक्रान्त करेगा। सोमनाथ के ज्योतिर्लिङ्ग को भग करेगा।"

घोघाबापा ने कहा—"वह आता है—आता है, यह तो सुनता हूं, पर आता कहां है ?"

"महाराज, खबर तो पक्की ही है।"

"अच्छा, पक्की ही है तो आये, परन्तु कैसे आयेगा। लोहकोट में मेरा भीमपाल चौकी पर मुस्तैद है, मुलतान में अजयपाल चाक-चौबन्द बैठा है। सपादलक्ष में मेरा धर्मगजदेव है। यहां मरुस्थली के नाके पर मैं स्वयं बैठा हूं।"

"पर बापा, वह मुलतान और लोहकोट को लांघकर घोघागढ की सीमा में पहुंच गया है।"

"घोघागढ की सीमा में पहुंच गया है ? यह कैसी बात ? और अजय ? भीमपाल ?"

"अजयपाल काका और भीमपाल दोनों ने मुंह में कालिख लगा ली है, उन्होंने बिना ही लड़े-भिड़े म्लेच्छ को मार्ग दे दिया।"

"क्या कहा ? अजयपाल ने मार्ग दे दिया ?"

"हां, महाराज।"—नन्दिदत्त ने दुःखित स्वर में कहा।

घोघाबापा ने लाल-लाल नेत्रों से सज्जन की ओर देखकर कहा—"और भीमपाल की क्या बात कही तूने ?"

"उस कायर ने भी अपने को बेच दिया।"

घोघाबापा बोले नहीं। मौन होकर बैठ रहे। यही उनका स्वभाव था। क्रोध के आवेग में उनके होंठ जुड़ जाते थे।

डरते-डरते सज्जन ने कहा—"बापू।"

घोघाबापा ने लाल-लाल आंखें पुत्र की ओर फेरीं। सज्जन ने नन्दिदत्त की

ओर देखा।

नन्दिदत्त ने शान्त स्वर में कहा—

"महाराज, अमीर ने वहाँ से दूत भेजे हैं।"

"दूत ?"

"हाँ महाराज, दूत अवध्य है, इसी से उन्हें बाहर रोककर सेवा में निवेदन करने हम आये हैं, अब जैसी महाराज की आज्ञा।"

घोघाबापा के नेत्रों में बिजली-सी चौंध गई। उन्होंने पूछा—

"वे कितने है ?"

"दो हैं।"

"दोनो क्या म्लेच्छ ही हैं।'

"एक हिन्दू है।"

"क्या राजपूत है ?"

"नहीं, हज्जाम है, पर कहता है—वह दुभाषिया है। अमीर के दरबार में उसकी प्रतिष्ठा है।"

"और दूसरा ?"

"वह एक तरुण तुर्क सेनापति है।"

कुछ देर घोघाबापा चुपचाप सोचते रहे, फिर धीरे से बोले—"उन्हें बुलाओ।"

दोनों दूतों ने आकर घोघाबापा को प्रणाम किया। हज्जाम ने आगे बढ़कर हीरों से भरा हुआ थाल घोघाबापा के चरणों में रख दिया और पीछे हट, हाथ बाँधकर खड़ा हो गया।

घोघाबापा ने थाल पर, हज्जाम पर और उसके पीछे खड़े तरुण तुर्क पर दृष्टि डाली।

तरुण की अवस्था तीस वर्ष की होगी। वह एक गौरवर्ण तेजस्वी युवक था। उसकी आँखों में घमण्ड भरा था। उसका अंग गठा हुआ था और वह बहुमूल्य वस्त्र पहने था। घोघाबापा को अपनी ओर ताकते देख उसने शुद्ध तुर्की भाषा में कहा—"आपकी शूरवीरता और बुजुर्गी पूजा के योग्य है। गजनी के अमीर अमीनुद्दौला महमूद ने यह तुच्छ भेंट अपनी मित्रता के उपलक्ष्य में भेजी है। कुबूल

फ़र्माकर ममनून कीजिए।"

तिलक ने अनुवाद कह सुनाया।

घोघाबापा के मुंह से बात नहीं निकली। केवल मूँछें फड़ककर रह गईं। दोनों दूत सदेह में पड़ गये। नन्दिदत्त ने अवसर देखकर पूछा—"अमीर क्या चाहता है?"

"आप मरुस्थली के महाराज हैं, अमीर मरुस्थली में से होकर प्रभास जाने की इजाज़त चाहता है।"

युवक ने कुछ विनय और कुछ दबगता से कहा। हज्जाम ने अनुवाद सुना दिया।

बापा ने तरुण की ओर सकेत करके पूछा—"यह कौन है?

"महाराज, यह अमीर के सिपहसालार मसऊद हैं," हज्जाम ने हाथ जोड़कर कहा। "अमीर की ओर से विनय करते हैं।"

"विनय!" घोघाबापा ने धीरे से कहा। और फिर घूरकर उस घमण्डी युवक को देखा, जो तलवार की मूठ पर हाथ रखे तना हुआ खड़ा था।

"विनय" घोघाबापा ने सिर हिलाया और हँस दिये।

तिलक बद्धांजलि खड़ा रहा। मसऊद अपनी पूरी ऊँचाई में तन गया। बापा ने कहा—"तो तेरा अमीर मुझ से पट्टन जाने का मार्ग माँगता है?"

'हाँ महाराज।"

घोघाबापा नगी तलवार हाथ में लेकर एकाएक उठ खड़े हुए। मसऊद ने भी तलवार खींच ली। सामत उछलकर उसकी गर्दन पर जा पड़ा।

नन्दिदत्त ने विनय से कहा—

"महाराज, दूत अवध्य है।"

तो उसे कहो कि यह लात ही मेरा उत्तर है। उन्होंने कसकर एक लात उस हीरों से भरे थाल में लगाई और वहाँ से चल दिये। राजगढ़ के उस कक्ष में वे हीरे बिखर कर वहाँ की धूल को प्रदीप्त करने लगे। मसऊद के मुख पर उसके शरीर का समूचा रक्त भर गया।

नन्दिदत्त ने कहा—"आओ, मैं तुम्हें सुरक्षित गढ से बाहर पहुँचा दूँ। पुत्र सामंत, राह छोड दो।"

आगे-आगे वृद्ध ब्राह्मण नन्दिदत्त, उनके पीछे उतरा-चेहरा लिये हज्जाम तिलक और सबके पीछे क्रोध से थरथर काँपता हुआ सालार मसऊद गढ से बाहर जा रहे थे।

१७ : महोत्सर्ग

कुछ ही देर में घोघाबापा प्रकृतिस्थ हो गये। उनका क्रोध न जाने कहाँ विलीयमान हो गया। अभी तक सज्जन और सामत हाथ में नंगी तलवार लिये विमूढ खड़े, गढ़ से बाहर जाती हुई गजनी के अमीर की साढ़नी को रौद्र नेत्रों से ताक रहे थे।

घोघाबापा ने आकर पुत्र के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"सज्जन, इन जाते हुओं को क्या ताकता है, अब आते हुओं की ताक में रहना होगा। जा, तू इसी क्षण साढ़नी लेकर दौड़ जा, नींद और विश्राम का समय नहीं है। अरे, सूर्य और चन्द्र के वंशधरों ने प्राणों के मोह और चमकीले कंकड़-पत्थरों के लालच में धर्म और कर्तव्य बेच दिया। मेरी मुलतान और लोहकोट की चौकियां टूट गईं। परन्तु अभी मैं हूं, चिन्ता नहीं। मैं भगवान सोमनाथ की चौकी पर यहाँ मरुस्थली के मुख पर मुस्तैद हूँ। गजनी के अमीर की क्या मजाल जो मेरी मरुभूमि में पैर रक्खे। पर तू जा, अभी जा, और झालौर पहुँचकर परमार को होशियार कर दे। जितनी जल्द पहुँच सके—पहुँच जा पुत्र, तुझे केवल जाना ही है, आना नहीं। यह तलवार अभी म्यान में मत करना। वहाँ से सीधा सोमनाथपट्टन पहुँचना और सर्वज्ञ की आज्ञा से वहीं भगवान सोमनाथ के रक्षण में जूझना। अभी तो मैं ही हूँ, पर कदाचित् कोई अघट घटना घट जाय तो तू अपने हाथ से अमीर का सिर काटना, नहीं तो रणांगण में मर मिटना मेरे पुत्र।"

इतना कहकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये राणा ने दो कदम आगे बढ़कर सामत के सिर पर हाथ रखकर कहा—"तुझे भी पुत्र, जाना होगा। यद्यपि तेरे

बिना मेरा प्राण व्याकुल रहगा, पर मोह का राजपूत के जीवन में काम नही है। पहिले कर्तव्य और फिर जीवन। पुत्र, तू जितनी जल्दी हो सके अनहिल्लपट्टन जा और चौलुक्यराज परम परमेश्वर महाराज चामुण्डराय को गजनी के इस दैत्य से सचेत कर दे। जा पुन, और तू वही गुर्जरेश्वर के आदेशानुसार भगवान सोमनाथ की रक्षा-सेवा करना। यहाँ लौट आने की चिन्ता मत करना।"

इस बार वृद्ध भीष्म के अगारे की भाँति जलते हुए नेत्रो में जल छलछला आया, पर उसे उन्हाने हँसकर नेत्रो ही में सुखा डाला।

सज्जन ने हाथ बाँधकर कहा—

'किन्तु बापू, आप ......"

"अरेरेरे"—घोघाबापा अट्टहास करके हँस पडे—"तुझे आज इस क्षण मेरी चिन्ता हुई है। मेरी आज्ञा पाने के बाद ? मैं नब्बे वर्ष का हुआ, सो क्या तूने ही मुझे रक्षित रक्खा ? अरे, क्या तू नही जानता, जो विश्वम्भर, विश्व का पालन करता है, वह सदैव घोघाबापा के अनुकूल रहा है, हा हा हा हा" घोघाबापा फिर हँस पडे "जाओ, जाओ, एक-एक साँढनी ले लो और दो दो सवार, बस।"

इतना कहते कहते घोघाबापा का कठस्वर रूखा हो गया। स्नेह की आर्द्रता जैसे हवा में उड गई। उन्होने ओठ सम्पुटित कर उँगली उठाकर दोनो को वहाँ से तुरन्त चले जाने का सकेत किया।

अब पिता-पुन का साहस एक शब्द भी कहने का न हुआ। दोनो ने भूमि में गिर कर घोघाबापा के चरणो में माथा टेका और चल दिये।

बापा ने अब नन्दिदत्त को बुलाया। उनके आने पर दोनो हाथ फैलाकर कहा—"गुरुदेव, अब आप हैं और मैं हूँ, बस इतने में ही समझ जाइए। गढ गढवी का, अमीर मेरा और अन्त पुर आपका। परन्तु अभी हमें बहुत समय है। अमीर को यहाँ पहुँचते एक पखवाडा तो लग ही जायगा। इस बीच में हम चाक-चौबन्द तैयार रहेगे। परन्तु आपको एक कार्य करना होगा। आपको इसी क्षण सपादलक्ष जाकर धर्मगजदेव को सावधान करना होगा। समय विपरीत है, कही ऐसा न हो, उसकी बुद्धि भी भीमपाल और अजय की भाँति भ्रष्ट हो जाय। इसी से और किसी को न भेजकर, आप ही को भेजता हूँ। देखना, चौहानो के

मुँह में अब और कालिख न लगने पाये। फिर आपको अमीर से पहिले ही लौट आना है। अन्तःपुर आपका है, यह न भूलना। और बात मैं आपके आने पर कहूँगा।"

वृद्ध नन्दिदत्त कुछ देर खड़े कुछ सोचते रहे। इसके बाद एक पुष्प वृद्ध राजा की पगड़ी पर रख, दोनों हाथ उठाकर उन्होंने आशीर्वाद दिया और एक क्षण भी न खोकर, एक शब्द भी न कहकर एकबारगी ही चल दिये।

१८ : केसरियाबाना

वृद्ध घोघाबापा युवा पुरुष की भाँति कार्यक्रम में जुट गए। उन्होंने गढवी राघव के साथ घोड़े पर सवार होकर सारे गढ़ का निरीक्षण किया। मरम्मत के योग्य स्थलों की मरम्मत प्रारम्भ कर दी। अनावश्यक द्वारों को ईंट-पत्थरों से भरवा दिया। खाई की सफाई कराई, पुल उठवा दिया, गढी के द्वार बन्द कर दिये, केवल मोरी खुली रक्खी।

गढी के लुहारों की धोकनिया आग की चिनगारियों से रात दिन मनोरंजक खेल खेलने लगी। ढेर के ढेर तीर, बर्छे और तलवारें तैयार होने लगी। राजपूत अपनी-अपनी ढाल-तलवार माँज कर साफ़ करने लगे।

घोघाबापा के आदेश से गढी के बाहर के सब गाँव उठकर गढी में आ गये। खड़ी फसलें जला डाली गईं। कुएँ, तालाब, बावडी पाट दिये गये। अब पचास-पचास कोस तक अन्न, जल और घास का नामनिशान न रह गया। गढी में रोज जुझाऊ बाजे बजने लगे। नित्य मन्दिर में कीर्तन होने लगा। चौहान राजकुल की वधूएँ व्रत-उपवास और दान पुण्यार्जन करने लगी।

वृद्ध घोघाबापा नित्य सायं प्रात गढी के बुर्ज पर खडे होकर दूर क्षितिज की ओर गजनी के अमीर की सेना को व्यग्र भाव से देखा करते। उनके साथ बहुत से राजपूत, जन-साधारण और बालक भी होते थे।

और एक दिन जिसकी प्रतीक्षा थी, वह सत्य हुआ। दूर क्षितिज में महान् अजगर की भाँति सरकती हुई अमीर गज़नी की विकराल सैन्य आ रही थी। उस सेना का आदि-अन्त न था। घोड़ों के खुरों से उड़ाई हुई गर्द ने आकाश को ढाँप

लिया था। गर्द में बादलों में बिजली की भांति सेना के शस्त्र चमक रहे थे। काले-पील उछालते-दौड़ते घुड़सवार—विविध मेघों के समान उमड़ती हुई इस म्लेच्छ सेना को बढ़ते हुए देख घोघाराणा की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं। उन्होंने चिन्तित भाव से सपादलक्ष की दिशा में दृष्टि फेरी। नन्दिदत्त अभी भी लौटकर आये न थे। राणा ने अन्तःपुर का नाजुक दायित्व नन्दिदत्त को दिया था, अतः उनका अमीर से प्रथम ही पहुँच जाना अत्यन्त आवश्यक था। राणा विकल भाव से नन्दिदत्त की प्रतीक्षा करने लगे।

देखते-ही-देखते अमीर की सेना ने इस तरह गढ़ी घेर ली, जैसे सांप कुण्डली मारकर बैठ जाता है। घोघागढ़ के कंगूरों पर धनुर्धारी योद्धा जमकर बैठ गये। अमीर की अगणित सैन्य निरुपाय थी। उसके हाथी, घोड़े गढ़ी के नीचे परकोट पर चढ़ ही न सकते थे। दुर्जय पर्वत पर घोघागढ़ का वह अजेय दुर्गम दुर्ग सिर ऊँचा किये खड़ा था। पादातिकों को कमन्द के द्वारा दुर्ग पर चढ़ाना भी बेकार था।

हज्जाम तिलक घोड़े पर सवार हो सफेद झण्डा फहराता हुआ अकेला दुर्ग की ओर अग्रसर हुआ। उस समय सूर्य अस्ताचल जाने की तैयारी में था। शत्रु सेना में एक सवार को अग्रसर होते देख गढ़पति ने बाण सीधा कर ललकार कर कहा—

"वहीं खड़ा रह। कह, क्या चाहता है?"

"मैं अमीर का दूत हूँ। द्वार खोल दो, मुझे घोघाराणा से अमीर का सन्देश निवेदन करना है।"

'द्वार नहीं खुल सकता, तू अपना सन्देश निवेदन कर।"

"तो मेरी ओर से करबद्ध राणा से प्रार्थना करो कि नाहक राड़ मत ठानिए। अमीर को राह दे दीजिए। अमीर घोघाराणा पर चढ़ाई नहीं कर रहे हैं।"

"करबद्ध प्रार्थना कौन करता है?"

"मैं, तिलक प्रार्थना करता हूँ।"

"तू हज्जाम है। तेरा काम टहल करना है, राजाओं से बात करना नहीं, तू भाग यहाँ से।"

"किन्तु मैं अमीर का दूत हूँ, यह अमीर की प्रार्थना है।"

"तो उसका उत्तर मेरा यह बाण है।"

गढवी ने तान कर बाण फेंका, वह अमीर के दूत के झंडे को चीरता हुआ पार चला गया। गढवी ने कहा—"जा, भाग जा। दूत अवध्य है, इसी से छोड़ता हूं। मरुस्थली के महाराज उसे मार्ग नही देंगे।"

दूत चुपचाप पीछे लौट गया।

रात हो गई। अमीर की सेना में सैकडो मशालें जला दी गईं। दूर-दूर तक अमीर की छावनी पडी थी। अमीर बहुत चिंतित था। गढ पर चढकर उसे विजय करना असाध्य था। घेरा डालना और भी व्यर्थ था। वर्षों घेरा डाले रहने पर भी घोघागढ विजय नही हो सकता था। उधर अमीर वहाँ चौबीस घंटे भी नही ठहरना चाहता था। उसके घोडे और सिपाही सब भूखे-प्यासे थे। यहाँ न एक तिनका घास थी, न एक बूंद जल। अभी उसे मरुस्थली की दुर्गम राह पार करनी थी। वह साथ का पानी और रसद यहीं पर समाप्त कर देना नही चाहता था। अजेय घोघागढ ऊँचा सिर किये उसका उपहास कर रहा था। और अमीर की प्रचण्ड सेना निरुपाय इसकी ओर ताक रही थी।

अभी सूर्योदय में देर थी। गढ के रक्षको ने देखा—अमीर की वह अथाह सेना धीरे-धीरे दुर्ग का घेरा छोड इस प्रकार मरुस्थली में धँस रही है, जैसे सांप बेंबी में धँसता है।

गढवी ने दौडकर राणा से कहा—"बापा, अमीर मरुस्थली में घुस रहा है।" घोघाबापा खडे हो गये। उन्होने तलवार उठाली। क्रोध से थर-थर कांपते हुए कहा—"मैं सत्तर वर्ष से मरुस्थली का स्वामी रहा हूँ, आजतक इन सत्तर वर्षों में मेरी आज्ञा के बिना एक पक्षी भी मरुस्थली में नही घुस सका है। अब यह गज़नी का अमीर घोघाबापा के सिर पर लात रखकर, मेरी चौकी को लांघकर मरुस्थली में पैर धरेगा? यह मेरे जीते जी हो नही सकता। जा बेटा, साका रचने की तैयारी कर, तब तक मैं आता हूँ।"

गढवी का मुँह भय से सफ़ेद पड गया। घोघाबापा के मनसूबे को उसने समझ लिया। उसने हाथ बाँध कर राजा की ओर देख कुछ कहने का उपक्रम किया, पर उसकी जीभ तालू से सट गई। राणा ने उसका अभिप्राय समझ जलती हुई

आँखो से उसकी ओर देखा। गढवी ने डरते डरते कहा—"बापू, शत्रु की सेना असख्य है।"

"सो इससे क्या हुआ रे ? घोघाबापा अब शत्रु को गिनकर अपना कर्तव्य पालन करेगा ?"

गढवी को और कुछ कहने का साहस नही हुआ। वह सिर झुका कर तेजी से चल दिया। क्षण भर बाद ही वह छोटी-सी गढी विविध रणबाजो के जयनाद की ध्वनि से गूंज उठी। गढी में भाग दौड मच गई। बेटे, पोते और सम्बन्धी एव सब क्षत्रिय शस्त्र चमकाते हुए महादेव के मन्दिर के आँगन में आ जुटे। घोडे और ऊँटो की हिनहिनाहट और बलबलाहट से कान के पर्दे फटने लगे।

घोघाबापा ने नित्य कर्म से निवृत्त हो जरीन बागा पहना, सिर पर केसरी पाग बाँधी, मस्तक पर कुकुम का तिलक लगाया। कमर में दुहरी तलवार बाँधी। परन्तु उनकी आँखें नन्दिदत्त को ढूँढ रही थीं। नन्दिदत्त अभी तक भी सपादलक्ष से लौटे न थे। घोघाबापा का मस्तक चिन्ता से सिकुड गया। वे होठो ही में बड़-बडाते हुए बोले—"गढ गढवी का, अमीर मेरा और अत पुर कुलगुरु नन्दिदत्त का। परन्तु नन्दिदत्त कहाँ है ? अब अन्त पुर किसे सौंपा जाय ?" घोघाबापा ने घबराई दृष्टि से इधर-उधर देखा।

सम्मुख बदहवास नन्दिदत्त दौडे आ रहे थे। उनके वस्त्र और दाढी धूल से भरी थी। वे चढी सवारी सीधे राजा के पास आकर बोले—'महाराज, यह सब क्या ? महाराज, महाराज।"

उन्होंने दोनो हाथो से मुँह ढाँप लिया। वे धरती पर बैठ गये। उनके नेत्रो में से आँसू झर चले।

राणा उन्हें देखते ही हर्ष से चिल्ला उठे। उन्होने कहा—"नन्दिदत्त जी, खूब आये। अब सुनो, काम बहुत और समय कम है। हाँ, पहिले धर्मगजदेव की बात कहो।"

"अन्नदाता ! महाराज धर्मगजदेव पुष्कर के मैदान में शत्रु की राह रोके बैठे है। उन्होने कहा है—"बापा चिन्ता न करें। यदि अमीर बापा की चौकी लाँघ-

कर यहां तक आया तो जीवित नहीं लौटेगा।"

घोघाबापा की बाछें खिल गईं। उन्होंने कहा—"अब सुनो, तुम हमारे कुलगुरु और राज्य-मन्त्री हो। अत मेरा अग्नि-संस्कार तुम स्वय अपने हाथो से करना और सज्जन और सामत में से कोई जीवित लौट आये तो उसका राजतिलक उसी भाँति करना, जिस भाँति आज से सत्तर वर्ष पूर्व तुम्हारे पिता ने मेरा किया था।"

इतना कहकर वृद्ध व्याघ्र ने हाथ से, आँख में कोरो में आया एक आँसू पोछ डाला।

नन्दिदत्त की धवल डाढी आँसुओ से भीग गई थी। उन्होंने कहा—"अन्नदाता! *यह कैसी आज्ञा? भला यजमान का रुधिर गिरे और कुल-पुरोहित भूभार होकर पृथ्वी पर जीवित रहे?"*

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है, नन्दिदत्त जी। परन्तु आप सब शास्त्रों के ज्ञाता महाज्ञानी पुरुष हैं। आपने देश-देशान्तर भ्रमण किया है। आप भली भाँति जानते हैं कि मेरा जीवन-योग तो कभी का पूरा हो गया था। भगवान सोमनाथ को यह अभीष्ट था कि इस दास की मृत्यु कृमिकीट की भाँति न हो, वे इस अधम को धूमधाम से कैलाशवास कराना चाहते हैं। मैंने जो नब्बे वर्ष भगवान की एकनिष्ठ सेवा की, आज वह सब पुण्य मेरा फलेगा। अब आप अपने कर्त्तव्य को निबाहना। अन्त पुर आपका है, यह न भूलना। अवसर उपस्थित होने पर विधि-विधान से चौहान-कुल-वधुओं का अग्निरथ-अभियान सम्पन्न कराना।"

इस बार सिंह की भाँति ज्वलत नेत्रों से उन्होंने कुकुम-अक्षत के थाल हाथो में सजाये चौहान-कुलागनाओं को झरोखे में खड़े देखा। फिर उच्च स्वर से कहा—"चलो पुत्रियो, हम आज कैलाशगमन करते हैं। तुम सब हम से प्रथम वहां पहुँच कर इसी प्रकार अक्षत-कुकुम से हमारा सत्कार करना। इसमें अब देर नहीं है। कुछ ही घडी की बात है।" कुमारियां मगल-गान कर उठी।

नन्दिदत्त ने आगे बढकर कुकुम का तिलक राणा के मस्तक पर लगाया और उच्चस्वर से कहा—"हे नरशार्दूल, यावच्चन्द्र दिवाकर तेरा यश अमर रहे।"

बाहर सेना में जयनाद हुआ। राणा ने अश्व का पूजन कर अश्वारोहण किया। रगमहल से ताजे पुष्प बरसाये गये।

सब कोई मन्दिर के प्रागण में एकत्र हुए। राणा ने देवार्चन किया। नन्दिदत्त ने देव निर्माल्य राजा को दिया। घोघाबापा ने कहा—

'सेवक, दुकानदार और बीमार सबसे पहिले गढ से बाहर चले जायें। और भी जो कोई प्राण बचाना चाहे, स्त्री पुत्रों सहित, तथा जो सामग्री ले जाना चाहे लेकर चला जाय।'

बडी देर तक राणा ने प्रतीक्षा की, परन्तु एक भी व्यक्ति जाने को राजी नहीं हुआ। राणा ने एक दृष्टि चारो ओर फेरी, सर्वत्र केसरी पाग हिलोरें ले रही थी।

राणा ने राघवमल्ल गढवी को पुकारकर कहा—'राघव! द्वार खोल दे वीर, गढ तेरा है।'

राघवमल्ल ने तलवार दांत में दबाकर कहा—'नहीं अन्नदाता, मैं चरणों में हूँ, गढ गुरुदेव ही को समर्पित कीजिए।'

"तब ऐसा ही हो। नन्दिदत्त जी, गढ, अन्तःपुर और हमारी कुलमर्यादा आपके हाथ रही।"

नन्दिदत्त बिना एक शब्द कहे भीड में घुस गये और अपने युवा पुत्र को साथ ले, राजा के सामने आकर कहा—"महाराज, आपकी सब आज्ञाओं का मैंने पालन किया। मैं आपका कुलगुरु हूँ, मुझे अब इस बेला गुरुदक्षिणा दीजिए।"

"माग लीजिए, गुरुदेव! आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं है।"

"अन्नदाता! यह मेरा पुत्र अपनी शरण में ले जाइए। मुझे गुरुतर भार सौंप कर साथ चलने से आपने रोक दिया। मैं राजाज्ञा पालन करूँगा। परन्तु मेरा पुत्र आपके साथ ही रक्तदान देगा। यद्यपि वह शस्त्रविद्या का पारगत नहीं है, पर युवा है, सशक्त है। शत्रु एकाएक इसे मार न सकेगा।"

"नहीं, नहीं, नन्दिदत्त जी, आपका वंश·· ······"

"उसकी चिन्ता नहीं महाराज, मेरे पास मेरा पौत्र है, उसे मैं रख लूँगा भगवान सोमनाथ साक्षी है।"

राजा घोड़े से उतर पड़े। उन्होंने तरुण ब्राह्मणपुत्र को छाती से लगाया। अपनी तलवार उसकी कमर में बाँधी, फिर अपने घोडे पर हाथ का सहारा देकर उसे चढाते हुए कहा—"चलो पुत्र, जो सौभाग्य मेरे सज्जन को नहीं प्राप्त हुआ

वह तुम्हें हुआ।"

जय जयकार से दिशाएँ गूंज उठीं। हल्का चीत्कार करके दुर्ग के फाटक खुल गये और विषधर सर्प की भाँति फुफकार मारती वह मर-मिटने वाले वीरों की छोटी-सी मण्डली घोघागढ के सिंहद्वार से प्रभात की प्रथम किरण में स्नातपूत हो रणांगण में अग्रसर हुई।

अमीर ने देखा तो विमूढ हो गया। इस प्रकार इच्छा करके मृत्यु को वरण करने का अर्थ वह समझ ही न सका। परन्तु एक चतुर रणपण्डित की भाँति वह पैंतरा काट घूम पडा। वह नहीं चाहता था कि राजपूत पीछे से आक्रमण करके उसकी सेना को विशृंखल कर दें। उसने झटपट रसद और जल से भरे हुए ऊँट, अशर्फियों से लदे हुए हाथी और सेना का एक भाग सालार मसऊद की अध्यक्षता में द्रुतगति से मरुस्थली में प्रविष्ट कर दिया। सेना के दूसरे भाग को जिसमें हाथी, ऊँट और तीरदाज थे, अपने प्रिय गुलाम समरू की कमान में धीरे-धीरे व्यवस्था में आगे बढाया। इसके बाद वह अपने चुने हुए बारह हजार बलूची सवारों को लेकर राजपूतों पर बाज की भाँति टूट पडा।

गिने चुने राजपूत अपना शौर्य दिखा दिखाकर धराशायी होते गये। घोघाबापा के सिर पर सैकडों तलवारें छा गईं। यह तेजस्वी वृद्ध जिस प्रकार वीरता से तलवार चला रहा था, उसे देख सुलतान महमूद आश्चर्यचकित रह गया। उसने बहुत चाहा कि वृद्ध राणा को जीवित पकड लिया जाय, पर यह किसी भाँति सम्भव न था। राणा की केसरिया पाग तलवारों की चकाचौंध में चमकती और डूबती रही।

यह युद्ध न था, साका था। अमीर महमूद भी इस शत्रु का लोहा मान गया। इसके सम्मान की रक्षा के लिए उसने अपनी तलवार भी म्यान से बाहर नहीं की। देखते ही देखते आठ सौ राजपूत और तीन सौ अन्य व्यक्ति कटकर खेत रहे, जिनमें घोघाबापा के चौरासी पुत्र, पौत्र, परिजन भी थे। घोघाबापा भी अपने हाथों से काटे हुए शत्रुओं की लाशों पर गिरकर कैलाशवासी हुए।

१६ : नन्दिदत्त का पुरुषार्थ

अब गढ में अकेले नन्दिदत्त ही एक पुरुष थे। उनके ऊपर कठिन कर्तव्य का भारी भार था। बडी कठिनाई से उन्होने एक दासी को राजी करके अपने तीन वर्ष के पौत्र को गढ से बाहर भेज दिया। फिर पुल को तोड गढ के द्वार भीतर से भलीभाँति बन्द कर वे अपनी आवश्यक व्यवस्था में जुट गए। गढ में जितना ईंधन और ज्वलनशील पदार्थ उपलब्ध हो सका, सबको ला-लाकर उन्होंने मन्दिर के प्रागण में एक विशाल चिता की रचना प्रारम्भ कर दी। उनका थका हुआ बूढा शरीर परिश्रम से टूक-टूक हो गया, परन्तु उन्हें जो काम करना था, वह तो करना ही था।

अन्त पुर में सभी स्त्रियाँ एकत्रित थी। आज उनमें छोटी-बडी का भेद न था। प्रत्येक ने नख शिख से शृंगार किया था। वे सब पूजा के थाल हाथो में सजाये, नारियल, कुकुम और पुष्पो से गोद भर, कुल-पुरोहित नन्दिदत्त के आदेश की प्रतीक्षा में बैठी थी।

सब आवश्यक सामग्री जुटाकर, घी, तेल और कपूर के डलो को यथास्थान चिता में उपस्थित करके नन्दिदत्त बुर्ज पर चढकर युद्ध की गति देखने लगे। उनके देखते-ही-देखते चौहान वीर और वीरों के शिरोभूषण घोघाबापा धराशायी हुए। उन्होंने भूमि पर अपना सिर पटक मारा। बहुत देर तक वे मूर्च्छित पडे रहे, फिर होश में आकर वे पागल की भाँति लडखडाते हुए अन्त पुर की ओर चले। उनके कानों में घोघाराणा के ये शब्द गूँज रहे थे—"अन्त पुर तुम्हारा।"

अन्त पुर के द्वार पर आकर उन्होंने पुकार लगाई—"चलो बेटियो, अब

हमारी बारी है।"

मगलगान करती हुई, नारियल उछालती और मार्ग में फूल बखेरती पूजा के थाल हाथो में लिये सात सौ स्त्रियां पक्तिबद्ध आगे बढकर मानिकचौक में चिता के चारो ओर आ खडी हुई। नन्दिदत्त की आंखो से चौधारा आंसू बह रहे थे परन्तु उन्होंने सबके भाल को कुकुम चन्दन से अर्चित किया, सब देवियों ने अक्षत-पुष्प से चिता का पूजन किया, सूर्य को अर्घ्य दिया, कुलदेवता को प्रणाम किया और अपने-अपने पतियों के स्मृति चिह्न गोद में लेकर चिता पर आ बैठीं। चिता-आरोहण से प्रथम नन्दिदत्त की पुत्रवधू ने मूकभाव से ससुर के चरण छुए। यह देख नन्दिदत्त कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर गये।

कुछ देर में वे उठे। अभी कठिन कार्य तो शेष ही था। उनका अग थर-थर कांप रहा था और वाणी जड हो रही थी। आंखें आंसुओ से अन्धी हो रही थी। फिर भी उन्होने टूटे-फूटे स्वर में मन्त्रोच्चारण किया और कांपते हाथो से चिता में आग दे दी।

चिता अग्निवाहक पदार्थों के सयोग से धांय-धांय जलने लगी। बहुत-सी अबोध बालाएँ ज्वाला की वेदना न सहकर चीत्कार कर उठी। एक भयानक क्रन्दन, असह्य दर्द और न देखने, न सहने योग्य वेदना से ओतप्रोत हो नन्दिदत्त स्वय चिता में कूदने को उद्यत हो गये, परन्तु अभी उनका कर्तव्य पूर्ण नहीं हुआ था। अभी घोघाबापा का शरीर रणक्षेत्र में पडा था। उसे वहाँ से लाकर अग्नि-सस्कार करना शेष था।

वे वहीं, चिता के निकट भूमि पर गिर गये। उन्हें गहरी मूर्च्छा ने घेर लिया। वह मूर्च्छा उनके लिए आशीर्वाद स्वरूप थी। उसने उनका वेदनाओ से इतने काल के लिए पिण्ड छूट गया।

बहुत देर तक वे मूर्च्छित पडे रहे। जब उनकी मूर्च्छा भग हुई तो उन्होने देखा, चिता जल चुकी है। लाल-लाल अगारो में जली हुई सतियो के अवशेष बडे डरावने प्रतीत हो रहे थे। उस समय गढ में वे ही अकेले जीवित पुरुष थे। कुत्ते-बिल्ली भी इस आपत्काल में घोघागढ को छोड गये थे। वे आंखें फाड-फाडकर चिता की चमकती चिनगारियों को देखने लगे। जिन बालिकाओ का उन्होने विवाह

कराया था, गोद में खिलाया था, नववधू के रूप में स्वागत किया था, उन सबकी जली हुई अस्थियों को यहाँ एकत्र देख उनका मस्तिष्क विकृत हो गया।

वे लड़खड़ाते पैरों से एक बार बुर्ज पर गये। उन्होंने देखा—यवन-सैन्य अपनी व्यवस्था में संलग्न है और उसकी एक टुकड़ी दुर्ग पर चढ़ी चली आ रही है। सबसे आगे उन्होंने उस हज्जाम को देखकर पहचान लिया। अनेक बातों पर विचार करके दौड़कर दुर्ग के द्वार खोल दिये और पुल भी गिरा दिया। फिर वह मन्दिर के गर्भगृह में जाकर अर्धमूर्च्छित अवस्था में पड़े रहे। अंग को हिलाने-डुलाने की उनमें सामर्थ्य नहीं रही थी।

यवन-सैनिक गढ़ में घुस आये। उन्हें कहीं भी किसी बाधा का सामना न करना पड़ा। नन्दिदत्त अर्धमूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए कभी-कभी शत्रुओं की खटपट सुन लेते थे परन्तु उनसे उठा न गया और वे गहरी मूर्च्छा में पड़ गए।

जब उनकी आँखें खुलीं—नव प्रभात हो चुका था। प्रलय के आठ पहर बीत चुके थे। किसी जीवित प्राणी का घोघागढ़ में चिह्न भी न था। वे उठकर बाहर आये, चिता बुझ चुकी थी, परन्तु राख अभी गर्म थी। मन्दिर का ध्वज टूटा पड़ा था और महादेव की पिण्डी भग्न थी। राजमहल को लूट लिया गया था। पर ऐसा प्रतीत होता था कि शत्रु उस शून्य निर्जन दुर्ग में धधकती महाचिता में सैकड़ों जीवित मूर्तियों को जलता देख भयभीत होकर भाग गये थे।

नन्दिदत्त ने बुर्ज पर खड़े होकर देखा—शत्रु का वहाँ कोई चिह्न न था। नन्दिदत्त धीरे-धीरे दुर्ग से नीचे उतर रणभूमि में आये। गिद्ध और गीदड़ लाशों को लथेड़ रहे थे। लाशें सड़ने लगी थीं। नन्दिदत्त ने बड़े यत्न से घोघाराणा का शव शवों के ढेर से ढूंढ़ निकाला। उसे पीठ पर लादकर एक शुद्ध स्थान पर रक्खा। स्नान कराकर शुद्ध किया और इधर-उधर से सूखा काष्ठ एकत्र कर अग्नि-संस्कार कर दिया। इसके बाद उन्होंने अन्य क्षत्रियों की अन्त्येष्टि करना भी कर्तव्य समझा। सब का चिता-दाह सम्भव न था। उन्होंने सब पर मरुस्थली की रेत डाल-कर शवों को ढाप दिया, तथा अंजलि में जल लेकर सबका तर्पण किया।

परन्तु अभी भी इस कर्मनिष्ठ ब्राह्मण का कर्तव्य पूरा नहीं हुआ था। ज्वर की ज्वाला और भूख-प्यास से उनका अंग भंग हो रहा था। गत सोलह प्रहर से

वह ब्राह्मण मरने वालों से कहीं अधिक यातना सह रहा था। फिर भी उसने दुर्ग में आकर गंगाजल से चिता को ठण्डा किया। फिर अस्थियों और राख का संचय कर मानिकचौक ही में भूमि खोदकर उसे दाब दिया। इसके बाद उन सबका श्राद्ध-तर्पण कर सबकी आत्मा के लिए शान्ति-पाठ पढ़ा।

अब उनका ध्यान अन्तःपुर की ओर गया। एक बार घोघाबापा के वे शब्द "अन्तःपुर तुम्हारा" उनके कानों में गूंज उठे।

उन्होंने दुर्ग का द्वार फिर बन्द किया।

२० : गुर्जराधिपति

महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर गुर्जराधिपति श्री चामुण्डराय महाराज की आयु साठ को पार कर गई थी। महाराज को नई-नई इमारतें बनवाने का भारी शौक था। इस समय आप श्वेत मर्मर का एक विशाल जलाशय बनवा रहे थे। उसके साथ एक वृहत् वाटिका भी तैयार हो रही थी। वाटिका के लिए देश-देश के फल-फूल वाले वृक्ष मँगाये और रोपे जा रहे थे। प्रवीण मालियों ने मनोरम रौसें निकाल और ठौर-ठौर पर लताकुंज बनाकर वाटिका का दृश्य अति मनोहर बना लिया था। जलाशय का निर्माण भी अद्भुत था। उसमें कटाई और जाली का काम तथा पत्थर खोदकर उनमें भिन्न-भिन्न रंग के मणिरत्न जमाने का काम सैंकड़ों विशेषज्ञ और प्रसिद्ध कारीगर कर रहे थे—जो देश देश से भारी वेतन और राह-खर्च देकर बुलाये गये थे। देश-विदेश में जहाँ जो वस्तु इस जलाशय एवं वाटिका के उपयोग योग्य देखी सुनी जाती थी, वहीं के राजा के नाम गुर्जराधिपति का अनुरोध पत्र पहुँचता था। और प्रत्येक मूल्य पर वह वस्तु प्राप्त करने का यत्न किया जाता था। हजारों गुर्जर और यवन एवं विदेशी कारीगर अपने अपने काम में लगे हुए थे। महाराज गुर्जरेश्वर सब काम अपनी आँखों से देखते और कुशल कारीगरों को इनाम-इकराम बाँटते राजप्रासाद छोड़ इसी वाटिका में डेरा-तम्बू डाले रनवास सहित विराजमान थे। महाराज का मनोरंजन करने और उनकी उदारता से लाभ उठाने को दूर-दूर से नट, बाजीगर, कंचनियाँ, मल्ल, गायक आदि कलाकारों के जत्थों-के-जत्थे प्रतिदिन आते रहते थे। वे अपनी कला से महाराज का मनोरंजन करते और भारी इनाम-सिरोपाव पाकर महाराज की यश-कीर्ति को

दिग्दिगन्त में व्याप्त करने जा रहे थे। उनके स्थान पर और लोग आते जा रहे थे महाराज उन्हें मुक्त हाथ से इनाम-सिरोपाव देते और प्रसन्न होते थे।

मध्याह्न होने में अभी देर थी। शरद्‌कालीन सुनहरी धूप चारों ओर फैल थी। महाराजाधिराज गुर्जरेश्वर अमल-पानी से निपटकर अपने विशाल सुनहर छौमे में मसनद पर पौढ़ गये। एक खवास ने मोरछल लिया, दूसरे ने पैरो के पास बैठकर मखमली पायदान निकट सरका दिया। जी हुजूरिये आ-आकर जुहा करके बैठ गये। महाराज अफ़ीम की पीनक में झूमने लग।

एक हुजूरिये ने कहा—

"कुमार भीमदेव आज भी नहीं आये अन्नदाता।"

दूसरे ने कहा—"सुना है कुमार और युवराज दोनो ही सिद्धेश्वर में ज बैठे है।"

"परन्तु यह सब तो दरबार से दूर-दूर रहने के ढंग हैं। युवराज और कुमा दोनो ही अन्नदाता की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं।" दूसरे मर्जीदान ने धी से कहा।

गुर्जरेश्वर पीनक में थे। उन्होंने केवल अंतिम वाक्य सुना और पीनक से चौंक कर आधी आँख उघाड़ कर कहा—

"कौन हमारी आज्ञा का उल्लंघन करता है, उसे अभी सूली पर चढ़ा दो।"

अब जी हुजूरिये ने जैसे डरते-डरते हाथ जोड़कर कहा—

"अन्नदाता, यह बात नहीं है, यों ही हम लोग युवराज की चर्चा कर रहे थे।

गुर्जरेश्वर ने कहा—"हरामखोर, हमें धोखा देते हो। अभी तुम नहीं कह र थे कि हमारी आज्ञा······"

गुर्जरेश्वर अफ़ीम की झोंक में पूरी बात कहना भूल गये। और पूरी आँ फैलाकर खवास की ओर क्रोधभरी दृष्टि से ताकने लगे।

खवास ने हाथ जोड़कर कहा—

"महाराज ने युवराज को याद फर्माया था।"

"तो फिर?"

"युवराज राजकुमार को लेकर सिद्धेश्वर चले गये हैं।"

'हमारी आज्ञा का उल्लंघन करके ?"

'अन्नदाता, न कहने योग्य बात कैसे कहूँ।"

"कह रे हरामखोर।" महाराज ने क्रोध से उबल कर कहा।

"अन्नदाता, युवराज श्रीमहाराज को गद्दी से उतारकर स्वयं राजा होने की खटपट कर रहे हैं। वहाँ सैन्य-संग्रह कर रहे हैं।" खवास ने धीमे स्वर से कहा।

यह सुनते ही राजा क्रोध से जल उठे। उन्होंने तुरन्त हुक्म दिया—"तो उन दोनों राजद्रोहियों को बाँधकर यहाँ ले आ।"

खवास चुपचाप खड़ा रहा। खवास कैसे युवराज को बाँधकर ला सकता है—यही वह सोचने लगा। राजा ने कहा—"जा रे हरामखोर, खड़ा क्यों है ?"

"क्या अन्नदाता, मैं सेनापति को बुलाऊँ ?"

"अभी बुला।"

खवास ने जी हुजूरियों से आँखें मिलाईं और वहाँ से चल दिया।

महाराज फिर पीनक में झूमने लगे। इसी समय द्वार पर बहुत से लोगों का शोरगुल सुनाई दिया। शोरगुल सुनकर महाराज की पीनक फिर टूट गई। बहुत से ब्राह्मणों ने भीतर घुसकर पुकार की—"दुहाई महाराज की, दुहाई गुर्जरेश्वर की, हम लूटे गये हैं, हमारा सर्वस्व हरण कर लिया गया है।" राजा ने बिना सोचे-समझे चीखकर कहा—"पकड़ो, इन राजद्रोहियों को और सूली पर चढ़ा दो।"

एक ब्राह्मण ने आगे बढ़कर और हाथ में जनेऊ लेकर कहा—"महाराजाधिराज परम महेश्वर गुर्जरेश्वर की जय हो, हम राजविद्रोही नहीं, महाराज की राजभक्त प्रजा हैं। हम पुकार करने आये हैं, हम सोमेश्वर की यात्रा को जा रहे थे कि राह में डाकुओं ने हमें लूट लिया।"

राजा ने आधी आँख उघाड़कर तथा एक खवास की ओर देखकर कहा—

'किसने इन्हें आने दिया बोल।"

"अन्नदाता, ये सब जबर्दस्ती भीतर घुस आये, राजाज्ञा नहीं मानी।"

ब्राह्मणों ने कहा—'दुहाई, हम लूटे गये हैं।"

"इन सबको बांधकर बन्दीगृह में डाल दो।"

"महाराज हमारी फ़र्याद है।"

"तुम सब राजद्रोही हो।"

इतने में सेनापति बालुकाराय ने आकर महाराज को प्रणाम किया और कहा—"महाराज की क्या आज्ञा है?"

महाराज ने किस लिए सेनापति को बुलाया था, यह वे इस समय भूल गये। उन्होंने ब्राह्मणों की ओर हाथ उठाकर कहा—

"इन सब राजविद्रोहियों को बांधकर बन्दी कर लो।"

"अन्नदाता, ये भूदेव हैं—वेदपाठी ब्राह्मण।"

"तो यहाँ इनका क्या काम?"

"अन्नदाता, ये सोमेश्वर की यात्रा को जा रहे थे। राह में लुटेरों ने इन्हें लूट लिया।"

"लुटेरों को पकड़ा तुमने?"

"अन्नदाता, महमदसेनी कच्छ का दुर्दान्त डाकू है, उसके हज़ारों साथी हैं।"

"तो उन सबको सूली पर चढ़ा दो।"

"अन्नदाता........"

महाराज की पीनक में हर बार विघ्न पड़ रहा था। उन्होंने क्रोध करके खवास से कहा—"*निकालो, निकालो—इन सब हरामखोरों को।*"

"अन्नदाता, ये वेदपाठी ब्राह्मण आपको आशीर्वाद देते हैं।"

"अच्छा हुआ, इन्हें एक-एक सोने की मुहर दे दो, जाओ तंग न करो।"

इतना कह वे और आराम से लेटने को मसनद पर लुढ़क गये और आँखें बन्द कर लीं। अब और बातें करना अशक्य समझकर सेनापति बालुकाराय ब्राह्मणों को ले बाहर चले गये।

२१ : षड्यन्त्र

एक पहर रात जा चुकी थी। अनहिल्लपट्टन के सब नगर-द्वार बन्द हो चुके थे। दिन भर काम-काज में व्यस्त नगर-पौरजन, राजपुरुष सब निद्रादेवी की आराधना में लगे थे। आकाश स्वच्छ था, उसमें उज्ज्वल तारे बहुत भले प्रतीत हो रहे थे। द्वितीया का क्षीण चन्द्र नूतन वधू की दुर्लभ कान्ति प्रतिभासित कर रहा था। इसी समय सरस्वती नदी के निर्जन तट पर एक पुरुष तत्परता से टहल रहा था। नदी-तट पर अनगिनत छोटे-बड़े, नये-पुराने मन्दिरों की पंक्ति बनी थी। वह पुरुष उन मन्दिरों की परछाई में अपने को छिपाता हुआ वहाँ टहल रहा था। इस पुरुष का कद ठिगना, शरीर कृश और चेहरा साधारण था। वस्त्र भी उसने साधारण ही पहने थे। परन्तु एक उम्दा तलवार अवश्य उसकी कमर में लटक रही थी।

यह पुरुष अवश्य किसी व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा में था। थोड़ी ही आहट होने पर यह चौकन्ना होकर चारों ओर देखने लगता था। थोड़ी देर बाद घोड़ों की टाप के शब्द सुनाई दिये। और कुछ देर में दो मनुष्य मूर्ति घोड़ों पर सवार आती हुई उसने देखी। उस पुरुष के सामने ही कुछ फासले पर एक गहन वट-वृक्ष था, उस वृक्ष के नीचे आ उन्होंने अश्व रोके। दोनों घोड़ों से उतर पड़े। घोड़े वृक्ष से उन्होंने लम्बी बागडोर से अटका दिये। और दोनों पुरुष उन मन्दिरों की ओट आगे बढ़े।

पूर्वोक्त पुरुष ने एक दीवार की आड़ में अपने को छिपा लिया। दोनों छाया-मूर्तियाँ उसके निकट से होकर चली गईं। दोनों ही काले आवरण से शरीर को

छिपाये थे। इस पुरुष ने निःशब्द उनका अनुगमन किया।

दोनों ही छाया-मूर्तियाँ मन्दिरों और खण्डहरों को पार करती हुई नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़ती चली गई। वह पुरुष भी अत्यन्त सावधानी से उनके पीछे-पीछे चलता गया। मन्दिरों की पंक्ति समाप्त हो गई। नदी के ऊबड़-खाबड़ कगार पर चलती हुई दोनों मूर्तियाँ बढ़ती ही गई। अन्त में वे एक जीर्ण शिवालय के सामने जाकर रुकीं। शिवालय उजाड़ था। वहाँ दिन में भी कोई पुरुष नहीं जाता था। इस समय रात्रि की नीरवता में वह स्थान बहुत भयानक प्रतीत हो रहा था। दोनों में से जो मूर्ति आगे थी, उसने तलवार म्यान से बाहर करके इधर-उधर चारों ओर देखा, वह अपने साथी को संकेत कर मुख्य द्वार छोड़ मन्दिर के पिछवाड़े की ओर चला। इस पुरुष ने भी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली और अत्यन्त सावधानी से पदशब्द बचाता हुआ पीछे-पीछे चलने लगा। मन्दिर बहुत बड़ा था, तथा उसके पिछले भाग में बहुत से टूटे-फूटे घर थे। उन सब को पार करते हुए तीनों व्यक्ति अन्ततः एक अपेक्षाकृत अच्छे घर के द्वार पर पहुँच गए। आगे वाले व्यक्ति ने कुछ संकेत किया। थोड़ी देर में एक पुरुष दीपक लेकर भीतर से आया। उसके दूसरे हाथ में नंगी तलवार थी। आगन्तुकों का संकेत समझ, सन्तुष्ट हो, उसने दोनों को भीतर कर लिया। पीछे वाले पुरुष ने देखा—वह नान्दोल का प्रसिद्ध जैन यति—जैनदत्तसूरि है। जैन यति को वहाँ देख उस पुरुष को आश्चर्य हुआ। परन्तु भीतर जाकर जब दोनों आगन्तुकों ने अपना आवरण उतारा तो उन्हें पहचान कर वह पुरुष आश्चर्य से विमूढ़ हो गया। आगे तलवार हाथ में लिये जो पुरुष था—वह बालचन्द्र खवास था और दूसरा उसका साथी—स्वयं महारानी दुर्लभदेवी थी।

द्वार बन्द हो जाने से वह और कुछ न देख सका—परन्तु उसे यह जान लेने में तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि यह कोई भारी षड्यन्त्र है, जिसमें नान्दोल का राज्य भी सम्मिलित है।

उसने उस खंडहर के चारों ओर चक्कर लगाया और फिर वह एक स्थान पर भग्न दीवार पर चढ़ गया। कई छतों को पार करके वह उस छत के किनारे पर आ पहुँचा, जहाँ ये लोग बैठे थे। कुल छः व्यक्ति थे। दीपक जल रहा था।

तीन का परिचय तो मिल गया। चौथा था—गुजरात का महामन्त्री वीवणशाह, पाँचवाँ कुमार दुर्लभदेव का सम्बन्धी एक सरदार था। और छठी थी—परम माहेश्वर गुर्जराधिपति श्री चामुण्डराय देव की सुन्दरी मुँहलगी ताम्बूलवाहिनी चम्पकबाला।

गूढ पुरुष दीवार से चिपककर छत पर लेट गया और एकाग्र होकर उनकी बातें सुनने लगा।

एक धीमा स्वर सुनाई दिया। जैनयति जिनदत्त बोल रहा था। वह कह रहा था—

"महरानी बा, आप जानती हैं—मैं आपही के राजकुल का पुरुष हूँ। मैंने जैनधर्म स्वीकार किया है। नान्दोल के सात सौ कोट्याधिप सेठिया जैनधर्म में आस्था रखते हैं जिनके परिजन तीन लाख हैं। मेरे जैनधर्म स्वीकार करने तथा राजकुल में जैनधर्म की प्रतिष्ठा होने से नान्दोल के महाराज अनहिल्लराज की सत्ता बहुत बढ़ गई है। नान्दोल के महाराज आपके भतीजे हैं। उनका तेज प्रताप बहुत है। वे एक प्रतापी राजसत्ता की स्थापना कर रहे हैं। मालवा उनसे शंकित रहता है। सपादलक्ष के महाराज धर्मगजदेव उन्हें बहुत मानते हैं। पाटन, कच्छ, भरुच, सौराष्ट्र और खम्भात के सब श्रावक, सेठ, नगर सेठ हमारे पक्ष में हैं। आपकी कृपा हो तो पचनद पर्यन्त उत्तर में और मगदेश पर्यन्त पूर्व में एक अजेय राज्य स्थापित होकर भारत में जैनधर्म का विस्तार हो जाय। धर्मतन्त्र और राजतन्त्र दोनों ही एक होकर चलें तो इससे उत्तम क्या है?"

यति को सहारा देते हुए सरदार ने कहा—"महारानी माता, फिर एक बात और भी तो है, पृथ्वी तो सब चौहानों की है। मुलतान में अजयपाल, लोहकोट में भीमपाल हैं, मरुभूमि के राजा घोघाबापा हैं, और सपादलक्ष में धर्मगजदेव हैं। नान्दोल में आपके अनहिल्लराज हैं ही। अब रह गया अर्बुदराज परमार और चौलुक्यों का पाटन, सो अर्बुदराज के युवराज कृष्णदेव इस समय नान्दोल में हैं। वे हमारे युवराज बालाप्रसाद के घनिष्ठ मित्र हैं। दोनों को घुड़सवारी का बेहद शौक है। दोनों एक प्राण दो शरीर हैं। अर्बुदपति धुंधुकराज भी इस समय मेदपाटन में मालवराज के सान्निध्य में हैं, सो नान्दोल के मार्ग में अर्बुदेश्वर की कोई बाधा

नहीं है। आप यदि यह वचन दें कि गद्दी पर बैठने के बाद महाराज दुर्लभदेव यह घोषणा करें कि वे नान्दोल के युवराज बालाप्रसाद को गोद लेकर पाटन का उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं तो फिर सब काम ठीक है। देखते-ही-देखते नान्दोल राज महाराज दुर्लभदेव को पाटन की गद्दी पर बैठा देंगे। यहाँ पाटन के महामन्त्री वीकणशाह हमारे साथ हैं ही। सारा राजकोष तुरन्त महाराज दुर्लभदेव के हाथ में आ जायगा।"

यह कहकर चौहान सरदार ने भेदभरी दृष्टि से वीकणशाह की ओर देखा। वीकणशाह दुबला-पतला, चालाक और सावधान बनिया था। उसने इधर-उधर देखते हुए कहा—"राजकोष राजा का, और मैं राजा का चाकर। पाटन की गद्दी पर जो राजा बनकर बैठे, उसी की सेवा में वीकणशाह और समस्त राजकोष उपस्थित है।"

"तो अब दो प्रश्न रह गये। एक महाराधिराज का, दूसरा युवराज वल्लभदेव का। भीमसिंह वाणावलि युवराज के साथ हैं, वे गज़नी के सुलतान का सामना करने के बहाने सिद्धस्थल में बैठे सैन्य-संग्रह कर रहे हैं। भीमदेव बड़ा योद्धा है, और युवराज वल्लभदेव भी साधारण पुरुष नहीं।"—जिनदत्त ने खूब सावधानी से कहा।

"परन्तु उनके पास धन कहाँ है भाई, वे सेना-संग्रह करेंगे कहाँ से ? शस्त्र खरीदेंगे कहाँ से ? सेना को वेतन देंगे कहाँ से ?" वीकणशाह ने कुटिलता से मुस्करा कर कहा।

"क्यों ? ज्यों ही दुर्लभदेव राजा होंगे, वे खुला विद्रोह करके लूटपाट प्रारम्भ कर देंगे। फिर प्रजा उन्हें मानती है। वह उन्हें धन से मदद देगी।" चौहान ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता। प्रथम पाटन के लोग सब जैन श्रावक सेठ-साहूकार हमारे साथ हैं। वे भीमदेव और वल्लभदेव की कोई सहायता नहीं करेंगे। दूसरे भीमदेव प्रजा पर लूटपाट करेंगे तो प्रजा उनके पक्ष में न रहेगी। फिर वह प्रजा में लूटपाट करेंगे ही नहीं।"—यति जिनदत्त ने कहा।

"परन्तु यह न भूलिए कि उनके साथ विमलदेवशाह है। वह राज्य का नो

कोषाध्यक्ष है, पर है वह वास्तव में वल्लभदेव का मन्त्री। वह एक ऐसा छोकरा है, जो न राजा की आन मानता है न राजमन्त्री की। उसे हाथ में बिना लिये छुटकारा नहीं है।"—श्रीकणशाह ने मुस्कराते हुए कहा।

"उसे मेरे सुपुर्द कीजिए। मैं उसे जानता हूँ, वह मुत्सद्दी नहीं है। रणयोद्धा है। उसे अपने धनुषबाण का बड़ा अभिमान है, और अच्छे-अच्छे महालय बनवाने का शौक है। वह जैन धर्मानुयायी है, वह हमसे बाहर जा नहीं सकता"—जैन-यति ने कहा।

चौहान सरदार ने कहा—"तो सबसे पहला काम यह है कि वल्लभदेव और भीमदेव को ही बन्दी किया जाय।"

परन्तु यह काम युद्ध करके या बल से नहीं, छल से ही होना चाहिए"—श्रीकणशाह ने कहा।

"छल से कैसे ?"

"आज इस समय दोनों पाटन में उपस्थित हैं। संग में सेना भी नहीं है। महाराज उन्हें बन्दी करने की आज्ञा दे चुके हैं। मैं दण्डपाल को आदेश देता हूँ कि उन्हें नगरद्वार पर बन्दी कर लिया जाय।"

"यह उत्तम है, परन्तु इससे राजधानी में विद्रोह हो गया तो ?" राजमाता ने कहा।

"कैसे होगा ? कानोंकान यह बात कोई जान भी न पायगा। दोनों ही छद्म-वेष में आये हैं। कौन जानता है कि कौन बन्दी हुआ। राजदरबार के सौ झमेले होते हैं।"

"तो श्रीकण, तुम यह भार लेते हो ?"

"क्यों नहीं, परन्तु महामन्त्री की मुद्रा तो मुझे ही मिलेगी न ?"

"इसमें क्या सन्देह है। अब महाराज।"

"उनसे महारानी बा, आप ही निपटिए। यह अन्तःपुर का मामला है।"

"क्या उन्हें बन्दी कर लिया जाय ?" रानी ने धीरे से कहा।

'यह तो अस्वाभाविक है महारानी माता। महाराज को अन्तःपुर में बन्दी करने का कुछ अर्थ ही नहीं। प्रजा में तुरन्त विद्रोह उठ खड़ा होगा। महाराज के

बन्दी करने का कोई कारण हम बता ही न सकेंगे।"

"तब दुर्लभ प्रकट में सेना लेकर महाराज को बन्दी कर ले।"

"यह भी खतरनाक योजना है। सेनापति बालुकाराय हमारे हाथ में नहीं है। वह खून की नदी बहा देगा। हमारी सारी योजना छिन्न-भिन्न हो जायगी" —वीकणशाह ने कहा।

"तब ?" रानी ने कहा।

"यह काम तो बालचन्द ही पार कर सकता है, दूसरे की सामर्थ्य नहीं" —वीकणशाह ने मुस्कराकर कुटिल हास्य हँसते हुए कहा।

बालचन्द खवास ने हाथ मलते हुए कहा—"महारानी कहें तो मैं इनका आज्ञाकारी सेवक हूँ।"

महारानी दुर्लभदेवी काँप गईं। उन्होंने बात का मर्म समझ कर कहा—"क्या कोई दूसरा उपाय नहीं है ?"

"नहीं महारानी, यह राजतन्त्र है। इसमें जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं"—वीकणशाह ने होठ टेढ़े कर कहा—"आप यह अवसर चूकीं तो चूकीं। महाराज तो भोर के दीपक हैं, आज गये तो—कल गये तो—और फिर वल्लभदेव और भीमदेव हैं। आपको और महाराज दुर्लभदेव को तो फिर दासता ही भोगनी है।"

"यह तो कभी नहीं हो सकेगा, वीकण!"

"तो महारानी बा, साहस कीजिए। जो काम आपके भाग का है उसे भुगताइए।"

"तो मैं अपना काम करूँगी। बालचन्द, तू क्या कहता है ?"—उन्होंने भेद-भरी नजर से खवास की ओर देखा।

"महारानी बा, मेरे पास सब-कुछ है, यह देखिए।" उसने वस्त्र से एक छोटी-सी पोटली निकालकर दिखा दी। "मुझे केवल मेरा पारिश्रमिक मिलना चाहिए और चम्पकबाला का सहयोग।" खवास ने लुब्ध दृष्टि से चम्पकबाला की ओर देखा।

रानी ने उसी समय अपना कंगन उतार कर उस पर फेंक दिया और कहा—"पचास हजार दाम का है, परन्तु काम प्रभात ही में होना चाहिए। विलम्ब का

काम नहीं।"

'विलम्ब क्यों ?" खवास ने तृषित नेत्रों से कंगन को देखा, और हर्षित हो, वस्त्रों में छिपा लिया। फिर चम्पकबाला की ओर अभिप्रायपूर्ण दृष्टि से देखा। रानी ने कण्ठ से मोतियों की माला निकालकर चम्पकबाला को देकर कहा—'तू डरती तो नहीं ?" चम्पकबाला ने कहा—'सब हो जायगा रानी बा।"

जैनयति ने पूछा—"बालचन्द, तेरा काम कब तक पूरा हो जायगा ?"

"दोपहर तक—भोजनकाल में।"

"और चौहान, महाराज दुर्लभदेव कब तक पाटन पहुँच जायेंगे ?"

"यदि इसी समय मैं चल दूँ तो कल तीसरे पहर तक पकड़ पाऊँगा।"

"ठीक है—राजमन्त्री, भीमदेव और वल्लभ ?"

"उन्हें मैं सूर्योदय से प्रथम ही बन्दी कर लूँगा।"

यति ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छी बात है, और राजकोष ?"

"इसके लिए विमलशाह को वश में करना होगा।"

"मैं भोर ही विमलशाह के पास जाऊँगा।"

जैनयति ने कहा—"सब ठीक हो गया, अब महारानी बा, यह लेख है, इसमें लिखा है—महाराज दुर्लभ निस्सन्तान हैं, वे अपने भतीजे नान्दोल के अनहिल्लराज के राजकुमार बालाप्रसाद को गोद लेते हैं, और उन्हें पाटन का उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं। लीजिए, इस पर सही कीजिए और अपनी मुद्रा मुझे दीजिए ताकि मैं अभी नान्दोल को प्रस्थान करूँ।" रानी ने काँपते हाथों सही कर दी, और राजमुद्रा भी उसे दे दी।

इसके बाद सभा भंग हुई और सावधानी से सब कोई बाहर आये।

२२ : दामो महता

सब लोगों के वहाँ से चले जाने के बाद वह प्रच्छन्न पुरुष भी अपने स्थान से उठा। उसने सावधानी से अपने चारों ओर देखा तथा मुट्ठी में दृढ़ता से तलवार थामकर निःशब्द चरण रखता हुआ जिधर सब गये थे, उसकी विपरीत दिशा को चला। भग्न मन्दिर से कुछ दूर हटकर एक विशाल शाल्मली का वृक्ष था। उसकी सघन छाया बाक़ी दूर तक फैली थी। परन्तु उसके चारों ओर थोड़ी दूर तक खुला मैदान था। उसी वृक्ष की छाया में पहुंचकर उसने चारों ओर देखा, फिर ताली बजाई। एक पुरुष तुरन्त वृक्ष की खोखली से निकलकर उसके निकट आ उपस्थित हुआ। उसे देखते ही उस पुरुष ने कहा—"आनन्द, तू इसी समय सेनापति बालुकाराय के आवास में जा, और उनसे कह कि सशस्त्र सवारों का एक दस्ता तुरन्त राजमार्ग पर भेज दें—वहाँ एक जैनयति नान्दोल को जा रहा है उसे निश्चय रूप से बन्दी करके आधीन कर लें। दूसरा एक दस्ता सिद्धस्थल के राजमार्ग पर भेजा जाय, वहाँ एक सामन्त घुड़सवार सिद्धस्थल जा रहा है, उसे भी बंदी करके अधिकार में कर लें। तथा नगर के सब द्वारों पर प्रहरियों की संख्या बढ़ा दें। और बिना संकेत कोई जन नगर से भीतर तथा भीतर से बाहर न जाने-आने पाय। संकेत शब्द होगा 'जयसमुद्र'।"

आनन्द प्रणाम करके जाने लगा। परन्तु पूर्व पुरुष ने फिर कहा—"ठहर, सेनापति को दो सौ सैनिकों सहित धवलागृह के दक्षिण—बिल्कुल नगरद्वार के निकट—स्वयं मेरी प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

आनन्द फिर प्रणाम करके जाने लगा। परन्तु उस पुरुष ने रोककर कहा—"मेरा घोड़ा?"

आनन्द चला गया। वह पुरुष वहाँ से सरस्वती के किनारे-किनारे चलने लगा। एक टूटे मन्दिर के निकट पहुँचकर उसने फिर ताली बजाई। एक पुरुष घोड़ा लेकर आ उपस्थित हुआ।

पूर्व पुरुष ने कहा—"देवसेन, क्या तू खवास बालचन्द्र को पहचानता है ?"

"अच्छी तरह महाराज !"

"और महाराज की ताम्बूलवाहिनी चम्पकबाला को भी ?"

"उसे भी महाराज !"

"तो तू जैसे भी सम्भव हो उन दोनो को सूर्योदय से प्रथम ही अपने अधीन कर और मेरी दूसरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर वे किसी कारणवश इस समय रगमहल से बाहर हैं। और सामने कुछ पुरुष जा रहे हैं—उनमें वे दोनो भी हैं, जैसे सम्भव हो तू उन्हें मार्ग ही में घर। नगर-द्वार पर वे पहुँचने न पायें। और इस मामले में गोगा भी न मचने पाय।"

"जो आज्ञा", कहकर वह तत्क्षण अन्तर्धान हो गया।

इस गूढ़ पुरुष का नाम दामोदर था। पर पाटन में यह दामो महता के ही नाम से विख्यात था। यह पाटन राज्य का सधिविग्रहिक और कूटमन्त्री था। कहने की आवश्यकता नहीं कि राजदरबार में यह उपेक्षित था। परम माहेश्वर गुर्जराधिपति श्री चामुण्डराय देव को कभी इस विलक्षण मन्त्री की आवश्यकता पड़ती ही न थी। यह पुरुष भी अपने कार्य के लिए कभी राजा की अपेक्षा नहीं करता था। परन्तु देखा जाय तो यह देखने में साधारण पुरुष अकेला ही पाटन के राजतन्त्र का समर्थ प्रवर्तक था।

घर के चले जाने पर वह बड़ी देर तक चुपचाप सोचता रहा। अनेक उत्तेजित कर देने वाले विचार उसे विचलित कर रहे थे। वह सोच रहा था—आज ही क्या पाटन में प्रलय होगी और दामो महता के रहते ? यह असम्भव है। एक दृढ़ निश्चय की भावना से उसके ओष्ठ सम्पुटित हो गये, उसने तलवार म्यान में की और घोड़े पर सवार हो तेजी से एक ओर को चल दिया।

२३ : कूट मन्त्र

उसी रात में उसी नगर में एक दूसरा ही कार्य हो रहा था। अनहिल्ल-पट्टन के एक एकान्त भाग में एक बहुत पुरानी भग्न अट्टालिका थी। अट्टालिका बिल्कुल सूनी और बेमरम्मत थी। यह नहीं कहा जा सकता था कि इसमें किसी मनुष्य का निवास है। अट्टालिका का मुख्य द्वार सदैव बन्द रहता था। उसके आस-पास घास-फूस उग आई थी और स्पष्ट था कि बहुत मुद्दत से यह द्वार खुला ही नहीं था।

परन्तु वास्तव में बात ऐसी न थी। इस समय इस अट्टालिका में चार व्यक्ति उपस्थित थे। जिस कक्ष में ये लोग बैठे थे, वह एक प्रकार से सुसज्जित था। दीपक का प्रकाश उस कक्ष में फैल रहा था। कक्ष के बाहर एक सशस्त्र योद्धा सावधानी से पहरा दे रहा था।

चारों मनुष्य धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। परन्तु उनकी चेष्टा से यह प्रकट था कि वे किसी व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गई थी। परन्तु ये चारों व्यक्ति मनोयोग से अपनी बातचीत में संलग्न थे।

इनमें एक तरुण व्यक्ति श्याम वर्ण, तेजस्वी, नील-कान्तमणि की आभा धारण किये था। उसकी बड़ी-बड़ी काली चमकदार आँखें उसकी बुद्धिमत्ता और साहस को प्रकट करती थीं। उस पुरुष का अंग गठित, नाक नुकीली और कण्ठ-स्वर गम्भीर घोषयुक्त था। उस वीर पुरुष को पाठक इस उपन्यास के प्रारम्भ ही में देख चुके हैं। यह गुर्जर का प्रसिद्ध बाणावलि युवराज भीमदेव चौलुक्य था। अभी इसकी आयु केवल २६ वर्ष की थी। परन्तु अपने गाम्भीर्य, तेज और वैशि-

ष्टच से यह हज़ारो मनुष्यो के शीर्षस्थान पर सुशोभित था।

दूसरा एक प्रौढ़ अवस्था का गौरवर्ण, दीर्घाकार और तेजस्वी राजसी व्यक्ति था। इसकी बडी-बडी राजसी आँखो में लाल लाल डोरे—इसकी ऐश्वर्य-भावना प्रताप और विलास की सामर्थ्य को प्रकट कर रहे थे। यह एक दृढ निश्चयी, वचन-प्रतिपालक, स्थिरबुद्धि और वीर पुरुष था। यह गुर्जरेश्वर चामुण्डराय का ज्येष्ठ पुत्र वल्लभदेव था।

तीसरा पुरुष एक तेजस्वी तरुण था। इस पुरुष की आकृति में सौंदर्य, शौर्य, दृढता और भावुकता का अद्भुत सम्मिश्रण था। यह सादा श्वेत वस्त्र पहने एक तलवार सामने रक्खे चुपचाप वार्तालाप में योग दे रहा था। यही पुरुष आबू के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माता, गुर्जर मन्त्री विमलदेव था।

चौथा पुरुष एक कृश-तनु ब्राह्मण था। उसकी मुखाकृति विशेष आकर्षक न थी। परन्तु उसकी प्रत्येक बात से विचारशीलता टपकती थी। वह बहुत धीरे धीरे नपी-तुली बात कहता था। यह अधेड अवस्था का पुरुष गुजरात का चाणक्य कहाता था। इसका नाम चण्डशर्मा था। और यह गुर्जर राज्य का महासंधि-विग्रहिक था।

भीमदेव बाणावलि ने कहा—"काका महाराज की जो दशा है, उससे तो अब कुछ आशा नही है। अब गुजरात की मानरक्षा के लिए आप ही को कुछ करना होगा। इस समय तो हम भीतरी और बाहरी शत्रुओ से घिरे हैं। अब यदि हम महाराज पर ही निर्भर रहें तो बस हो चुका।"

"कुमार, तुम्हे यह नहीं मालूम कि आज ही महाराज ने तुम्हें और युवराज को वन्दी करने की आज्ञा दी है।"

वल्लभदेव ने कहा—'किस अपराध पर ?"

'अपराध की क्या बात है युवराज, जैसे जिसने महाराज के कान भर दिये, महाराज को वही सूझ गया। अब तो वे यह विश्वास किये बैठे हैं कि आप और कुमार मिलकर महाराज को राज्यच्युत करने की साँठ-गाँठ कर रहे हैं। बस, इसी अपराध पर।"

"कर नही तो डर नही! इन बातों से हम भय क्यो करें ?"

'परन्तु युवराज, अविवेक के सम्मुख विवेक नहीं चलता। जहाँ अविवेक है वहाँ विवेक सावधान रहता है। आपका कार्य यही है कि भविष्य को विचारें और समझें कि गुजरात के महाराज चामुण्डराय नहीं हैं, आप हैं।"

"परन्तु अभी तो भीतरी-बाहरी शत्रुओं की बात है न ?"

"सबसे पहले गजनी का महमूद। वह आ रहा है। घोघावापा साका रच चुके। उन्हें पदाक्रान्त कर अब वह सपादलक्ष पहुँचना चाहता है। महाराज धर्मगजदेव उसके सम्मुख हो को तैयार बैठे हैं। परन्तु महमूद के प्रचण्ड सवारों से हमें असावधान न रहना चाहिए। महमूद को मैं देख चुका हूँ, वह साहसी एकाकी ही सोमनाथपट्टन छद्मवेष में चला आया था। परन्तु सर्वज्ञ की दृष्टि से छिपा नहीं रहा। दु:ख इतना ही है कि मेरी तलवार से जीता बच गया।"

"तो दु:ख क्या है कुमार, तुम्हारी शोभा तो उसे सम्मुख युद्ध में धराशायी करने में है।"

"वह समय भी आ रहा है। काका जी, अब विचारना यह है कि कहाँ उससे मुठभेड़ की जाय। क्या हम सपादलक्ष चलें, या नान्दोल, या उसे पाटन आने दें।"

चण्डशर्मा ने कहा—"कुमार, अब पहले तनिक भीतरी मामलों पर भी दृष्टि दो, तभी इस प्रश्न का हल मिल सकता है। पहले नान्दोल की बात ही विचारो।"

"विचारना क्या है नान्दोल के अनहिल्लराज तो हमारे मामा का बेटा है, सम्बन्धी है। फिर पाटन का सामन्त है।"—वल्लभदेव ने कहा।

"और यदि ऐसा न हो ?"—दामो महता ने कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा। सबने महता की ओर आश्चर्य से देखा।

चण्डशर्मा ने कहा—"आओ दामोमहता, हम तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर तुम्हारे इस कथन का अभिप्राय क्या है ?"

"यह, कि नान्दोल के महाराज अनहिल्लराज पाटन की गद्दी के सम्बन्धी और हितैषी नहीं हैं, सामन्त भी नहीं है। वे केवल महाराजकुमार दुर्लभदेव के सम्बन्धी हैं।"

"यह कैसे दामो ?"

"महाराज, अभी तक तो हमें विदेशी शत्रुओं और पड़ौस के शत्रुओं से ही निपटना था। अब रक्त के शत्रुओं से निपटना उससे भी अधिक आवश्यक हो गया है।"

'दामोदर, पहेली न बुझाओ, स्पष्ट कहो।"

'तो महाराज, स्पष्ट ही कहता हूँ। राजधानी में गहरा षड्यन्त्र चल रहा है, जिसका सारांश यह है कि महाराज को विष देकर मार डालने तथा आप और कुमार को बन्दी करने की योजना बना ली गई है। आप यहाँ उपस्थित हैं। इसका भी पता शत्रुओं को चल गया है।"

'किन्तु वे शत्रु हैं कौन ?"

"महारानी दुर्लभदेवी, नान्दोल के राजा अनहिल्लराज और जैनयति जिनदत्त सूरि।"

'यह तुम क्या कह रहे हो महता।"

"उनके सहायक हैं वीकणशाह—गुजरात के महामन्त्री, और महाराज के नाव के बाल बालचन्द खवास।

"परन्तु इसका प्रमाण ?"

"मेरा वाक्य ही प्रमाण है महाराज, मैं अभी शत्रुओं के गुप्त षड्यन्त्र को आँखों से देखकर आ रहा हूँ।"

"तब इसका उपाय ?"

"उपाय पीछे सोचा जायगा। अभी जो बात चल रही है वही हो।"

"तो नान्दोल के अनहिल्लराज का विचार पाटन से विद्रोह करने का है ?"

"यह तो स्पष्ट है—महाराज। वे सब मिलकर राजकुमार दुर्लभदेव को पाटन की गद्दी देने की सोच रहे हैं।"

"तो सबसे प्रथम तो यही विषय विचारने योग्य है।"

"नहीं महाराज, सब से प्रथम विचारणीय बात यह है कि गजनी का अमीर जो गुजरात को दलित करने आ रहा है उसकी रोकथाम होनी चाहिए।"

"वह किस प्रकार ?"

"इस प्रकार महाराज, कि पाटन की उत्तर दिशा का दिग्पाल सिन्धुपति

हम्मुकदेव, पश्चिम का अर्बुदेश्वर और पूर्व में नान्दोल—सपादलक्ष।"

"पर तुम्हारे कथन से तो यह स्पष्ट है कि नान्दोलपति अनहिल्लराज ने पाटन की सत्ता का त्याग कर दिया है।"

"और अर्बुदेश्वर धुधुकराज ने भी।"

"अरे! यह कैसे?"

"उसने मालवराज का आश्रय लिया है।"

"किन्तु मालवराज भोज तो आजकल मेदपाट में है न?"

"हां महाराज, धुधुकराज भी वहीं है।"

"अरे, तो यह पाटन के विरुद्ध एक त्रिपुटी तैयार हो रही है?"

"और उधर गजनी का महमूद दलबादल ले पाटन की ओर धंसा चला आ रहा है। और भी एक बात है।"

"क्या?"

"कृष्णदेव बालाप्रसाद के पास नान्दोल गया है।"

"तो इसका यह अर्थ है कि अर्बुदाचल की राजधानी में राजा भी नहीं, युवराज भी नहीं। यह तो असहनीय है, अर्बुदपति धुधुकराज पाटन की सत्ता को अपमानित कर गुजरात के चिरशत्रु भोजराज के आश्रय में जाय, और उसका पुत्र कृष्णदेव नान्दोल के युवराज के पास रहकर पाटन के विरुद्ध तैयारी करे।"

"अब रही सिन्धुपति हम्मुकराज की बात, वह सीधी दामोदर से बात करता है।" यह है महाराज, पाटन के दिग्पालों की कथा।

"अब पाटन की कथा कहो दामो महता।"

"महाराज, चामुण्डराय के तो वही रंग-ढंग हैं। आपके विरुद्ध यह षड्यन्त्र तो हो ही रहा है। महाराज ने आपको बन्दी करने का आदेश दे दिया है। भावी आपत्ति से वे सर्वथा बेखबर हैं। उधर रनवास में षड्यन्त्र चल रहे हैं।"

"सबसे प्रथम महाराज की प्राण-रक्षा होनी चाहिए दामो"—युवराज वल्लभदेव ने व्यग्र भाव से कहा।

"तो महाराज, आप आज्ञा दीजिए कि महारानी दुर्लभदेवी को बन्दी कर लिया जाय।"

"विमल और तुम जैसा ठीक समझो उसी भाँति महाराज के प्राण-रक्षा की व्यवस्था करो। परन्तु यह ध्यान रखो कि राजपरिवार की बदनामी सर्वसाधारण में न होने पाय।"

"तो महाराज, आप निश्चिन्त रहें। इस षड्यन्त्र को विफल करने का प्रयत्न मैं कर लूंगा। परन्तु महामंत्री वीकणशाह की जिम्मेदारी विमलदेवशाह अपने पर लें तो ठीक है। जैसे आप पाटन के भावी महाराज हैं, वैसे विमलदेवशाह पाटन के भावी महामन्त्री हैं। यह तो ध्रुव है।"

विमलदेव ने कहा—"मैं महामन्त्री से निपट लूँगा महता। अब बाहर की बात कहो—पहले नान्दोल।"

"वहाँ मेरा पुरुष गया है, समय पर समाचार मिल जायगा।"

"ठीक, अर्बुद।"

"वहाँ से भी आप निश्चिन्त रहें। सब सूचनाएँ मिल जाएँगी।"

"तो अब रहे सिन्धुराज और मालवराज भोज। सिन्ध पर अभियान करें, कुमार भीमदेव।"

"यह ठीक नहीं होगा। पहले अर्बुदेश्वर और नान्दोल-राज ठीक हो तब तीनों की संयुक्त सैन्य लेकर।"

"परन्तु इधर गजनी का अमीर जो आ रहा है।"

"उससे प्रथम ही तीनों दिशाओं में दिग्पालों की दृढ़ स्थापना हो जानी चाहिए।"

"परन्तु कैसे? कल्पना कीजिए मालवराज भोज और नान्दोलपति अनहिल्लराज तथा धुन्धुकराज की त्रिपुटी पाटन पर चढ़े तो?"

"तो भारी पड़े।"

"फिर गजनी का दुर्दान्त अमीर है, उसके लिए हमें अपनी शक्तियाँ सुरक्षित रखनी आवश्यक हैं।"

"तब तो बहुत कुछ मालवराज के निर्णय पर निर्भर है।"

"ऐसा ही है।"

"तब मालव पर ही पहले अभियान हो?"

"यह क्यों, अभी मालव में चर जाय।"

"यह भी ठीक है, परन्तु चर विद्वान्—प्रतिभाशाली और राजनीति-पटु होना चाहिए।"

"महाराज, मालवराज की सभा में जाने योग्य व्यक्ति पाटन में एक ही है, भीमकदेव।"

"तो दामो, भस्माक को तुरन्त ही मालव भेजो। और ऐसा करो जिससे अभी यह बाहरी कलह टले। पहले ग़जनी का अमीर और पीछे और कुछ।"

"ऐसा ही होगा महाराज, परन्तु आप भी अभी इसी क्षण यहाँ से प्रस्थान कीजिए। केवल एक प्रहर रात्रि रह गई है। आपको सूर्योदय होने से पूर्व ही सिद्धस्थल पहुँच जाना चाहिए। यहाँ हम और विमलदेवशाह सब ठीक-ठाक कर लेंगे। आप राघलपुर में सैन्य-संग्रह करना आरम्भ कर दें। सिद्धस्थल त्याग दें। अब दुर्लभराय पर भरोसा नहीं किया जा सकता।"

"तब हमारे अश्व मँगाओ दामो।"

सब लोग उठे। महाराजकुमार भीमदेव और वल्लभदेव अश्व पर सवार हो गुप्त मार्ग से वहाँ से चल दिये। उनके पीछे दो अश्वारोही और चले। इसके बाद चण्डशर्मा, दामोदर महता और विमलदेव अपने-अपने पथों पर चले।

२४ : भस्मांकदेव

उस टूटती रात में, सब के विदा हो जाने पर दामोदर महता अपनी घोडी पर सवार हो धीरे-धीरे राजपथ पर अग्रसर हुए। इस समय उनके मस्तिष्क में दो विचारधाराओं का संघर्ष हो रहा था—इधर अन्तर्विग्रह से पाटन का राजतन्त्र खण्डित हो रहा है—उधर मालवराज पाटन का संरक्षण खण्डित कर अपनी गजसैन्य पाटन पर लाने की अभिसंधि में है—तीसरे गज़नी का यह दैत्य पाटन पर धँसा चला आ रहा है। जैसे हो दोनों विनाश की योजनाओं को व्यर्थ करना होगा—वह भी बिना तलवार के। तलवार तो ग़ज़नी के सुलतान के लिए ही सुरक्षित रखनी होगी।

उन्होंने भस्मांकदेव के आवास की ओर घोडी फेरी। नगर के बाहर धवल-गृह के मार्ग पर भस्मांकदेव का भव्य आवास था। यह आवास एक मनोरम उद्यान में था। भस्मांकदेव गुर्जरेश्वर के राजमन्त्री न होने पर भी राजमन्त्री थे। वे राजपुत्रों के विद्यागुरु, परम तेजस्वी और विद्वान् ब्राह्मण थे। पाटन में उनका मान और नाम राजा और प्रजा दोनों ही में बहुत था। राजकाज और राजनीति में यह ब्राह्मण राजपुरुष न होने पर भी सक्रिय भाग लेता था। कुमार भीमदेव को उन्होंने सर्वशास्त्रनिष्णात किया था। और युवराज वल्लभदेव के ये व्यक्तिगत मन्त्री समझे जाते थे। राजा, राज्य और देश के गौरव के विरुद्ध कोई भी बात भस्मांकदेव सहन नहीं कर सकते थे। इस ब्राह्मण की योजनाएं और क्रियाशक्तियां अति समर्थ होती थीं। शास्त्रों के परम निष्णात पण्डित होने के साथ भस्मांकदेव शास्त्रों के समर्थ प्रयोक्ता, संगीत और साहित्य के मर्मज्ञ और वृत्ति में अति सरल

सात्विक पुरुष थे ।

भस्मांकदेव के द्वार पर पहुँच कर दामोदर को सेवक द्वारा मालूम हुआ कि भस्मांकदेव अपने अध्ययन-कक्ष में हैं । सूचना पाते ही उन्होंने उन्हें बुला लिया। शिष्टाचार के बाद भस्मांकदेव ने हँसकर कहा—

"यह क्या बात है दामो, पाटन की राजनीति तारों की छाँह में चलती है।"

"राजनीति और ज्ञाननीति दोनों ही तारों की छाँह में चलें तो ठीक ही है। सूर्य के प्रकाश में तो उनकी गूढ़ता भंग होती है। तभी तो देव रात-रात भर अध्ययन करते हैं।"

"यह तो मेरी आदत है दामो, परन्तु तुम कहो। देश-देश के राजमन्त्री जहाँ इस समय सुख की नींद ले रहे हैं, यह पाटन का मन्त्री कहाँ-कहाँ भटक रहा है।"

"क्या किया जाय, यह राजतन्त्र है ही ऐसी आपत्ति।"

"परन्तु इस आपत्ति में राजमन्त्री ही रातों जागरण करते हैं, या राजा भी।"

"राजा भी जागरण करते होंगे। वे दिन भर ऊँघते हैं—इसी से समझा जा सकता है। परन्तु उनके जागरण के कारण तो दूसरे ही हैं।"

"मद्य, संगीत और सौन्दर्य ?"

"जी हाँ।"

"तो महता, कहो—मैं क्या तुम्हारी सेवा कर सकता हूँ।"

"मेरी नहीं देव, पाटन की।"

"हाँ हाँ, पाटन की। पाटन में दामो महता के समान दूसरा कोई व्यक्ति है, जिसे पाटन की प्रतिष्ठा का इतना विचार हो ?"

"क्यों नहीं, भस्मांकदेव जो हैं।"

"परन्तु महता, राजा की तो यह दशा है।"

"देव, देवमूर्ति तो पत्थर की होती है। सारी चैतन्य सत्ता तो उसके पुजारी ही में है। पुजारी उसके भोग-ऐश्वर्य का कर्ता-धर्ता है, मैं तो राज्य का मन्त्री हूँ, केवल एक चाकर। परन्तु आप राज्य के मन्त्री हो नहीं—राज्य के मित्र हैं। इस

समय पाटन पर सङ्कट है, आपको उठना होगा। आपके अध्ययन में विघ्न पड़े तो पड़े।"

"सो उसकी चिन्ता नहीं, पर मुझे करना क्या होगा?"

"इस समय रनवास ही अन्तःकलह का केन्द्र बन रहा है, उधर अवंतीराज भोज इसी सुअवसर से लाभ उठाकर पाटन की रक्षा-शक्ति को भंग करने के प्रयत्न में है। आप जानते ही हैं कि ग़ज़नी का सुलतान गुजरात में घँसा चला आ रहा है। ऐसी दशा में पाटन के दिग्पाल यदि असावधान रहें तो पाटन का सर्वनाश है। चौलुक्यों का युग-युग का यश छिन्न-भिन्न हो जायगा। अर्बुदेश्वर धुंधुकराज और नान्दोल का अनहिल्लराज दोनों ही मेदपाटेश्वर में अवन्तिपति के सान्निध्य में बैठे पाटन के विनाश का ताना-बाना बुन रहे हैं। जिन पर रक्षा का भार है, वे शत्रु के सहायक हैं। उधर सिन्धुपति खुल्लमखुल्ला स्वतन्त्र घोषित हो रहा है। उसे उत्तर का दिग्पाल नियुक्त किये बिना गुर्जर-भूमि तो अरक्षित खेत के समान नष्ट हो जायगी। परन्तु देव, इस समय पाटन इन घरेलू शत्रुओं पर तलवार नहीं उठाना चाहता। तलवार तो ग़ज़नी के दैत्य के लिए सुरक्षित रहनी चाहिए।"

"यह सत्य है—पर कहो, मैं क्या करूँ?"

"आप मालव जाइए।"

"मैं? मैं क्या करूँगा?"

"पाटन में दूसरा व्यक्ति ऐसा और नहीं, जो मालव के पण्डितों और वारांगनाओं के प्रपंच से बचकर आ सके। आप मालव की प्रकृति के जानकार हैं। मालव राजद्वार में आपका मान है। आप उससे लाभ उठाइए। मालवराज पाटन को विष-दृष्टि से देखता है। सिन्धु तक साम्राज्य का विस्तार करने में पाटन ही उसकी बाधा है। उधर पाटन का वह अपराधी भी है, पाटन को उससे बैर लेना है, परन्तु आज नहीं। आज तो उसे रोकना होगा। यह काम आप ही कर सकते हैं देव।"

"दामो, यह काम तो तुम्हारे बूते का है।"

"मैं ही जाता। पर मैं यदि आज पाटन छोड़ता हूँ तो देव, सत्य जानिए पाटन

भी नहीं, पाटन के महाराज भी नहीं। इसलिए पाटन को मुझ पर छोड़िए। आप मालव जाइए।"

भस्माकदेव विचार में पड़ गये। दामोदर ने धीमे स्वर में कहा—"आप तैलपराज की बहिन—मुंज की विधवा महारानी कुसुमवती को जानते हैं। वह भी आपको बहुत मानती है।"

"तो इससे क्या ?"

"सब कुछ इसी में हो गया देव, वह बड़े तेज़ स्वभाव की स्त्री है। तैलपराज ने अपने हाथों से महाराज मुंज का शिरच्छेद किया था, यह अवन्ति का साधारण अपमान नहीं है। भोजराज इस अपमान को भूलकर इधर-उधर ध्यान दे रहे हैं। आप कुसुमवती को उकसाइए, सारी राज-सभा को उकसाइए, सारे मालव में आग लगा दीजिए। और मालवराज को तैलपराज पर अभियान में पेल दीजिए। यह आप ही की सामर्थ्य है, दूसरे की नहीं। यह सुयोग भी अच्छा है। मालवराज अवन्ति से बाहर हैं। आपके काम में बाधा न होगी।"

भस्माकदेव ने गम्भीर विचार करके कहा—"ठीक है। महता, मैं जाऊँगा।"

"तो यह महाराज की मुद्रिका है, आप अभी—इसी क्षण प्रस्थान कर जायें। एक क्षण भी हमारे लिए मूल्यवान् है।"

"ऐसा ही होगा", कहकर भस्माकदेव उठे। दामोदर भी उठे। दो घड़ी बाद दो अश्वारोही अवन्तिद्वार पर पहुँचे। एक द्वार के बाहर अवन्ति के मार्ग पर चला। दूसरा उस पर शुभ दृष्टि बखेरता पीछे लौटा।

प्राची दिशा उज्ज्वल हो रही थी।

२५ : दामोदर की कूटनीति

श्री भस्माकदेव को नगर के अवन्तिद्वार से बाहर कर दामोदर पीछे लौटे। इसी समय आनन्द ने सम्मुख आकर प्रणाम किया। दामोदर ने प्रसन्न होकर कहा—

"हो गया ?"

"जी।"

कुछ देर दामोदर कुछ सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा—"आनन्द, सुना है नान्दोल में सैनिक तैयारियाँ बड़े धूम-धाम से हो रही हैं। इस समय यदि कोई शस्त्रों का सौदागर अच्छे शस्त्रास्त्र वहाँ जाकर बेचे तो लाभ-ही-लाभ है।"

"महाराज, एक अच्छा सौदागर आज ही अपने साथ बहुत से शस्त्रास्त्र लेकर जाने वाला है।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है। वहाँ इस समय अर्बुद-राजकुमार श्री कृष्ण-प्रसाद देव भी विराजमान हैं, वे नान्दोल के युवराज श्री बालाप्रसाद के परम मित्र हैं। दोनों मित्रों को शस्त्र विद्या का बड़ा शौक है। यदि वह गुणी उन्हें शस्त्र सचालन में प्रसन्न करके उन्हें अनुकूल कर ले, तो भविष्य उसका बहुत उन्नत हो सकता है। पाटन राज्य की ओर से उसे प्रमाण-पत्र दिया जा सकता है।"

"सौदागर निश्चय ही दोनों राजकुमारों को अपनी शस्त्र-विद्या से प्रसन्न कर लेगा।"

"परन्तु आनन्द, नान्दोल के राजकुमार और अर्बुदेश्वर के पाटवी दोनों ही परम रसिक हैं। वे गान-वाद्य के बड़े प्रेमी हैं। यदि वह गुणी सौदागर संगीत का

भी पारदर्शी हुआ तो राजकुमारों का प्रिय अन्तर्वासी बन सकता है।"

आनन्द ने हँसकर कहा—"महाराज, वह सौदागर ऐसा ही पटु और पारंगत है।"

"तो आनन्द, यह मुद्रा ले, तू प्रमाण-पत्र तैयार करके सौदागर को दे। यही मुद्रा दिखाकर विमलशाह से जितना जो चाहे दम्म सौदागर को दिला दे।"

"जो आज्ञा"—आनन्द नमस्कार करके चलता हुआ। इसी समय देवसेन ने सम्मुख आकर प्रणाम किया और कहा—"महाराज, दोनों कब्जे में हैं।"

"ठीक है—देवसेन, मैं अब विश्राम करूँगा। तू जा विमलशाह के घर, और उनसे कह—कि महामन्त्री वीकणशाह पर कड़ी नजर रखें, और उसके घर पर भी पहरा बैठा दें।"

देवसेन प्रणाम करके चला गया। दामोदर ने अपने आवास में जा विश्राम किया। अभी सूर्य की एकाध ही किरण पूर्व दिशा में फूटी थी।

२६ : विमलदेवशाह

विमलदेव एक सामर्थ्यवान् तरुण था। वह देखने में दर्शनीय, व्यवहार में नम्र और युद्ध स्थल में कठिन योद्धा था। बाण-विद्या में कुमार भीमदेव के बाद उसी का नाम गुजरात में विख्यात था। वह एक भावुक श्रावक जैन था। जाति का बनिया था परन्तु स्वभाव का क्षत्रिय। यद्यपि महाराज चामुण्डराय के राज्य में यह प्रधान कोषाध्यक्ष था, परन्तु कुमार भीमदेव का अभिन्न मित्र और युवराज बल्लभदेव का प्रधान मन्त्री था। महाराज चामुण्डराय को यह व्यक्ति पसंद नहीं था, क्योंकि वह सदैव महाराज के खर्च पर टीका-टिप्पणी करता रहता था। बहुधा महाराज की माग की अवज्ञा कर बैठता था। वह अपने अधिकार और कर्तव्य में चौकस था। और उसका आत्मसम्मान और स्वाभिमान इतना बढा हुआ था कि वह गुजरात में अपने समान वीर और राजपुरुष दूसरे को समझता ही न था। गुजरात में केवल दो ही पुरुष थे जिन्हें यह आदर की दृष्टि से देखता था। एक युवराज वल्लभदेव, दूसरे ब्राह्मण भस्माकदेव। दामोदर को यह अपना प्रतिस्पर्धी समझता था। तथा उससे भय भी खाता था।

दामोदर थोडा विश्राम कर झटपट नित्यकर्म से निपट घोडे पर सवार हो विमलदेव के आवास की ओर गये।

विमलदेव का आवास पाटन में अतिभव्य और प्रभावशाली था। उससे उसके स्वामी की शालीनता और सुरुचि दोनों ही प्रकट होती थीं। दामोदर को देखते ही विमल ने आग्रहपूर्वक उनका स्वागत करते हुए कहा—"महता, महाराज वल्लभदेव को नई सैन्य भरती करने के लिए धन भी तो चाहिए।"

"यह तो पाटन के अर्थमंत्री के सोचने की बात है।"

"अर्थमंत्री क्या करे, बड़े महाराज के लानतान के खर्च से कुछ बचे तब तो।"

"राजकोष पहले राज-काज में खर्च होगा—पीछे राजा के लानतान में, वह भी मर्यादित।"

"वही तो महता, इसीलिए मैं नित्य महाराज चामुण्डराय की घर्षणा का पात्र बनता हूँ।"

"यह तो जब तक वीकणशाह का स्थान विमलदेव नहीं ग्रहण कर पाते, तब तक सहना ही पड़ेगा।"

विमलदेव ने मन्द मुस्कान करते हुये दामोदर को देखा और कहा—

"महता, स्वप्न देख रहे हो।"

"स्वप्न रात देखा था, आज तो जो कुछ देखूँगा—वह प्रत्यक्ष।"

"क्या कोई और योजना है?"

"स्वप्न को सत्य करने की।"

"कब!"

"आज ही।"

विमलशाह महता की ओर ताकते ही रहे। फिर उन्होंने कहा—"महता, छोड़ो यह बात, मैंने आज ही कुछ दम्म महाराज वल्लभदेव के पास नई सेना भरती करने के लिए भेज दिये हैं।"

"केवल नई सेना से क्या होगा। शस्त्र भी तो चाहिएँ। फिर घोड़े, हाथी। जानते हो महामन्त्री, मालवाधिपति भोज का गजसैन्य तीन हज़ार है।"

"जानता हूँ। पर बाणावलि कितने हैं?"

दामोदर ने बात टालकर कहा—"पाटन में शास्त्रास्त्र अधिक-से-अधिक उत्पन्न कराने की योजना भी आवश्यक है। फिर बालुकाराय भी तो सैन्य भरती कर रहे हैं।"

"उन्हें तो एक सप्ताह हो गया। सिन्ध-सौराष्ट्र और कर्नाटक से जितने घोड़ों के व्यापारी पाटन में आये थे—सब के घोड़े उन्होंने खरीद लिये हैं। वे दम्म माँग रहे हैं।"

"सो तो माँगे होंगे।"

"पर वीकण ने बड़े महाराज के कान भर दिये हैं। उन्होंने सिंहल के कुछ नये शिल्पी बुलाये हैं। कुछ बगीय कलावन्त आये हैं—उन के लिए उन्हें दस लाख द्रम्म तुरन्त चाहिएँ।

"इस पर आज के बाद विचार होगा, अभी एक अगत्य की बात पर परामर्श करने आया हूँ।"

"कौन बात?"

"भस्माकदेव गये।"

"ठीक हुआ। और नान्दोल?"

"वहाँ एक शस्त्रों का व्यापारी गया है।"

"शस्त्रों का सौदागर?"

"नान्दोल-राज नई सैन्य भरती कर रहे हैं—उन्हें पाटन और अवन्ती दोनों ही से निपटना है। इससे अच्छे शस्त्रों के वहाँ अच्छे दाम उठेंगे, इसी से। फिर एक और बात है।"

"क्या?"

"अर्बुदेश्वर के महाराज-कुमार और नान्दोल के कुमार दोनों ही शस्त्र-विद्या के बड़े प्रेमी हैं। वह सौदागर उन्हें शस्त्र-सचालन की शिक्षा देगा। साथ ही संगीत से भी उन्हें प्रसन्न करेगा।"

विमल ज़ोर से हँस पड़े। दामोदर भी हँसे। फिर कहा—"अब सिन्धु की बात कहो।"

"उसकी क्या बात?"

"वहाँ आप जायँ महामंत्री।"

"मैं?"

"सिन्धुपति हम्मक की नस-नस से आप जानकार हैं। आपको जाना ही पड़ेगा।"

"किन्तु......"

"किन्तु, परन्तु पीछे, आपको पाटन का प्रधान मन्त्री बनना है, इसके बाद

सिन्धु को देखे बिना चलेगा नहीं।"

"क्या कहते हो महता"……"

"महामन्त्री, आज मुझे बहुत काम है, आप समय पर महाराज की सेवा में उपस्थित रहें।"

"पर राजा दम्म मांगेंगे।"

"तो कहता दम्म देने ही आया हूँ।"

"फिर ?"

"फिर दामोदर देख लेगा।"

"महता, तुम कोई भयानक खेल तो नहीं खेल रहे ?"

"भयानक नहीं, एक मनोरजक खेल। मेरा सदेश मिला था ?"

"वीकणशाह के सम्बन्ध में ?"

"हाँ।"

"सब ठीक है महता।"

"तो मैं चला महामन्त्री।"

"यह क्या……"

"जय—जय।"

२७ : राजकलह

गुर्जरेश्वर महाराज चामुण्डराय अत्यन्त क्रुद्ध थे। वे क्रोध में आकर अटसट जो मुंह में आता था, वही बकझक रहे थे। उनके सम्मुख गुजरात के राजस्व-सचिव विमलदेवशाह बैठे थे। उनके चेहरे पर दृढ़ता और विद्रोह के चिह्न स्पष्ट दीख रहे थे।

महाराज ने कहा—"गुजरात का राजा मैं कि तू?"

"आप!" विमलदेवशाह ने संक्षिप्त जवाब दिया।

"तो राजकोष का स्वामी कौन?"

"मैं।"

महाराज ने क्रोध से कांपते हुए कहा—"तू तो चाकर।"

"चाकर राज्य का, राजा का नहीं।"

"राजा का क्यों नहीं?"

"राजा भी राज्य का चाकर।"

"यह बात है? तू राजद्रोही है।"

"मैं राज-सेवक हूँ।"

"पर मैं जैसी मेरी इच्छा होगी राजकोष खर्च करूंगा।"

"यह नहीं हो सकता।"

"तूने वल्लभ को दम्म भेजा क्यों?"

"उसकी आवश्यकता था, राजकार्य के लिए।"

"मेरी आज्ञा क्यों नहीं ली?"

"महाराज को राजकाज देखने का होश ही नहीं है—राजकाज तो दूसरे ही देखते हैं।"

"दूसरे कौन ?"

"जैसे मैं।"

"तो राजा कौन ?"

"महाराज।"

"तब दे राजकोष मुझे।"

"नहीं, राजकोष राज्यकार्य में व्यय होगा।"

"मैं तुझे पदभ्रष्ट करता हूँ।"

"मैं अस्वीकार करता हूँ।"

"तेरा इतना साहस ?"

"बिना साहस के तो महाराज, राजकाज होना नहीं।"

राजा के मुँह से क्रोध के मारे झाग निकलने लगी। उन्होंने एक खवास की ओर देखकर कहा—"पकड़ इस हरामखोर को।"

हरामखोर की गाली राजा के मुँह लगी थी। गाली सुनकर विमलदेवशाह का मुँह लाल हो गया। उन्होंने तलवार सूंत ली। इसी समय खवास राजाज्ञा पालन करने को आगे बढ़ा। विमलदेव ने झट से उसका सिर काट लिया।

राजा के सामने खून की नदी बह निकली,लाश तड़पने लगी। राजा का क्रोध हवा हो गया, वह भय से थर-थर कांपने लगा। खवास, चाकर, जो हजूरिए सब भाग खड़े हुए।

विमलदेवशाह आगे बढ़कर कहा—"महाराज, उचित तो यह है कि आप की जिस जबान पर गाली चढ़ी है, वह जबान अभी काट ली जाय। पर इस बार माफ़ करता हूँ। विमलदेवशाह गुजरात का राजस्व-सचिव है, उसके साथ गुर्जरेश्वर को प्रतिष्ठा का व्यवहार करना चाहिए।'

राजा की वाणी जड़ हो गई। उसने मर्राये स्वर में कहा—"तो विमल, तू अपने राजा को मार डाल या दम्म दे।

"और दम्म तो दूँगा नहीं। जितना देना था दे चुका हूँ।"

राजा को रुपयों की बडी आवश्यकता थी। उसने बहुत-सा मूल्यवान् पत्थर खरीदा था। कुछ मालव की गणिकाएँ आई थी। उन्हे धन देना था। और भी खर्च थे। जितना रुपया आता था वह तुरन्त ही उड जाता था। महाराज हिसाब-किताब रखते नही थे। हाथ उनका खुला हुआ था। उन्हें हर समय ही धन की आवश्यकता रहती थी। राजा ने आंखो में आंसू भरकर कहा—"तो तू मुझे मार डाल विमल।"

"यह काम मैं तो नही करूँगा पर महाराज इसका भी प्रबन्ध हो चुका है। सम्भवत आज ही आपकी यह इच्छा भी पूरी हो जायगी। अब जाता हूँ।" यह कहकर रक्त से भरी तलवार हाथ में ले विमलदेवशाह लौट चले।

राजा ने रोककर कहा—"अरे ठहर विमल, यह क्या बात कही तूने? इसका क्या मतलब है?"

अब धीरे-धीरे दामोदर महता ने आकर राजा को प्रणाम किया। उसने कहा—"यह बात मुझ से पूछिए महाराज।"

"क्या तू भी इस षड्यन्त्र में है महता। और तुम सब लोग राजवध किया चाहते हो?"

"महाराज!" दामोदर ने कहा—"राजवध कौन किया चाहते है, और कौन महाराज की रक्षा करते हैं, महाराज को इस पर विचार करने की फुर्सत ही नहीं है।"

"फुर्सत क्यो नही है, पर तुम लोग सब मनमानी करते हो—मुझे कुछ बताओ, तभी न।"

"तो महाराज, यह यशस्वी महाराज मूलराजदेव की अकलक गद्दी है। और महाराज राजराजेश्वर चामुण्डराय उनसे न्याय-विधान में पीछे नही है, मैं एक अभियोग उपस्थित करता हूँ—महाराज इस पर विचार करें।"

"और विमल?"

"विमलदेवशाह साक्षी रहें।"

"अच्छी बात है, अभियोग उपस्थित कर।"

"परन्तु महाराज, एक वचन दीजिए, अभियोग चाहे जिस पुरुष के विरुद्ध

हो, और वह पुरुष चाहे कितना ही प्रभावशाली और महाराज का प्रिय हो—आपको न्याय करना होगा।"

"पर अभियोग क्या है ?"

"महाराज की हत्या का, और गुजरात के राजतन्त्र को उलटने का।"

"तो मैं वचन देता हूँ। अभियोग किसके विरुद्ध है ? अपराधियों को उपस्थित कर।"

दामोदर ने संकेत किया। बालुकाराय सेनापति रस्सियों से बँधे यति जैनदत्त सूरि को लेकर उपस्थित हुए। राजा आश्चर्य-चकित हो दामोदर की ओर देखने लगा। दामोदर ने कहा—"महाराज, मैं बालुकाराय से कुछ प्रश्न करता हूँ, वह सुनिए, परन्तु ठहरिए।" उसने फिर संकेत किया। इतने में देवसेन बालचन्द्र और महाराज की प्रिय ताम्बूलवाहिनी चम्पकबाला को लेकर आ उपस्थित हुआ। दोनों के हाथ रस्सियों से बँधे थे।

अब दामोदर ने बालुकाराय से पूछा—

"बालुकाराय, तुमने इस यति को कहाँ पकड़ा ?"

"नान्दोल के राजमार्ग पर।"

"यह कहाँ जा रहा था ?"

"नान्दोल।"

"तुमने इसे किसकी आज्ञा से पकड़ा ?"

"दामो महता के आदेश पर।"

"इसके पास तुमने क्या पाया ?"

"एक पत्र और एक मुद्रा।"

"ये दोनों वस्तु महाराज के सम्मुख उपस्थित करो।"

सेनापति ने दोनों वस्तु महाराज के आगे धर दीं। महाराज महारानी दुर्लभ-देवी के हस्ताक्षर और मुद्रा देखकर अचरज में डूब गये।

अब उन्होंने देवसेन से पूछा—

"देवसेन, इन दोनों को तुमने कहाँ पकड़ा ?"

"सरस्वती-तट पर नगर-द्वार के बाहर।"

"किस समय ?"

"तीन प्रहर रात्रि जाने पर।"

"किसकी आज्ञा से ?"

"आपकी।"

"इनके साथ कौन-कौन था ?"

"महारानी दुर्लभदेवी, यह यति और कुमार दुर्लभदेव का सामन्त।"

"अच्छा, अब यति जी महाराज, आप कह सकते हैं कि आप उस अर्द्धरात्रि में महारानी और इन सब के साथ क्या षड्यन्त्र कर रहे थे ?"

"नहीं, मैं इनको जानता भी नहीं। मुझे नान्दोल जाते हुए पकड़ा गया है।"

"और यह मुद्रा तथा पत्रिका ?"

"मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता।"

"अच्छी बात है। चम्पकबाला, तुम कुछ बता सकती हो ?"

"मैं कुछ नहीं जानती।"

"और तुम बालचन्द्र ?"

"मैं महाराज का निर्दोष सेवक हूँ।"

दामोदर ने देवसेन से कहा—

"देवसेन, इनके वस्त्रों की तलाशी तो लो।"

तलाशी में बालचन्द्र के पास से महारानी का कंगन, स्वर्णदम्म और चम्पकबाला के पास से मोती की माला मिली। खवास के पास विष की पुड़िया भी मिली। तीनों वस्तु महाराज के सामने रख दी गईं। राजा उन वस्तुओं को पहचान कर काठ हो गये।

दामोदर ने कहा—"तुम बता सकते हो—ये वस्तु तुम्हारे पास कहाँ से आई ?"

"नहीं बता सकते, हम कुछ नहीं जानते।"

दामोदर ने संकेत किया। देवसेन दो सैनिकों को भीतर ले आया। दामोदर ने उनसे कहा—"इस स्त्री को नंगा करके कोड़े लगाओ।"

सिपाही आगे बढे, यह देख चम्पकबाला रोती हुई बोली—"नही, नहो, मैं सब साफ़-साफ़ कह देती हूँ।"

इसके बाद उसने सारे षड्यन्त्र का भण्डाफोड कर दिया। बालचन्द्र खवास भी अपराध स्वीकार कर राजा के चरणों में आ गिरा। केवल यति ने कुटिल हास्य करके कहा—"झूठ, सब झूठ।"

अब बालुकाराय ने उस सावत को भी लाकर उपस्थित किया—पर उसने सब अस्वीकार किया।

परन्तु अभियोग प्रमाणित करने भर को सब सामग्री जुट गई थी। दामोदर ने कहा—"महाराज, आपकी आज्ञा के बिना हमने महारानी और राजमन्त्री वीकणशाह को बन्दी नही किया था। सो आप इन दोनो को बन्दी करने की आज्ञा दीजिए।"

महाराज चामुण्डराय शोक, क्रोध और सताप से सिर पकडकर बैठे रह गये। दामोदर ने कहा—"महाराज ने न्याय का वचन दिया है। आज्ञा दीजिए।"

राजा ने दोनो को लाने की आज्ञा दी। महारानी क्रोध से लाल मुँह किये सिहनी की भाँति आ खडी हुई।

दामोदर ने कहा—"महारानी—बा, मैं आपसे कुछ प्रश्न करूँगा।"

"गुजरात की रानी अपने चाकरो को जवाब देने को बाध्य नही है।"

"परन्तु मैं महाराज की ओर से पूछता हूँ।"

"महाराज अभी जीवित है—उनमें बोलने की शक्ति है, वे ही क्यो नही पूछते।"

"राजा ने कहा—"महारानी, महता की बात का जवाब दो।"

"मै कोई जवाब नही दूंगी। मैं किसी के प्रति जवाबदेह नही हूँ।"

"आपने राजविद्रोह किया है रानी-बा।"

"रानी स्वयं ही राजा की अर्धागिनी है, उसके प्रति राजविद्रोह का अपराध लगाने का अभिप्राय है—उसका अपने ही प्रति विद्रोही होना—सो यह असत्य है।"

"आपने महाराज को मारने का षड्यन्त्र किया था ?"

"राजा कभी मरता नहीं है, राजा चिरजीवी है !"

"परन्तु मैं महाराज चामुण्डराय के सम्बन्ध में कहता हूँ।"

"राजा वही है जो सत्ता का स्वामी है, जिसे राजत्व का ज्ञान है, मर्यादा-पालन की शक्ति है। जिसमें वह नहीं है, वह राजा ही नहीं। उसके प्रति विद्रोह का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"आपने महाराज चामुण्डराय की हत्या करके कुमार दुर्लभदेव को राजा बनाने की योजना स्थिर की थी ?"

"रानी राज्य की उन्नति और स्थिरता के लिए जो ठीक समझे, कर सकती है।"

"तो आप स्वीकार करती हैं।"

"मैं कुछ स्वीकार नहीं करती।"

वीकणशाह ने सब बातें विस्तार से बयान करके कहा—"मैं तो भेद लेने को षड्यन्त्र में सम्मिलित हुआ था। मैं महाराज का चिरकिंकर हूँ।"

महाराज ने सब बन्दियों को अभी बन्दीगृह में ले जाने तथा महारानी को राजमहल में नज़रबन्द करने की आज्ञा दी।

उसके बाद "ओफ, आफत टली" कहकर वे मसनद पर लुढ़क गये।

दामोदर ने कहा—"अभी आफत नहीं टली महाराज, आफ़त सिर पर आ रही है।"

महाराज फिर घबराकर बैठ गये, उन्होंने कहा—"अब क्या ?" दामोदर के संकेत से सामन्तसिंह चौहान ने आगे बढ़कर राजा को प्रणाम किया।

राजा ने पूछा—"यह कौन ?"

महता ने कहा—"महाराज, यह सामन्तसिंह चौहान है—घोघाबापा का पुत्र। आज आठ दिन से महाराज के दर्शन को भटक रहा है।"

महाराज के मुख पर वात्सल्य की प्रसन्नमुद्रा छा गई, उन्होंने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"आ-आ पुत्र, आहा घोघाबापा, बहुत दिन से देखा नहीं। तू आठ दिन से·········ये हरामखोर···" राजा ने भयभीत नेत्रों से विमलदेवशाह की

ओर देखा। अभी भी उसके हाथ में वही रक्तसनी तलवार थी, और वह आद्योपान्त सब नाटक चुपचाप देख रहा था।

दामोदर ने कहा—"महाराज, विपत्ति सिर पर है।"

"कैसी विपत्ति भाई, विपत्ति···विपत्ति ··विपत्ति का क्या कोई आदि अन्त भी है?"

"महाराज, चौहान आपके पास घोघाबापा का संदेश लाये हैं।"

"क्या सन्देश है पुत्र?"

"महाराज, गजनी का दैत्य नगर-गाँव जलाता-लूटता—सब स्त्री-पुरुषों को तलवार के घाट उतारता गुजरात की ओर धँसा चला आ रहा है।"

"गुजरात की ओर?"

महाराज ने वालुकाराय की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

वालुकाराय ने महता की ओर देखा। महता ने कहा—"महाराज, पहले घोघाबापा का संदेश पूरा सुन लें।"

राजा ने फिर सामन्त की ओर देखा। सामन्तसिंह ने कहा—"महाराज, उसने मुलतान को आक्रान्त किया है, और बापा से उसने राह मांगी है।"

"राह?"

"मरुस्थल की राह, वह मरुस्थली पार कर सपादलक्ष को जाना चाहता है।"

"घोघाबापा क्या उसे राह देंगे?"

उन्होंने उसके हीरों-भरे थाल में लात मारकर कहा है—"यह लात ही मेरा उत्तर है।"

राजा सब बातें भूलकर बालक की भाँति हो-हो करके हँस पड़े। उन्होंने कहा—"यह है घोघाबापा, मैं क्या उन्हें जानता नहीं हूँ।"

"परन्तु महाराज, मुलतान के महाराज अजयपाल और लोहकोट के भीमपाल ने भय और लालच में फँसकर उसे राह दे दी है। बापा ने कहा है—जब तक मरुस्थली के मुख पर मेरी चौकी है, मरुस्थली में एक पक्षी भी पर नहीं मार सकता। परन्तु फिर भी महाराज सावधान रहें। इसी से मुझे भेजा है।"

"तो अच्छा किया।" फिर बालुकाराय की ओर देखकर कहा—"बालुक, बेटा, इस अमीर को मार भगा। देख, यह गुजरात की भूमि पर पैर न रखने पाये।"

बालुका चुपचाप खड़ा रहा। दामोदर ने कहा—"महाराज! यह सब तो समय पर होता रहेगा। पर अभी आप विमलदेवशाह को महामन्त्री के पद पर नियुक्त कीजिए।"

महाराज ने भयभीत नेत्रों से विमल की ओर देखा। फिर कहा—"ठीक है विमल, तू इन सब हरामखो नहीं नहीं, यह बात नहीं, सब टटेखोरों को ठीक कर।" फिर सामन्त की ओर देखकर प्रसन्नमुद्रा से कहा—"आ पूत, आ। अरे महता, देख, यह सामन्त अभी जाय नहीं।" और वे फिर मसनद पर लुढ़क गये।

महता ने हाथ ऊँचा करके कहा—"महामन्त्री विमलदेवशाह की जय।" सब कण्ठों ने मिलकर जयघोष में योग दिया।

२८ : धर्मगजदेव

साम्हर और अजमेर का संयुक्त इलाका उन दिनों सपादलक्ष कहाता था। साम्हर पुरानी राजधानी थी, अजमेर की नई बस्ती बसी थी, और चौहान राजाओं ने इस स्थान को युद्धोपयोगी जान चारों ओर सुदृढ़ गढ़ पहाड़ियों पर बना अजमेर ही को अपनी मुख्य राजधानी बनाया था।

उन दिनों अजमेर पर चौहान राजा धर्मगजदेव का अबाध शासन था। धर्मगजदेव बड़े वीर, साहसी और योद्धा पुरुष थे। अजमेर, अरावली की उपत्यका में, राजस्थान का मुख था। यह नगर चारों ओर से दुर्गम पर्वत-श्रेणियों से घिरा हुआ अति सुरक्षित था। धर्मगजदेव को विदित था कि मारवाड़ की मरुस्थली को पार करके जो आततायी आक्रान्ता राजस्थान में प्रवेश करना चाहे, उसे अजमेर ही के मार्ग से आना पड़ेगा। इससे वह अपने को राजस्थान का दिक्पाल समझकर सदैव चौकन्ना रहता था।

धर्मगजदेव ने जब सुना कि गजनी का अमीर बर्बर तुर्कों के दलबादल ले मारवाड़ की मरुस्थली को पार करके ताबड़तोड़ अजमेर की ओर घुसा चला आ रहा है, तो उसने अविलम्ब उसके सम्मुख होने की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। अमीर से मुठभेड़ का उसका यह पहला ही अवसर न था, इससे पहले भी वह दो बार उससे टक्कर ले चुका था। वह जैसा रणशूर था वैसा ही राजनीति-पटु भी था। उसने सब कोष, खज़ाना, मालमत्ता "बीटली" के किले में भेज दिया। काफी दिनों तक चल सकने योग्य रसद अजमेर के किले में एकत्र कर ली। गाँव-गाँव ढिंढोरा पिटवाकर लोगों को सावधान और सुसज्जित रहने का आदेश दे दिया। जिन नगर-

गाँवों पर खतरा था उन्हें खाली कर दिया। राह-बाट के कुएँ, तालाब, बाँध सब तोड़ डाले। फसलें जला दीं। वृक्ष काट डाले। सड़कें, पुल, मार्ग सब तोड़ डाले। घाटियों को बन्द कर दिया। इस अल्पकाल में जितना सम्भव था तैयार होकर उसने अजमेर से बाहर आकर पड़ाव डाला। धर्मगजदेव के आह्वान पर ग्रामीण कृषक हल-बैल छोड़ धनुषबाण और ढाल-तलवार हाथों में ले इस आततायी से लड़ने को आ जुटे। आस-पास के ठिकानेदार, जमींदार और सगेसम्बन्धी राजा लोग भी उसकी सहायता को आ पहुँचे। चारों ओर से चौकी-पहरे का प्रबन्ध कर धर्मगजदेव ने अपनी सेना का निरीक्षण किया। उसके विभाजन किये और फिर वे अनुभवी दूतों को अमीर की खोज-खबर लेने भेजकर सावधान हो अमीर की अवाई की प्रतीक्षा करने लगे।

महमूद ताबड़तोड़ मंज़िल-दर-मंज़िल कूच करता हुआ—मरुस्थलों की थकान उतारने की परवा न कर अजमेर की सीमा में आ घुसा। उसने पुष्कर के उस पार अपनी छावनी डाली। धर्मगजदेव यह समाचार पाते ही पुष्कर की ओर बढ़ा। उसने पुष्कर का पवित्र जलाशय अपने अधिकार में कर लिया। और सेना को युद्ध के लिए सन्नद्ध कर छावनी डाल, अमीर की गतिविधि का निरीक्षण करने लगा।

अमीर महमूद चौहानराज धर्मगजदेव के पराक्रम से बेखबर न था। वह उससे युद्ध का खतरा उठाना नहीं चाहता था। अत उसने मैत्री-सन्देश देकर मुलतान के अजयपाल, सेवन्दराय, सालार मसऊद और तिलक हज्जाम को दूत बनाकर अजमेरपति के पास भेजा। साथ में बहुत-सी बहुमूल्य भेंट भी भेजी।

सुलतान के दूतों का यथोचित सत्कार करके धर्मगजदेव ने उनके आने का कारण पूछा। इस पर सालार मसऊद ने सुलतान का खरीता महाराज की सेवा में पेश किया। महाराज की आज्ञा से खरीता भरी सभा में पढ़ा गया। उसमें लिखा था—

"अजमेर के महाराज, आपकी वीरता और दरियादिली का हमने बहुत बखान सुना है। हम, गजनी के यशस्वी सुलतान आपकी दोस्ती के लिए हाथ पसारते हैं। हमारी राह रोकने को अपना लश्कर लेकर आने का आपका क्या

मतलब है? हमारा इरादा आपके मुल्क पर हमला करने का नहीं है। खुदा के हुक्म से कुफ्र तोड़ने थोड़े से जाँनिसार साथियों के साथ हम गुजरात की ओर जा रहे हैं। आप हमारी राह छोड़कर दोस्ती का सबूत दीजिए। हमारा नाम महमूद है, हमारी तलवार और गुस्सा दुश्मनों का काल है। हमारे दुश्मनों को मौत और [illegible]ग तथा गुलामी के आँसू नसीब होते हैं। उम्मीद है आप दुश्मनी का नहीं, दोस्ती का हमें सबूत देंगे। सलाम।"

महाराज ने धैर्य से पत्र सुना और मर्मभेदिनी दृष्टि अपने सामन्तों पर डाली। फिर उसने सुलतान के दूतों को देखा। उनकी दृष्टि मुलतान के राजा अजयपाल पर ठहर गई। अजयपाल ने आगे बढ़कर विनम्र वाणी से कहा—"महाराज, राजनीति कहती है कि अयाचित आपत्ति को निमन्त्रण नहीं देना चाहिए। सो आप आगे-पीछे की सब बातें सोच-विचारकर अमीर से मैत्री का व्यवहार कीजिए। इसी में भलाई है।"

महाराज ने उसे घूरकर देखा। वे जानते थे कि उनका यह सम्बन्धी वीर और बुद्धिमान् है। उसकी आँखें चमकदार, नाक उभरी और दाढ़ी अधपकी थी। कुछ देर उसे वह घूरते रहे फिर धीरे से गम्भीर स्वर से बोले—

"महाराज अजयपाल, आपने बिना ही लड़े मुलतान अमीर को सौंप दिया?"

"महाराज, हमारा बल नगण्य था, हम युद्ध नहीं कर सकते थे, आप ही सोचिए, नष्ट होने के लिए आत्मघाती युद्ध करने से क्या लाभ?"

"इसीसे आपने सुलतान को आत्मसमर्पण कर दिया।"

"हाँ महाराज, और सुलतान ने नागरिकों से थोड़ा दण्ड लेकर उन्हें छोड़ दिया। नगर को कोई हानि नहीं पहुँचाई। न नगर ही लूटा गया।"

"दण्ड किस अपराध का?"

अजयपाल की वाणी लड़खड़ाई। उसने कहा—"अपराध का नहीं महाराज, नगर न लूटने का वचन देकर।"

"और सुलतान से इस सहयोग करने के कारण आप ही मुलतान के राजा कायम रहे।"

"हाँ महाराज, यशस्वी सुलतान ने मुझे मुलतान का अधीश्वर स्वीकार कर

लिया है।"

"इसी से कृतकृत्य होकर अब आप सुलतान की मुसाहिबी कर रहे हैं। औरों को भी अपनी भांति सुलतान का कृपापात्र बनाया चाहते हैं—विशेषकर अपने सम्बन्धियों को।"

"यही बात है महाराज, लाभ हानि······।"

"वह मैं समझ गया। हानि की जोखिम आप उठाना नहीं चाहते, केवल लाभ-ही-लाभ। भीमपाल को भी आपने यही लाभ की राह दिखाई है, और अब मुझे भी यही परामर्श देने आये हैं।"

महाराज धर्मगजदेव क्षण भर मौन रहे—फिर उन्होंने सेवन्दराय की ओर देखकर कहा—

"आप भी शायद राजपूत हैं।"

"हाँ महाराज, आपकी इच्छा हो तो अमीर आपको यथेष्ट हरजाना···।"

"बस-बस, इतना ही यथेष्ट है। तो, सज्जनो, मेरा यह उत्तर है कि यशस्वी गजनी के सुलतान का हमने कुछ बिगाड़ा नहीं है। इसलिए किसी भी हालत में हम सुलतान के शत्रु नहीं हैं। परन्तु वह बुरी नियत से हिन्दुओं के धर्ममन्दिर सोमनाथ को भंग करने, राह में खून-खराबा और लूटपाट करता और गाँवों-नगरों को जलाकर खाक करता आ रहा है, यह जबर्दस्ती दूसरों के धर्म और अधिकारों की अवज्ञा है। दूसरों के घरों पर डाका डालना है। इसे न बहादुरी कहा जा सकता है, न इससे सुलतान की नेकनामी बढ़ती है। इसके विरुद्ध सुलतान ऐसे कामों से लालची, अत्याचारी, लुटेरा, खूनी और आततायी प्रसिद्ध हो रहा है। यशस्वी सुलतान ने कई बार भारत को तलवार और आग की भेंट किया है। हर बार उसने हिन्दू-मन्दिरों को तोड़ा, हिन्दू स्त्रियों की लाज लूटी और हिन्दू लोगों को गुलाम बनाया है। इन लोगों ने सुलतान का कभी कुछ नहीं बिगाड़ा था। वे उसके देश से दूर—अपने देश में—अपने धर्म और विश्वास से रहते हैं। उन्होंने सुलतान के देश पर हमले नहीं किये, उसके देश को लूटा नहीं। फिर उसके देश में आकर जबर्दस्ती उनके धर्म, जीवन और घर-बार को इस तरह निर्दयता से नष्ट करना, यशस्वी सुलतान के लिए न्याय की बात नहीं है, शोभ-

नीय भी नहीं है। इसलिए सुलतान यदि सचमुच इस सेवक के सम्मुख मित्रता का हाथ आगे बढाते हैं तो मैं मित्र की हैसियत से कहूँगा कि सुलतान अपने देश को लौट जायें और दूसरों के देश और दूसरों के धर्म में तलवार के जोर से बाधा न डालें। यदि सुलतान इस राजपूत मित्र की यह नेक सलाह नहीं मानेंगे, तो सुलतान को जीते-जी अपने राज्य में होकर आगे बढ़ने से रोकना मेरा वैसा ही पवित्र धर्म और कर्तव्य हो जाता है, जैसा सुलतान का ऐसे खूनी आक्रमण करना।"

"हम राजपूत लोग मित्रों का अतिथि-सत्कार करने में तुलना नहीं रखते। यदि सुलतान मित्र हैं तो वे हमारे धर्म और देश के प्रत्येक आदमी के साथ वैसा ही बर्ताव करें, जैसा अपने धर्म और देश के आदमियों के साथ करते हैं। तब सुलतान का अजमेर में स्वागत है। धर्मगजदेव उनका अतिथि-सत्कार करने में सर्वस्व न्यौछावर करेगा। परन्तु यदि सुलतान हमारे धर्म, और हमारे देश के आदमियों को तलवार और मौत के घाट उतारने पर ही तुले हुए हैं, तो यह चौहान धर्मगजदेव रणस्थली में तलवार से उनका सत्कार करने को यहाँ सन्नद्ध है।"

सपादलक्ष के अधिपति महाराज धर्मगजदेव ने जलद गम्भीर वाणी से ये वचन कहे। फिर मुलतान के महाराज अजयपाल की ओर मुँह करके कहा—

"महाराज अजयपाल, आप हमारे सम्बन्धी हैं, चौहान हैं। हमारा आपका खून एक है। परन्तु आप जो सन्देश लेकर आये हैं उसके कारण इस खून की एकता के नाम पर मैं आपकी ओर से लज्जित हूँ। महाराज, आप सिन्ध नद के दिक्पाल हैं। सो आपने अपना कर्तव्य-पालन न कर प्राण बचाने का श्रेय लाभ किया। यह आपने क्षत्रियों की नवीन मर्यादा स्थापित की। आपने इस युक्ति से मुलतान बचा लिया, और अब रहा सहा पुण्य लाभ करने सुलतान की दासता करके उसका दूतत्व करते हुए उसे देव-स्थान नष्ट करने पट्टन ले जा रहे हैं। आप ही ने लोहकोट के महाराज को मार्ग देने को राजी किया था। यह आपकी कीर्ति मैं सुन चुका हूँ। महाराज, आपकी इस कीर्ति का स्वर्ग में बखान करने आपके दादा घोघावापा स्वर्ग पहुँच चुके हैं। जिन्होंने आपको बचपन में घुटना पर खिलाया था। महाराज अजयपाल, आपने चौहानों को अच्छा मार्ग

दिखाया—आप जैसे शूरवीर तलवार के धनी तो शत्रु के गोइन्दे बनें, और आपके वृद्ध पूज्य पुरुष रणस्थली में मृत्यु के भोग बनें ? आप सपादलक्ष के उपकार के ही विचार से आये थे, अन्तत यह राज्य भी तो आपही का है। परन्तु महाराज, मैं अभागा आपकी इस भली सीख से लाभ न उठा सका। अब आप सुलतान के सेनापति को हमारा वक्तव्य समझा दीजिए जिससे वह सुलतान को ये सब बातें ठीक-ठीक बता सके।"

"और अब, महाराज अजयपाल, आप जा सकते हैं। आपसे, सम्बन्धी की भाँति मुजरा भेंट करने का यह अवसर नहीं है। आपका समय बहुमूल्य है और शेष कुछ कहने-सुनने योग्य बात भी नहीं है।"

महाराज धर्मगजदेव का यह उत्तर सुनकर मुलतान के अधिपति का मुंह ठीकरे के समान निष्प्रभ हो गया। उन्होंने नेत्र नीचे कर लिये। शेष दोनों दूतों के मुंह भी भरे-बादलों के समान गम्भीर हो गये और वे नीचा सिर किये वहाँ से चल दिए।

२९ : चौहान की रण-सज्जा

महाराज धर्मगजदेव ने अब बिना एक क्षण विलम्ब किये तुरन्त युद्ध-समिति की एक संक्षिप्त बैठक की। समिति में साम्हर के ढुंढिराज, आमेर के दुर्लभदेव, बदनेर और देवगढ के ठाकुर सरदार और सोजत-पाली के इलाकेदार मण्डलेश्वर सम्मिलित हुए।

सपादलक्ष के महाराज की कमान में इस समय सब मिलाकर साठ हजार की सेना एकत्रित हो गई थी जिसमें तीस हजार सवार, आठ हजार धनुर्धर भील, एक हजार हाथी और शेष पैदल सेना थी।

अजमेर से आगे गुजरात के मार्ग पर अरावली की पर्वत-श्रेणियां प्रारम्भ हो जाती हैं, और ज्यों-ज्यों आगे बढते जाते हैं दुर्गम वन-पथ आता जाता है। नान्दोल से आगे विकट वन है, और उसके बाद दूर तक एक तंग घाटी में से होकर मार्ग जाता है। उस घाटी के उस पार फिर खुले-चौड़े हरे-भरे मैदान और फिर आबू के मनोरम दृश्य नजर आते हैं।

महाराज धर्मगजदेव ने आमेर के राजा दुर्लभदेव की बडाई करके कहा—'हे वीर! मैं तुम्हें सबसे पहले सबसे कठिन काम सौंपता हूं। गजनी के इस राक्षस को मैं भली-भांति जानता हूं। इसने सोलह बार भारत को आक्रांत किया है। मुझसे जहां तक बनेगा मैं इसे रोकूंगा पर मुझे आगे का भी विचार करना चाहिए। सो तुम अपनी मीना और राजपूतों की सम्पूर्ण सेना और आठ हजार भीलों को लेकर सीधे नान्दोल जाओ। वहां मेरा भतीजा अनहिल्लराज है, वह गुजरात के सोलंकियों का भी सम्बन्धी है, वह तुम्हारी सहायता करेगा। सो तुम सब, यदि यह दैत्य, कदाचित् यहां से बचकर निकल जाय तो व्यर्थ युद्ध करके अपनी शक्ति नष्ट

न करना। प्रत्युत उसे नान्दोल के बन में घेर कर घाटी में ले जाना। वहाँ तुम्हारे भील, मीना और राजपूत इससे निपट लेंगे। चाहे जितना सैन्य-बल होने पर वहाँ से इसका निस्तार नहीं है।"

इतना कह, उसने युवक दुर्लभराय की कमर में अपनी जड़ाऊ तलवार बाँधी, और उसे विदा किया। देवगढ, सोजन और बदनर के सरदारों को ऊँच-नीच, समझाकर उसके साथ ही आदरपूर्वक रवाना कर दिया।

यह कर्मठ राजा सारी रात व्यस्त रहा। उसने अपनी कुल सेना के तीन भाग कर डाले। आठ हजार सवार और दस हजार पैदल सेना तथा चार सौ हाथी साम्हर के महाराज ढुंढिराज की कमान में सौंप, पुष्कर से पीछे हटाकर अमीर के वाम भाग में छिपा दिया। आठ हजार सवार और पन्द्रह हजार पैदल मन्त्री-पुत्र सोढल की कमान में अजमेर की रक्षा में छोड़े। शेष हाथी, घोड़े और पैदल सेना ले वह स्वयं अमीर का सामना करने को व्यूहबद्ध खड़ा हुआ। व्यूह में सम्मुख पादातिक, पक्षों में अश्वारोही और पृष्ठ भाग में गज-सैन्य को स्थित किया। सरदार और सेनानायक अपनी अपनी टोली के सम्मुख सन्नद्ध खड़े हो गये। भाट, चारण विरद बखानने लगे। कूच का नक्कारा बजा, धौंसे पर चोट पड़ी। सेना ने रणांगण को प्रयाण किया।

सेवक जन धर्मगजदेव तथा अन्य मण्डलेश्वरों की प्रशस्ति गाते चले। सेना में उत्साह और विजय-नाद की हिलोरें उठने लगी। सैनिकों के रक्त में उत्तेजना भरने वाले मारू बाजे बजने लगे। सेना की कूच से पृथ्वी की धूल आकाश में उड़कर छा गई, कब सूर्योदय हुआ—इसका भी भान न रहा।

अमीर ने अपने दूतों के मुँह से जब धर्मगजदेव का संदेश सुना तो वह गम्भीर हो गया। उसने तुरन्त युद्ध करने का निश्चय कर सेनापतियों सहित अथक श्रम कर रातोरात सेना को व्यूहबद्ध किया। अमीर यद्यपि मरुस्थली को पार करके आया था, तदपि उसकी सेना थकी हुई और कुछ अव्यवस्थित भी थी। परन्तु तुरन्त युद्ध के सिवा दूसरा चारा न था। रात्रि के पिछले प्रहर अमीर एक चपल अश्व पर सवार हो अपने सरदारों सहित एक ऊँचे टीले पर चढ़कर हिन्दुओं की सेना की गतिविधि देखने लगा। उसने देखा—मशालों की रोशनी में राजपूत सेना व्यूहबद्ध

रणसज्जा से सज रणांगण में अग्रसर हो रही है। धौंसे की धमक से अमीर का दिल दहल गया। उसने तीर की भाँति अश्व फेंका और तत्काल अपनी सेना को व्यवस्थित रूप से युद्धस्थली की ओर कूच करने का आदेश दिया। जहाद के जनून से उन्मत्त बर्बर पठान और तुर्कों के दलबादल 'अल्लाहो अकबर' का नाद करते आगे बढ़ चले।

३० : पुष्कर का युद्ध

चौहान और अमीर के लश्कर ज्यों ही एक दूसरे की दृष्टि-मर्यादा में पहुँचे, त्यों ही दोनों ओर वाणों की वर्षा प्रारम्भ हो गई। अभी ठीक-ठीक सूर्योदय नहीं हुआ था। वाण-वर्षा प्रारम्भ होते ही दोनों सेनाओं का आगे बढ़ना रुक गया। महाराज धर्मगजदेव ने यत्न और चातुरी से सब सम्भव टीलों और ऊँचे स्थानों पर अपनी सेना को दूर तक फैला दिया। अमीर भी योजना से असावधान न था। उसने सैनिकों को वृक्षों, टीलों और झाड़ की जगहों में टुकड़ियों में बिखेर कर झाड़ लेकर तीर मारने का आदेश दिया।

देखते ही-देखते दोनों ओर के सिपाही घायल हो होकर चीत्कार करने लगे। राजपूत आगे बढ़कर हाथों-हाथ तलवार का युद्ध करने के इच्छुक थे। परन्तु अमीर के कौशल से ऐसा वे न कर सके। वह समूचा दिन इसी प्रकार व्यतीत हुआ। सन्ध्याकाल होने पर अमीर ने युद्ध बन्द करने का संकेत किया। और दोनों ओर की सैन्य अपने-अपने शिविर को फिरी। महाराज धर्मगजदेव ने पीठ नहीं खोली, सेना का निरीक्षण किया। घायल योद्धाओं को अजमेर भिजवा दिया तथा सैन्य का फिर से वर्गीकरण कर दूसरे दिन के युद्ध की योजनाएँ बनाईं। दूरस्थ सैन्य को सन्देश देकर साडनियाँ रवाना की गईं।

दूसरे दिन सूर्योदय से प्रथम ही राजपूतों को सावधान होने का अवसर न दे अमीर ने अपने दुर्धर्ष घुड़सवारों को ले अकस्मात् धावा बोल दिया। इस कार्य से प्रथम तो राजपूत सैन्य में घबराहट और अव्यवस्था फैली पर तुरन्त ही राजपूत तलवारें ले-लेकर टूट पड़े। और देखते-ही-देखते वे अपने छोटे-छोटे दल बनाकर

अमीर की सेना में घँस पडे । हाथों-हाथ मार-काट होने लगी । रुण्ड-मुण्ड कटकर पृथ्वी पर पडने लगे । मेरो की सेना जो बर्छों के युद्ध में अप्रतिम थी, अपनी नोकीली बर्छियां ले-लेकर यवनो का सहार करने लगी। उनकी बर्छियां शत्रुओ की अँतडियाँ बाहर खीच लाये बिना शरीर से बाहर निकलती ही न थी। उनकी खमदार तलवारो के करारे घाव खा-खाकर शत्रु हा-हाकार कर उठे। अमीर अपनी सेना की यह दुर्दशा देख क्रोध से उन्मत्त हो गया। उसने मेरो के उस बर्छी-युद्ध की कल्पना भी न की थी। यह मेर व्यवस्था और युद्ध-नियम की परवा न कर कालदूत की भाँति अमीर को सेना का उछल-उछल कर सहार कर रहे थे। घोड़ो को भी वे सैनिको के समान ही हलाक करने लगे। अमीर ने क्रोध से पागल हो इन जगली मेरो को इसी दिन आमूल नाश करने की ठान ली। उसने बलूची घुडसवारों को ललकारा। ये बलूची खूंखार चारो ओर से मेरो की टुकडियों को घेरकर बडे-बडे भालो से उन्हे छेदने और अपने सधे हुए घोडो से उन्हें रूँधने लगे। मेरो की सैन्य में त्रास प्रकट हुआ, उनके पास घोड न थे, वे पैदल थे। महाराज धर्मगजदेव ने यह देख प्रबल, पराक्रमी चौहान घुडसवारों को शत्रुओ पर पेल दिया। अब बराबरी का युद्ध था। चौहानी खून जगत्प्रसिद्ध बलूची पठानो से जूझ रहा था। राजपूतों को मनचाहा अवसर मिल रहा था। यह तलवार का हाथों-हाथ युद्ध दोपहर होते-होते ऐसा घातक रूप धारण कर बैठा कि दोनो ओर के सरदारों ने समझा कि कदाचित् आज का युद्ध ही निर्णायक युद्ध हो रहा है। मरे हुए सवारो और घोडों से योद्धाओं के मार्ग रुक गये। अपराह्न होते-होते अमीर की सेना में अव्यवस्था दीखने लगी। बलूची पठान जगह-जगह पीछे हटने लगे। महाराज धर्मगजदेव ने यह देख अपने सुरक्षित अश्वारोहियो को धावा बोल देने की आज्ञा दी। इस नई सेना के धक्के को पठान सहन न कर पीठ दिखा भागने लगे। अमीर ने विपत्ति सम्मुख देख भागते बलूचियों के सम्मुख अपना अश्व दौड़ाया। और हरा झडा ऊँचा करके ललकार कर कहा—"खुदा और इस्लाम के नाम पर मरो और मारो। भागने की गुंजाइश नहीं है। गजनी बहुत दूर है।"

बलूची जैसे-तैसे सगठित होकर एक बार फिर घमासान युद्ध के लिए तत्पर हुए। लाशों पर लाशें गिरने लगी। दोनो ओर की सेनाओ में थकान और क्लान्ति

दौड़ने लगी। अमीर ने सूर्यास्त से प्रथम ही युद्ध बन्द करने का संकेत किया। इस दिन भी बिना किसी निर्णय के दोनों सेनाएँ पीछे फिरीं। परन्तु राजपूत सेना उत्साह में थी, अमीर की सेना घबराहट में। यद्यपि राजपूतों की सेना का भी आज भारी संहार हुआ था परन्तु अमीर की सेना की क्षति भी साधारण न थी। अमीर चिन्तित हुआ।

तीसरे दिन अमीर की इच्छा युद्ध बन्द रखने की थी परन्तु महाराज धर्मगजदेव ने नहीं माना। उन्होंने अमीर की सेना पर आक्रमण कर दिया। अमीर को युद्ध करना पड़ा। युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व महाराज ने अमीर को सन्देश भेजा कि वह चाहे तो उसे सुरक्षित लौटने दिया जा सकता है। अमीर की सारी सेना में निराशा व्याप्त हो गई। उसने उस दिन बीच खेत सारी सेना के साथ प्रातःकालीन नमाज पढ़ी। नमाज के बाद उसने संक्षिप्त भाषण दिया। भाषण में उसने कहा—"बहादुर पठानो, तुमने अब से पहले सोलह बार अपने घोड़ों की टापों से काफिरों के इस मुल्क को रौंदा है। और सदैव तुम अपने सिरों पर फतह का सेहरा बाँधकर और अपने घोड़ों की जीनों को मुहरों और जवाहरात से भर कर, और गुलामों को घोड़ों की जीन से रस्सियों से बाँधकर गजनी लौटे हो। तुम्हारी औरतें इस बार भी तुम्हारे उसी तरह लौटने की इन्तजार कर रही हैं। सो क्या तुम इस बार लड़ाई में हारकर लौटोगे? अपनी तलवार और इस्लाम के नाम पर आओ, फतह हासिल करो। भागने की राह बन्द है। खुदा तुम्हारे साथ है। काफ़िर पामाल है।"

सेना में एक बार 'अल्लाहो अकबर' का जयनाद हुआ। बर्बर तातार और पठान नये आवेश के जनून में भरकर घोड़ों पर सवार हुए।

देखते-ही-देखते घमासान युद्ध होने लगा। यह चौमुखी युद्ध था। कहीं पर तलवारें झनझना रही थीं, कहीं बर्छियां कलेजों के आरपार हो रही थीं। आकाश तीरों से भरा था। दोनों ओर के भट एक दूसरे के खून के प्यासे होकर मारामार कर रहे थे। अमीर विद्युत् वेग से घोड़े पर सवार कभी यहाँ और कभी वहाँ अपनी सेना को उत्साहित करता फिर रहा था। मध्याह्न में अभी देर थी कि अमीर की सेना में चंचलता प्रकट होने लगी। महाराज धर्मगजदेव का दबाव बढ़ता जा

हिन्दू सेना 'हर हर महादेव' करके यवन-सेना में घुस गई। यवन-सेना की टुकड़ियाँ तितर-बितर होने गईं। उनकी व्यवस्था बिगड़ गई। राजपूत और मेर दोनों ने तीर-कमान छोड़, बर्छी, कटार और तलवारें चमकानी प्रारम्भ कर दीं। अन्तत अमीर एक भाला हाथ में लेकर शत्रुओं को ललकारता हुआ आगे बढ़ा। उसके साथ जूझ मरने वाले खूँखार बलोची पठानों का एक जबरदस्त दस्ता था। महाराज धर्मगजदेव ने ज्योंही यह देखा, वे सिंह की भाँति घोड़ा उड़ाते अमीर के सम्मुख जा धमके।

उनके चारों ओर चौहान सरदारों और माण्डलिक राजाओं का दल था। दोनों दलों में मुहूर्त भर के लिए तुमुल संग्राम छिड़ गया। इसी बीच अमीर और दो घाव खा गया। महाराज धर्मगजदेव भी घायल हो गये।

सन्ध्याकाल हो गया पर इस युद्ध का विराम नहीं हुआ। इसी केन्द्र पर दोनों ओर के योद्धा सिमट-सिमटकर एकत्र होने और कट-कटकर गिरने लगे। पश्चिम दिशा लाल हुई। फिर अन्धकार व्याप्त हुआ, पर मारामार चलती ही रही। पठानों का दल घिर गया। अमीर को सरदारों ने फिर समझाया कि पीछे हटें, पर अमीर ने नहीं सुना। वह उन्मत्त हाथी की भाँति लड़ रहा था।

महाराज धर्मगजदेव ने देखा—यही समय है। उन्होंने संकेत किया, और साम्हर के ढुंढिराज अपनी बीस सहस्र नवीन सैन्य लेकर बाज की भाँति अमीर की सेना पर बग़ल से टूट पड़े। यह देख अमीर हताश हो घोड़े पर ही मूर्च्छित हो गया।

उसके सरदारों ने तत्क्षण उसे हाथों-हाथ उठा लिया। भारी मारकाट से निराल तलवारों की छाया में उसे पीछे हटा ले गये। अब निरुपाय उन्होंने सुलह का सफेद झंडा खड़ा कर दिया। युद्ध बन्द हो गया। चुने हुए सरदार अमीर को पालकी में डालकर शिविर में ले भागे। शेष सैनिक और सरदार राजपूतों के बन्दी हुए। महाराज धर्मगजदेव विजय-वैजयन्ती फहराते वापस फिरे।

३१ : कपट-सन्धि

महाराज धर्मगजदेव ने उसी समय कुलदेवी शाकम्भरी के मन्दिर में जाकर बलिपूजा वा अर्चना की। नारियल फोड़ा। सभी सामन्त माडलीक और सरदारों ने महाराज की जय-जयकार की। तदनन्तर घायलों की सेवा और मृत सैनिकों एव बन्दियों की समुचित व्यवस्था करके महाराज ने रात्रि के पिछले पहर शस्त्र खोल-कर विश्राम किया। घावों पर उपचार कराया।

दूसरे दिन पहर दिन चढ़े श्वेत पताका उड़ाते हुए अमीर के सन्धि-दूतों ने महाराज धर्मगजदेव के दरबार में अति विनम्र भाषा में अमीर का सन्धि-प्रस्ताव उपस्थित किया। महाराज ने प्रेम और कृपापूर्वक दूतों का भरी सभा में स्वागत किया। एव सब सरदारों से परामर्श करके कहा—"यदि अमीर स्वेच्छा से भारत-वर्ष छोड़कर स्वदेश लौट जाए और फिर कभी भारत में आने की चेष्टा न करे तो हम बिना किसी बाधा के उसे चला जाने देंगे। सब बन्दियों को भी मुक्त कर देंगे। हमारी अमीर से कोई शत्रुता नहीं है। अतः हम अकारण उससे युद्ध नहीं करना चाहते।"

सन्धि-दूतों ने अमीर की ओर से अत्यन्त कृतज्ञता और प्रसन्नता से यह प्रस्ताव स्वीकार किया और वचन दिया कि यद्यपि अमीर बहुत घायल हैं, चलने-फिरने और यात्रा करने के योग्य नहीं हैं परन्तु हम आज ही यहाँ से कूच कर देंगे।

सन्धि स्थापित हो गई। सन्धि-दूत वापस अमीर की सेवा में लौट गये। दोप-हर दिन व्यतीत होते होते अमीर का लश्कर पीछे हटने लगा। खीमें उखड़ने लगे। ऊँट लदने लगे। सारे लश्कर में लदालदी होने लगी। यह देख सतुष्ट हो महाराज

धर्मगजदेव ने थोड़ी सेना साथ में रख शेष सब सैन्य अजमेर को वापस भेज दी। विजयिनी सेना ने वाजे-गाजे से अजमेर में प्रवेश किया। यद्यपि राजपूतों के बीस हजार सैनिक खेत रहे थे फिर भी विजय के मद में राजपूत सेना अत्यन्त उत्साहित थी। नगरवासियों ने सेना का हर्षनाद से स्वागत किया। नगर सजाया गया, रंगबिरंगी पताकाएं राजमार्ग पर फहराने लगीं। लोग आनन्द-उत्सव मनाने लगे। किले और राजमहलों में गान-वाद्य, रोशनी-दीपावली की व्यवस्था हुई। राजकुल की स्त्रियों ने महारानी को बधाइयाँ दीं। महारानी ने मुक्तहस्त से स्वर्ण रत्न दान कर अपनी उदारता का परिचय दिया। नगर के सभी देवमन्दिरों में जय घण्ट बजने लगे। राजपुरोहित कृपाशंकर आचार्य ने राजमहल में आकर यज्ञानुष्ठान किया। नगरसेठ पानाचन्दशाह ने आकर बधाइयाँ दीं। सम्पूर्ण नगर ने उस दिन दीपावली मनाई।

३२ : विश्वासघात

रात बहुत देर तक सैनिक खान-पान और राग-रंग में मस्त रहे थे। इससे इस समय वे सब पड़े सो रहे थे। एक-दो प्रहरी अपने स्थानों पर सजग हो पहरा दे रहे थे। महाराज धर्मगजदेव पहर रात रहे पुष्कर-तट पर स्नान कर आन्हिक पूजन कर रहे थे। पूजन करते करते उन्हें कुछ असाधारण आहट सुनाई पड़ी, जैसे चुपचाप बहुत से आदमी रेंगते हुए आ रहे हों। अभी चारों दिशाओं में अन्धकार था। उन्होंने पूजा के आसन से बिना उठे ही आँख उठाकर चारों ओर देखा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे बहुत-सी काली काली मूर्तियाँ चारों ओर से उनके निकट चली आ रही हैं। क्षण भर बाद ही उन्हें प्रतीत हुआ कि विश्वासघात हुआ है। वे तत्क्षण ही आसन छोड़ उठ खड़े हुए। इसी समय प्रहरी ने भयसूचक भेरी-नाद किया। और उसके साथ ही 'अल्लाहो अकबर' के गगन-भेदी नाद के साथ अमीर के बलोची पठानों ने सोते-बैठे, उनींदे सभी राजपूतों को काटना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही छावनी में भी आग लगा दी। छावनी धाँय धाँय जलने लगी। महाराज उसी असज्जित अवस्था में पुकार पुकार कर तलवार घुमाते हुए अपनी सेना की व्यवस्था करने लगे। उन्होंने तत्क्षण एक सवार अजमेर को सेना की सहायता के लिए दौड़ा दिया। राजपूत—जो जहाँ जिस अवस्था में थे, उनके हाथ जो शस्त्र लगा—उसी को लेकर वे शत्रुओं से मोर्चा लेने लगे। परन्तु एक तो वे बहुत कम थे, दूसरे किसी के पास शस्त्र था ही नहीं, किसी ने कवच पहना था, कोई नग-धड़ग था। परन्तु थोड़ी ही देर में कुछ सैनिक सज्जित होकर महाराज के चारों ओर आ जुटे। शत्रुओं ने महाराज को ग्रास लिया था, और उन पर हजारों तलवारें छा रही थीं। राजपूत प्राणपण से महाराज तक पहुँचकर उनकी रक्षा करने

का भगीरथ प्रयत्न करने लगे। महाराज धर्मगजदेव नंगे बदन, पीताम्बर धारण किये दोनों हाथों से तलवार चला रहे थे और उनके शरीर से झर-झर रक्त बह रहा था। उनका वीर दर्प देख, शत्रु स्तम्भित रह गये। तलवार से तलवार भिड़ गई। बर्छियाँ अंतड़ियों को चीरने लगीं। महाराज क्षण-क्षण पर अजमेर से सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे। हर क्षण चर सूचना दे रहा था—सेना नहीं आ रही है। इसी समय जंगल में छिपे हुए एक हजार बलोची घुड़सवार बाज की तरह महाराज पर टूट पड़े। महाराज ने मस्तक ऊँचा करके देखा—मृत्यु उनका आलिंगन करने को हाथ पसार रही है। 'जय शाकम्भरी' कहकर वे अन्धाधुन्ध तलवार चलाने लगे। देखते-ही-देखते उनके मुट्ठी भर राजपूत कटने लगे। महाराज की तलवार भी एक पठान की तलवार से टकरा कर दो टूक हो गई। अनेक तीर उनके अंग में अटक रहे थे। उन्होंने निरुपाय इधर-उधर देखा। एक दुर्दान्त पठान ने कमान गले में डालकर उन्हें खींच लिया। साथ ही तलवार का एक भरपूर हाथ उनके मोंडे पर पड़ा। महाराज आकाश से टूटे नक्षत्र की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े। शत्रुओं ने 'अल्लाहो अकबर' का नारा बुलन्द किया। जो राजपूत बचे थे वहीं आ जूझे, वे सब तिल-तिल कटकर खेत रहे।

महाराज धर्मगजदेव के रणस्थली में काम आने का समाचार शीघ्र ही अजमेर पहुँच गया। महाराज के अगरक्षकों ने महाराज का शव मुर्दों के ढेर से निकाल कर बड़े यत्न से किले में पहुँचा दिया। किले और नगर का उल्लास गहरे शोक की घनघोर घटाओं में छिप गया। चारों तरफ रोना-पीटना मच गया। मरे हुए पुत्रों की माताएं छाती कूटने लगीं। विधवा युवतियों के करुण-क्रन्दन से आकाश भर गया, अनगिनत कोमल कलाइयों की सुहाग चूड़ियाँ चटाचट पत्थरों पर टूटने लगीं। पिता अपने पुत्रों के लिए सिर धुनते पागल की भाँति रुदन करने लगे। युवती अबलाएं और अबोध बालक अनाथ होकर सिसकने लगे। लोग हजार-हजार मुख से गजनी के दैत्य को गालियाँ देने और कोसने लगे। लाखों मनुष्यों का धरती-आकाश पर कोई रक्षक न रह गया।

महाराज धर्मगजदेव के शव के किले में पहुँचते ही महारानी तुरन्त सती होने को तैयार हो गईं। उनके साथ महल की अन्य सैकड़ों राज-परिवार की स्त्रियाँ

दासियों और सखियों ने भी चितारोहण कर भस्म होने का निश्चय कर लिया। रानी ने शोक-सन्तप्त वाणी से कहा—"मेरी सखियो, सुख-दुःख का साथी, लाड़-प्यार करने वाला, इस देह का आधार ही जब नहीं रहा, तो फिर जी कर, जीवन की ख्वारी करने से क्या ? जब शरीर से जीव ही चला गया तो निर्जीव शरीर का शृंगार ही क्या ? क्या हम प्रिय पति का वियोग सहकर, विधवा वेष धारण करके जीवित रहेंगी ? क्यों न हम स्वर्ग का अक्षय सुख भोगें, जहाँ हमारे प्राण-प्यारे वीर पति प्रथम ही पहुँच चुके हैं। चलो सखियो, हम वीर पति का सहगमन करें, जितना विलम्ब होता है उतना ही अन्तर पड़ता है। शोक त्यागो, अग्नि-रथ पर बैठकर पतिलोक को चलो।"

रानी ने इतना कह आँसू पोंछ डाले। माथे पर इंगुर का टीका किया। और कुंकुम की आड़ लगाई, कंठ में सुगन्धित फूलों के हार पहने। काले चिकने बालों की लटें मुक्त कर दीं, हाथों में मेंहदी रचा दी। पचरंगी चूनरी शरीर पर धारण की। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही शृंगार किया। आगे-आगे रानी और पीछे अन्य स्त्रियाँ चलीं। पीछे हजारों दास-परिजन रोते हुए चले। 'जय शाकम्भरी, जय अम्बे, जय सती माता' की पुकार ने आकाश को चल-विचलित कर दिया।

चौक में चबूतरे पर विशाल चिता सजी थी। उसमें महाराज का चन्दन-चर्चित शरीर स्थापित किया गया। चिता के निकट आकर रानी ने सूर्य को अर्घ्य दिया और स्थिर चरणों से चितारोहण कर पति का सिर गोद में लिया तथा ध्यानस्थित होकर बैठ गईं। ढोल, शहनाई बजने लगी। उनका ऐसा नाद हुआ कि कानोंकान शब्द नहीं सुनाई देता था। सहस्रों कण्ठों से 'जय माता सती, जय अम्बे' की ध्वनि निकली। रानी दोनों नेत्र बन्द कर पति का सिर गोद में लिये ध्यानस्थ बैठी थी। अन्य स्त्रियाँ भी उनके पीछे चिता पर उसी भाँति बैठी थीं। राजपुरोहित आचार्य कृपाकर ने रुदन करते हुए बालक कुमार बीसलदेव को आगे कर कहा—"माता सती, अजमेर और अजमेर के भावी अधिपति को आशीर्वाद दीजिए।" रानी ने स्थिर कण्ठ से हाथ उठाकर कहा—"अजमेर के निवासियो ! अजमेर के भावी अधिपति की जय हो !" रानी ने अब चिता में अग्नि देने का संकेत किया। ब्राह्मणों ने चिता में घृत, कपूर रख मन्त्रपाठ करते

हुए अग्नि दी। बाजे ज़ोर से बज उठे। सैकड़ों शंख, घड़ियाल गर्जने लगे। सूखा चन्दन, काष्ठ, घी और ज्वलनशील पदार्थों की सहायता से यह चिता देखते-देखते धधकने लगी। ज्वाला का वेग इतना बढ़ा कि चिता के पास से लोग हटने लगे। परन्तु अनेक राजभक्त सेवक और दासियाँ भी दौड़-दौड़कर चिता में कूद पड़ी। सहस्रों जनों के जय-जयकार, रुदन, क्रन्दन और बाजों के घोर शब्दों के कारण कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। बहुत जन मूर्च्छित हो-होकर गिर गये। देखते-ही-देखते वे सैकड़ों जीवित सत्व जलकर राख का ढेर हो गये। चिता के लाल-लाल दहकते हुए अगारे मानो क्षात्रतेज से सूर्य के तेज की स्पर्धा-सी करने लगे। ज़ार-ज़ार रोते, डाढ़ी नोचते, सिर पर धूल-राख बखेरते, गिरते-पड़ते नगर-निवासी पीछे लौटे। नगर के कोटपाल ने शोकसूचक झण्डा किले पर चढ़ा दिया। उस दिन सम्पूर्ण नगरी में चूल्हा नहीं जला। रात में किसी ने दियाबत्ती भी नहीं की। सारा नगर गहरे अंधकार में डूबा रह गया। अजमेर के आबाल-वृद्ध भूखे-प्यासे, थके लोग धरती में लोट-लोटकर शोक-रुदन करते रहे।

राजपुत्र कुमार बीसलदेव और अवशिष्ट राज-परिवार को ले बीटली दुर्ग में चले गये। अजमेर में सती माताओं की ऊर्ध्वदैहिक क्रिया करने को केवल राज-पुरोहित कृपाशंकर आचार्य और कुछ सेवक रह गये।

३३ : दुर्लभराय का अभियान

आमेर का युवक राजा दुर्लभराय सपादलक्ष के वीर महाराज का आदेश पा भीलों, मीनों और राजपूतों की संयुक्त सैन्य ले नादोल की ओर बढ़ा। उसके साथ देवगढ़ और सोजन के ठाकुर सरदार भी थे। यद्यपि दुर्लभराय की इच्छा महाराज धर्मगजदेव के साथ-साथ पुष्कर क्षेत्र में अमीर से लोहा लने की थी परन्तु वह जैसा वीर था वैसा ही मेघावी और विचारशील भी था। उसने तुरन्त समझ लिया कि मुद्दे की बात युद्ध नहीं है, अमीर की राह रोकनी है। इसलिए वह दूरदर्शी महाराज से तुरन्त ही न केवल सहमत हो गया प्रत्युत उसने साथी-सरदारों को सब बात समझा-बुझाकर अपनी मौलिक योजना भी बना ली। उसने सोच लिया कि युद्ध में शौर्य दिखाने की आवश्यकता नहीं है। कौशल से शत्रु-सेना की प्रगति में बाधा पहुँचाना और अपनी कम-से-कम हानि करके अधिक-से-अधिक शत्रु को क्षति पहुँचाना ही उसका ध्येय था।

अभी यह वीर देवगढ़ ही पहुँचा था कि उसे महाराज धर्मगजदेव के पतन का समाचार मिला। महाराज की दूरदर्शिता का महत्त्व उसने अब समझा। उसने झटपट सब अश्वारोही राजपूतों को दो दलों में विभक्त कर उन्हें देवगढ़ और सोजन के सरदारों को सौंपकर कहा—"आप तमाम इलाके में फैल जायें। सब गाँव-बस्तियों को उजाड़ दें। प्रजा को पर्वतों में भेज दें। खेत, कुएँ, जलाशय नष्ट कर दें, राह, घाट, पुल तोड़-फोड़ दें। यह सब व्यवस्था करते हुए आगे बढ़कर नान्दोल में मुझसे मिल जायें।"

यह व्यवस्था करके वह अपनी भील और मीनाओं की पैदल सेना ले दुहरा

कूच करता हुआ तेजी से नान्दोल जा पहुँचा।

अनहिल्लराय यद्यपि इस समय गुर्जरेश्वर के अनुकूल न था, पर वह स्वयं यह आशा रखता था कि एक दिन गुजरात की गद्दी उसी के पुत्र को मिलेगी। इससे वह उसके विरुद्ध इस म्लेच्छ की सहायता नहीं कर सकता था। वह यद्यपि जैन धर्म पर आस्था रखता था और नान्दोल के राजदरबार में जैन धर्म का बोल-बाला भी था, फिर भी वह जन्मजात शैव था तथा भगवान सोमनाथ का भक्त भी। फिर वह घोघाबापा और महाराज धर्मगजदेव के पतन से भी थर्रा उठा। सब बातों पर विचार करके वह गजनी के सुलतान का अवरोध करने को सन्नद्ध तो हो गया परन्तु उसे इस बात का बहुत दुःख था कि उसने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सैन्य-संग्रह किया था वह तो रह जायगा और उसकी सब शक्ति इस दैत्य का सामना करने में ही नष्ट हो जायगी। फिर यह भी कौन कह सकता है कि उसकी दशा धर्मगजदेव और घोघाबापा के समान ही न हो जाय। धर्मगजदेव के सम्मुख तो उनका सैन्यबल कुछ था ही नहीं।

इन सब विचारों ने उसे बड़ी उलझन में डाल दिया और वह कुछ भी निर्णय न कर सका कि क्या करना चाहिए।

उन दिनों नान्दोल एक समृद्ध नगर था। उसमें सात सौ लखपतियों के बसने थे, यह प्रसिद्ध था। फिर यह नगर मारवाड़, राजपूताना और गुजरात के मुँह पर होने से व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र हो गया था। नगर में बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं, बाग, उपवन और राजमार्ग तथा बाजार थे। राजा भी खूब सम्पन्न था। उसके खजाने में भी काफ़ी स्वर्ण था तथा उसे अपनी बुद्धि और वीरता का घमण्ड भी था।

उसकी उलझन को दुर्लभराय ने वाक्चातुर्य से दूर कर दिया। दुर्लभराय आयु में कम होने पर भी दिल्ली के दरबार में रहने के कारण काफी राजनीति-पटु हो गया था। उसने कहा—"महाराज, हमें इस म्लेच्छ से युद्ध तो करना ही नहीं है, यह कोई हमारे राज्य पर तो चढ़ नहीं रहा—वह तो जा रहा है गुजरात। हम से राह माँगता है, पर अधर्मी को हम राह नहीं देंगे। इसलिए मैंने जो योजना बनाई है, वह ऐसी है कि उससे हमारी धन-जन की कुछ भी हानि नहीं होगी और

इस दैत्य को हम नाको चने चबा देंगे। आप जानते हैं, प्रकृति हमारी सहायक है, नादोल से आगे गहन वन है। उसके आगे विकट तग घाटी है। बस वही हम अपनी करामात दिखायेंगे। अभी हमें नगर खाली कर देना चाहिए। धन-रत्न, प्रजा-परिवार सबको सुरक्षित दुर्गम पर्वतों पर भेज देना चाहिए। दैत्य को चारा, जल-अन्न न मिले ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिए।

दुर्लभराय की सम्मति से अनहिल्लराय सहमत हो गया और सब बातो पर विचार करके उसने योजना बना ली।

देवगढ, सोजत, बदनौर और टोडागढ के सरदार भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर आ पहुँचे। इन सब को अपने-अपने कार्य करने के गुप्त आदेश दे दुर्लभराय ने आगे चलता कर दिया। ये सब सरदार छोटी-छोटी टुकडियो में सारे जगल में बिखर कर शत्रु की घात में जम बैठे।

भीलो और मीनाओ को भी तीर-कमान ले घाटी के दोनो ओर दुर्गम गिरिशृग पर चढ़कर छिप बैठने के आदेश दे विदा किया।

इस कार्य से निपट कर उसने राजधानी को खाली करना प्रारम्भ किया। नगर में ढिढोरा फिरवा दिया गया, और नगर-निवासियो को बारह प्रहर के भीतर-भीतर अपना-अपना धन-जन लेकर अरावली की दुर्गम उपत्यका में जा बैठने का आदेश दिया गया। देखते-ही-देखते चहल-पहल और धन-धान्य से भरा-पूरा नगर नादोल जन-शून्य होने लगा। लोग विविध वाहनो पर अपनी गाठ-गठरी लादे पर्वत बाध पर्वत-श्रेणियो की ओर जाने लगे। राज सेना व्यवस्था और प्रबन्ध में व्यस्त हुई। राजकोष, परिवार और सब धन भी राजमहलो से हटा दिया गया। बारह प्रहर में नगर जन-शून्य होगया। अब राजा ने सब घाट, कुए, मार्ग तोड-फोड डाले और स्वय सुरक्षित स्थान में अपनी सेना की छावनी डाल बैठ गया।

दुर्लभराय ने महाराज अनहिल्लराय को यह सम्मति दी कि ज्यो ही अमीर यहाँ से पार हो जाय, आप अपने नगर में आ जायें तथा वहाँ की व्यवस्था करें। उसने उसकी सैन्य की सहायता भी नही ली, तथा अपनी योजना पूरी करने को गहन वन में प्रवेश किया।

नादोल से बाहर निकलते ही घना जगल था, और इसके बाद वह पहाडी

घाटी जो मीलों लम्बी थी। कहीं-कहीं तो यह इतनी तंग थी कि इसके दोनों ओर के पर्वत-शृंग परस्पर मिले हुए प्रतीत होते थे। इसके बाद ही एक हरा-भरा समतल मैदान था, जहां मीठे पानी की एक छोटी-सी पहाड़ी नदी बहती थी जो वर्षा ऋतु में भयानक हो जाती थी परन्तु और ऋतुओं में उसमें थोड़ा पानी रहता था। दुर्लभराय ने अपनी विलक्षण योजना से व्यवस्था ठीक करके सेना को आवश्यक आदेश देने प्रारम्भ कर दिये।

अमीर अजमेर से आगे बढ़ा। रास्ता साफ़ और हरा-भरा देख उसका चित्त शान्त हुआ। अब तक उसने भयानक रेगिस्तान और भारी-भारी नदियों की बाधाएं झेली थीं। अब यह सुखद हरा-भरा जंगल देखकर वह प्रसन्न हो गया। यद्यपि उसे अनहिलपट्टन पहुँचने की जल्दी थी, पर वह और उसकी सेना इस मनोरम प्रदेश को देखकर मस्त हो गई। चारों ओर हरे-हरे खेत लहरा रहे थे। परन्तु गाँवों में उसे कोई मनुष्य नहीं दीख पड़ता था, इस पर उसने अधिक विचार नहीं किया। वह आगे बढ़ता ही गया। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, बाधाएं सामने आती गईं। गाँव-नगर उजाड़, राह-घाट टूटे हुए, खेत जले हुए और निर्जन। उसकी सारी प्रसन्नता हवा हो गई।

नान्दोल पहुँच कर उसने नगर को उजाड़, जन-शून्य पाया। एक चिड़िया का पूत भी वहाँ न था। यह देख क्रोध से उसकी आँखें जल उठीं। उसने यह सुन रखा था कि यह नगर अजमेर राज्य का मित्र है,अत उसने क्रोध में आकर नगर को फूंककर छार करने का आदेश दे दिया।

नगर धाँय-धाँय जलने लगा और देखते-ही देखते वह छार हो गया। पहले उसकी इच्छा वहीं पड़ाव डालने की थी पर अब उसने कूच करना ही ठीक समझा और आगे बढ़ा। वह गहन और सघन बन में घुसता चला गया। परन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता था—राह-बाट नहीं मिलती थी। उसकी सेना की गति मन्द पड़ गई। व्यवस्था भी गड़बड़ हो गई क्योंकि सूर्यास्त में अब विलम्ब न था। उसने उसी वन में एक समुचित स्थान देख छावनी डाल दी। परन्तु स्थान इतना सघन और अगम था कि इतनी भारी सेना की छावनी वहाँ नहीं पड़ सकती थी। परन्तु लाचारी थी इसमें। सेना की सारी ही व्यवस्था असम्बद्ध हो गई।

राह में और यहाँ भी उसे एक भी मनुष्य देखने को नहीं मिला था। सैनिक थके हुए थे। जैसे-तैसे छावनी डालकर वे अपने खान-पान और आराम में लगे। रात्रि हो गई। वह गम्भीर होती गई। धीरे-धीरे छावनी की धूमधाम सन्नाटे में बदलने लगी। थके हुए सैनिक मीठी नींद के झोंके लेने लगे।

इसी समय जंगल में चारों ओर प्रकाश फैलता-सा दीखने लगा। प्रकाश फैलता ही गया। प्रहरियों ने कुछ भी ठीक-ठीक नहीं समझा। परन्तु दो प्रहर रात्रि व्यतीत होते होते वन में चारों ओर आग की लपटें लहर मार रही थीं। अमीर जाग उठा। पल भर ही में वह परिस्थिति को भाँप गया। भय से उसका चेहरा पीला पड़ गया। उसने वन में आग लगने के बहुत किस्से सुने थे। वन में चारों ओर आग-ही-आग लगी थी, आग ने उसके लश्कर को इस भाँति घेर रखा था जैसे साँप कुण्डली मारकर मेंढक को घेर लेता है। अब बड़े-बड़े वृक्ष अर्रा कर गिरने लगे। धुएँ के बादल आकाश तक छा गये। अमीर ने देखा कि उसका सारा लश्कर आग के समुद्र में डूब रहा है। शोक से अधीर होकर वह अपना माथा कूटने और डाढ़ी नोचने लगा। सिपाही और सेनापति, जो जहाँ जिस दशा में थे, भाग निकलने की चेष्टा करने लगे। सेना में कोई व्यवस्था ही न रही। हाथी चिंघाड़ते और घोड़े बेकाबू उछलते हुए इधर-उधर दौड़ने और सेना को कुचलने लगे। चलती हुई सेना के ऊपर भारी-भारी वृक्ष जलते हुए गिरकर सेना को चकनाचूर करने और झुलसाने लगे। पृथ्वी पर जैसे आग का समुद्र बह रहा हो ऐसा प्रतीत हो रहा था। उस पर होकर चलना घोड़ों और पैदलों—दोनों ही के लिए असम्भव था। परन्तु रुकना और अटकना बिना मौत मरना था। अमीर पागल की भाँति उन्मत्त और हताश हो रहा था। कौन कहाँ है यह किसी को पता न था। प्रत्येक व्यक्ति किसी तरह इस अग्नि-समुद्र से जान लेकर पार होने की चिन्ता में था। पहाड़ी हवा गज़ब ढा रही थी। न मार्ग का पता चलता था, न दिशा का। दम घोटने वाला धुआँ हवा में भरा था। अनगिनत सिपाही, घोड़े उस धुएँ में दम घुटकर और आग में झुलस कर, गिरते हुए पेड़ों से कुचलकर मरे-अधमरे होकर वहीं रह गये। भागने वालों ने उन्हें कुचल कर चटनी कर दिया। उषा का उदय हुआ। सूर्य निकला, परन्तु इस आग के समुद्र का तो कहीं पार ही न था। अमीर घायल और

कमजोर पहले ही से था, अब जीवन से निराश होकर मूर्च्छित हो घोड़े से गिर पड़ा।

उसके जाँनिसार सरदारों और गुलामों ने उसे हाथोंहाथ उठाया। वे उसे सब आपदाओं से बचाते हुए प्राणों के मोल पर ले दौड़े। दो प्रहर दिन चढ़ते-चढ़ते लश्कर आग के इस समुद्र से बाहर हुआ, परन्तु इस आग में अमीर का बहुत लश्कर नष्ट हो गया। सेना की सारी व्यवस्था बिगड़ गई थी। डेरे-तम्बू सब जल-कर खाक हो गये। हाथी-घोड़े, प्यादे सब अधमरे हो गये। सारी ही खाद्य-सामग्री और पीने का पानी नष्ट हो गया।

जंगल पार कर लश्कर ने जैसे-तैसे एक छोटे-से मैदान में छावनी डाली। छावनी क्या थी ऐसा प्रतीत होता था—बहुत से खानाबदोश आदमियों का रेवड़ पड़ा हो। सब के कपड़े लत्ते झुलस गये थे। अनेकों की डाढ़ियाँ आधी जलकर उनकी सूरतें विचित्र बन गई थीं। रसद और खाने-पीने का कुछ भी सामान पास न था और आगे बढ़ना भी सम्भव न था। उस दिन भूखी-प्यासी, थकी और अव्यवस्थित अमीर की सेना अत्यन्त हतोत्साह हो वहीं पड़ी रही।

दूसरे दिन सूर्योदय से प्रथम ही अमीर ने वहाँ से कूच कर दिया। उसने सोचा कि राह में जो कोई समृद्ध नगर-गाँव मिले उसी को लूट-पाट कर सेना के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था की जाय। परन्तु कुछ चलने के बाद ही उसे उस तंग घाटी में घुसना पड़ा। जल्दी ही उस मुसीबत को पार करने के विचार से अमीर सेना लेकर बिना ही आगा-पीछा सोचे उस दर्रे में घुस गया। आधा दर्रा पार करने पर उसे अपनी नई विपत्ति का आभास मिला। उसने देखा, दुर्गम पर्वत-शृंग पर चीउँटियों की भाँति रेंगते हुए अनगिनत धनुर्धारी फिर रहे हैं। उसका मन शंका और भय से काँप उठा। अमीर के सेनापतियों ने भी इस भयानक परिस्थिति का अनुभव किया, परन्तु पीछे लौटने का तो कुछ अर्थ ही न था। प्राणों की बाजी लगाकर अमीर और आगे बढ़ा। अब उस पर दोनों ओर से तीरों की वर्षा प्रारम्भ हो गई। बड़े-बड़े पत्थर लुढ़क कर अमीर के बलोची सवारों को घोड़ों सहित चकनाचूर करने लगे। अमीर ने जल्द-से-जल्द घाटी को पार करने की जैसे सम्भव हो ताकीद की। सेना भारी हानि सहकर भी इस विपत्ति से बच निकलने को अपने ही

सिपाहियों, घोडों, हाथियों आदि को कुचलती हुई आगे बढ चली। तीसरे प्रहर तक अमीर ने घाटी के बाहर मुँह किया। दुर्लभराय के कौशल ने बिना एक आदमी का घात कराये, अमीर की सेना को एक प्रकार से तहस-नहस कर दिया था। अब उसने सम्मुख युद्ध करना व्यर्थ समझ अमीर को आगे भागने का मार्ग तो दे दिया, पर पीछे के भाग में व्यवस्थित उसका सब धन रत्न-खज़ाना लूट लिया। अमीर धन-खज़ाना-कोष छिना कर बैंत से पीटे हुए कुत्ते की भाँति दर्रे से निकल कर ताबड़तोड़ भागा। नदी को पार कर उसने खुले मैदान में छावनी डाली। और खुदा को धन्यवाद देने को नमाज़ पढ़ी। दुर्लभराय अपने सफल अभियान पर प्रसन्न हो पीछे लौटा।

३४ : सिद्धपुर में

श्रीस्थल की पवित्र भूमि में आज भी सिद्धपुर एक समृद्ध नगर है। गुजरात में वह पवित्र तीर्थ माना जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल में यहाँ महर्षि कपिल ने अपनी माता को तत्वज्ञान का उपदेश दिया था। जिस काल की कथा हम कहते हैं उस काल में सिद्धपुर की आबादी खूब बढ़ी-चढ़ी थी। यद्यपि अनहिल्लवाड़ा पाटन (गुजरात) की राजधानी थी, परन्तु सिद्धपुर की शोभा और समृद्धि उस समय पाटन से कम न थी। सिद्धपुर का इलाका महाराज चामुण्डराय ने अपने मँझले पुत्र दुर्लभदेव को दे दिया था। दुर्लभदेव राजधानी में न रह कर सिद्धपुर में ही रहते थे।

दुर्लभदेव बड़े खटपटी पुरुष थे। उन्हें साहूकार चोर कहना ठीक होगा। वे ईर्ष्यालु, लोभी, दम्भी और महत्वाकांक्षी पुरुष थे। जबरदस्त के आगे झुककर काम निकालने में वे बड़े निपुण थे। अपनी कार्य सिद्धि के लिए वे सब-कुछ कर सकते थे। वह कभी किसी का विश्वास नहीं करते थे, सदा सबको संदेह की दृष्टि से देखते थे। लुच्चे-लफंगे, जोड़ूजूरिए सदैव उन्हें घेरे रहते, जिनसे वे अपने सारे उल्टे-सीधे काम लेते रहते थे। अपने काम सिद्ध कर लाने वालों को दुर्लभदेव दिल खोलकर इनाम-इकराम देते थे। वे निरंतर कोई-न कोई षड्यन्त्र करते ही रहते थे, और मन का भेद कभी किसी पर प्रकट नहीं करते थे। स्वभाव से वे पूरे निर्दयी थे।

सिद्धपुर का इलाका और आय पूरी तरह उनके अधीन होने से लोग उन्हें सिद्धपुर का राजा ही मानते थे। पाटन की राजनीति की ढील और अव्यवस्था से

उन्होंने काफी लाभ उठाया था । महाराज चामुण्डराय की तो वह कुछ परवाह ही नही करते थे। वर्षों से उन्होंने राजस्व न राजकोष में जमा कराया था, न उसका हिसाब किताब ही किसी को दिया था । और अब तो वे इस खटपट में पड़े थे कि अपने पिता महाराज चामुण्डराय और बड़े भाई बल्लभदेव को मारकर या बन्दी करके गुजरात की गद्दी हथिया लें । महारानी दुर्लभदेवी और मन्त्रीश्वर वीकण शाह उनके षडयन्त्र में सम्मिलित थे । उधर नान्दोल का अनहिल्लराय भी महत्वाकांक्षी था । गुजरात की गद्दी पर उसकी गृद्धदृष्टि थी । अत वह भी अपने तानेबाने बुन रहा था। पाठक जानते ही हैं कि उनके खटपटी दुर्जनयति ने किस प्रकार पाटन का राजपाट विद्रोह और षड्यन्त्र से दूषित कर दिया था । परन्तु मुद्दे की बात यह थी कि दुर्लभदेव एक तो अपने भतीजे भीमदेव से भय खाता था और अपने भाई बल्लभदेव से उसके प्रेम और सहयोग को नही सह सकता था। दूसरे वे अनहिल्लराय की महत्वाकाक्षा को भी विष-दृष्टि से देखते थे। वह तो उन्हें अपना हथियार बनाना चाहता था और कुछ नही।

पाठक जानते ही हैं कि दामोदर महता की जागृत कूटनीति ने उसका पाटन का विद्रोह विफल कर दिया था, परन्तु वह हार मानने वाला पुरुष नही था। इसी समय उसके लिए यह एक प्रकार का सुयोग ही हाथ आ लगा कि गजनी के सुलतान के गुजरात पर अभियान की सूचना उसे मिली। उसने इस दुर्लभ सयोग से दुर्लभ लाभ उठाने की ठान ली।

वह ढोंगी तो था ही । इन दिनों वह अपनी महत्वाकाक्षाओं पर परदा डालने के लिए साधु वेश धारण करके रहता था । वह चाँदी की खूँटी की खड़ाऊँ पहनता, भगवा वस्त्र धारण करता और मृगचर्म पर बैठकर धर्मकार्य और राजकार्य करता था। इतना होने पर भी वह राजछत्र, चँवर और मशाल का मान अवश्य धारण किये रहता था। लोग उसे साधु, त्यागी और धर्मात्मा राजकुमार समझकर उसका मान करते थे ।

सिद्धपुर का किला गुजरात के प्रसिद्ध किलों में से एक था। वहाँ उसने बहुत-सी सेना, सेवक और शस्त्रास्त्र सग्रह कर लिये थे। परन्तु इसने किले के राजमहालय का निवास भी त्याग दिया था। किले के कोट से सलग्न ही प्रसिद्ध

रुद्र-महालय था। यह महालय महाराज मूलदेवराज ने बनवाया था। उसकी विशालता और स्थापत्य-कला ऐसी थी कि वैसा दूसरा देवस्थान गुजरात में न था। सोमनाथ के बाद इसी का स्थान था। यह ढोंगी राजकुमार साधु-वेश में परम माहेश्वर का पद धारण करके इसी रुद्र-महालय में निवास करता था।

वह निरभिमान होने का प्रदर्शन भी करता था। वह सब छोटे-बड़े व्यक्तियों के घर चला जाता, उनके सुख-दुःख का हाल-चाल पूछता, उनकी संपत्-विपत् में सहायता करता। इन सब कारणों से वह खूब लोकप्रिय हो गया था।

गजनी के सुलतान की खबरें खूब रंग रंगाकर आ रही थीं। सारे ही गुजरात में उन खबरों से आतंक फैल रहा था। लोग घबराकर अपना मालमत्ता छिपा रहे थे। कुछ इधर-उधर भाग रहे थे। अजमेर और नान्दोल की तबाही और घोघागढ के पतन की खबरों ने लोगों के रक्त को पानी बना दिया था। देश का सारा कारोबार, यातायात, कृषि-उद्योग ठप्प पड़ गये थे। समूचे देश में भय, आतंक, निराशा और अनिश्चितता का वातावरण भर गया था। परन्तु दुर्लभदेव अत्यंत सावधानी और दक्षता से अपनी योजना बना रहा था। उसने यह योजना स्थिर की थी कि इस म्लेच्छ को यथासंभव गुप्त सहायता पहुँचाकर देश को उजड़वा डाला जाय और सब विरोधिनी शक्तियों का नाश करा डाला जाय। पीछे, जब वह लौट जाय तो गुजरात पर अपना अधिकार कर लिया जाय। इसके अतिरिक्त इस आड़ में खूब सैन्य भरती करके तथा शस्त्रास्त्र संग्रह करके दूर से, जो हो रहा है, देखा जाय। पीछे इसी शक्ति की सहायता से गुजरात की गद्दी हथिया ली जाय।

इस प्रकार योजना स्थिर करके वह जी-जान से उसकी पूर्ति में जुट गया। उसने बहुत से चर देश भर में फैलाकर घर-घर यह प्रचार कराया कि म्लेच्छ देश पर चढ़ा चला आ रहा है, उसका सामना करने को सब कोई सिद्धपुर में एकत्र हों। अनेक स्थानों पर उसने स्वयं जाकर राजपूतों, गिरासदारों और सर्वसाधारण को उत्तेजित किया। उसकी प्रभावशाली मुख-मुद्रा, साधुवेश, धर्म-प्रेम और देश-प्रेम की उत्तेजनामूलक बातें सुन-सुनकर भावुक और धर्म-प्राण पुरुष हजारों की संख्या में उसके झण्डे के नीचे जा पहुँचे। और देखते-ही-देखते एक अच्छा लश्कर उसने

संग्रह कर लिया।

सोरठ में मिहिर लोगों की बहुत बड़ी बस्ती थी। ये सोरठी बड़े प्रसिद्ध लड़वैये थे, पर चोरी-डकैती या कोई छोटे-मोटे काम करके खानाबदोशों की भाँति रहते थे। इस चालाक राजकुमार का उनकी ओर ध्यान गया। उसने अपने साधुत्व के प्रभाव से इन्हें अपनी ओर आकर्षित किया, भगवान सोमनाथ के नाम पर उसने ऐसी उत्तेजना उनमें भरी कि वे प्राणपण से मुसलमानों से लोहा लेने को सन्नद्ध हो गये और देखते-ही-देखते पच्चीस हज़ार मिहिर-योद्धा उसके झण्डे के नीचे आ खड़े हुए।

अब उसने अपने लश्कर को युद्ध-कला सिखाने के लिए चतुर सेनानायक नियत किये। उत्तम शस्त्रास्त्रों का सचय और निर्माण किया। भिन्न-भिन्न सरदारों की अधीनता में सेना की टुकड़ियाँ बाँटी और प्रतिदिन उनकी कवायद करने का उपक्रम जारी किया। इस काम में गफलत न हो इसलिए वह नित्य प्रातःकाल स्वयं सेना की कवायद देखता। इस प्रकार उसने प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने का सब बन्दोबस्त कर लिया और सावधानी से अमीर की गतिविधि देखने लगा।

उधर राजधानी में गम्भीर उलट-फेर हो चुके थे। महारानी दुर्लभदेवी और पाटन का प्रधान मन्त्री बीकणशाह जो उसका सहायक था—राजवध के अपराध में बन्दी हो गये थे और प्रधान मन्त्री का पद उसके शत्रु और शत्रुओं के समर्थक विमलदेवशाह को मिल चुका था। प्रधान सेनापति बालुकाराय और दामोदर महता पहिले ही बल्लभदेव के गुट के व्यक्ति थे। सो एक प्रकार से राज्य इस समय बल्लभदेव का था। महाराज चामुण्डराय नाम मात्र के पुतले की भाँति गद्दी पर बैठे थे। उनकी कोई बात अब कोई सुनता ही न था। पाठक जानते ही हैं कि विमलदेवशाह एक ऐसा जनूनी और तेजस्वी व्यक्ति था जो किसी की—यहाँ तक कि राजा की भी परवाह न करता था। उसने राजा की मर्जी के बिना ही बल्लभदेव और भीमदेव को लाखों द्रम्म सेना की भरती के लिए भेज दिये थे। फिर अब तो वह खुल्लमखुल्ला प्रधान मन्त्री था। और दामोदर महता तथा बालुकाराय की सलाह से उसकी सवारी राज-गज पर नगर में धूमधाम से निकल चुकी थी जिससे

सब छोटे-बड़े जनों ने महामन्त्री के रूप में उनका अभिनन्दन किया था।

परन्तु इन सब विपरीत परिस्थितियों से दुर्लभदेव नहीं घबराया। सेना की व्यवस्था और तोपागार का प्रबन्ध ठीक करके उसने तीन काम किये।

महारानी दुर्लभदेवी—जो नान्दोल के राजकुमार को गोद लेना स्वीकार कर नान्दोल की सहायता प्राप्त करना चाहती थी, वह उसे बिलकुल पसन्द न थी। इस गोद की योजना का वह पूरा विरोधी था। यद्यपि अभी तक उसके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था फिर भी उसे आशा थी। परन्तु अपने विरोध को उसने कभी किसी पर प्रकट नहीं किया। रानी की हाँ में हाँ मिलाता रहा। अनहिल्लराय को भी प्रेम और आदर से भरे पत्र लिखता तथा भेंट भेजता रहा। जब ग़ज़नी का अमीर अजमेर से आगे बढ़ा और नान्दोल में आमेर के दुर्लभराय ने आकर अपनी योजना अनहिल्लराय से कही तो अनहिल्लराय ने सांडनी-सवार भेजकर दुर्लभदेव से राय पूछी थी। दुर्लभदेव तो यह चाहता ही था कि इस अवसर पर अमीर से टकराकर अनहिल्लराय पिस मरे। उसने खूब उत्तेजित भाषा में अनहिल्लराय को इस धर्म-शत्रु से लोहा लेने को उकसाया और दो हाथी सोने के दम्म भरकर सहायतार्थ भेज दिए। पत्र और दम्म पाकर अनहिल्लराय प्रसन्न हो गया। और जब दुर्लभराय कछवाहे ने उसे ऐसी योजना बताई जिसमें न तो उसके एक सैनिक पर आँच आनी थी, न एक पाई खर्च होती थी—वह धर्म के शत्रु से मिल जाने के अपवाद से भी बच जाता था और दुर्लभराय का भी प्रेम-भाजन बनता था, इन सब बातों पर विचार कर उसने तब दुर्लभराय कछवाहे की योजना स्वीकार कर ली थी। अतः इस मामले में दुर्लभदेव की आशा कुछ भी फलवती न हुई। अनहिल्लराय का कुछ भी नुकसान नहीं हुआ, जो हुआ उसकी पूर्ति उसने आनन फानन कर डाली।

दूसरा काम उसने यह किया कि अत्यन्त गुप्त रूप से उसने अमीर के पास दूत भेजकर इस शर्त पर उसका मार्ग विरोध न करने तथा सब सम्भव सहायता देने की स्वीकृति भेज दी कि वह सोमनाथ अभियान के सफल होने पर वापसी में उसे ही गुजरात का अधीश्वर स्वीकार कर ले। दुर्लभदेव का यह सन्देश वास्तव में अमीर के लिए एक वरदान था। यदि इस समय दुर्लभदेव अपनी सेना लेकर अमीर पर पिल पड़ता तो इसमें तनिक भी सन्देह न था कि अमीर का एक एक घोड़ा

और एक-एक सवार इसके तीरों से बिंध जाता और अमीर को गुजरात की दह-लीज में ही अपनी समाधि लगानी पडती। दुर्लभदेव ने इतना ही नहीं किया बल्कि उसने ऐसी व्यवस्था कर दी कि आबू और झालौर के परमार भी अमीर का अव-रोध न करें। उन्हें इस खटपटी राजपुत्र ने विश्वास दिला दिया कि वे अपने धन-जन को खतरे में न डालें—गजनी के दैत्य को सीधा गुजरात की सीमा में घंसा चला जाने दें। यहां वह उसे पीस डालेगा। पीछे आवश्यक हुआ तो वह उनसे अमीर के पृष्ठभाग पर आक्रमण करने का अनुरोध करेगा। यह योजना यदि अमल में सचमुच आती तो अमीर का यहाँ से निस्तार न था, पर भारत के भाग्य ऐसे कहाँ थे, भारत को तो अपनी लाज खोनी थी। दुर्लभदेव ही के समान आबू के परमार अपनी स्वार्थमयी महत्त्वाकांक्षा की खिचड़ी पका रहे थे। वे न केवल अवन्तीपति भोज का पराभव करने पर तुले थे अपितु गुर्जरेश्वर की अधीनता का इस सुअव-सर पर जुआ उतार फेंकने को भी उतावले हो रहे थे। यदि इस सुयोग में अमीर दुर्लभदेव और गुर्जरेश्वर का दलन कर डाले और उनका सैन्य-बल तथा कोष अक्षुण्ण बना रहे तो इससे उत्तम बात और हो क्या सकती थी। उन्होंने दुर्लभदेव की योजना का हर्ष से स्वागत किया तथा कपट-भाव से आश्वासन दिया कि आवश्यकता पड़ने पर वे अमीर पर पीछे से आक्रमण करके उसे सहायता पहुँचायेंगे। परन्तु उन्होंने यह ठान ली थी कि यह कोरा आश्वासन ही रहेगा। गुप्त रूप से उन्होंने भी अमीर के पास दूत भेजकर कहला भेजा था कि यदि अमीर उनके राज्य की सीमा में कोई उपद्रव न करे तो वे निर्बाध रूप से आबू की राह गुजरात में प्रविष्ट होने में रोकेंगे नहीं।

हाय रे भारत के भाग्य, हाय रे राजपूतों की कलंकित स्वार्थ-नीति, इसी ने तो राजपूतों को संगठित न होने दिया, इसीसे तो वे महावीर होते हुए इस मार-काट के युग में बड़े-बड़े सुयोग पाकर भी कोई अपना साम्राज्य न स्थापित कर सके। वे अपने ही स्वार्थ में, अपनी ही योजना में मरते-कटते रहे। अमीर ने न केवल परमार के इस आश्वासन का स्वागत किया अपितु उसने परमार को बहुत सी भेंट-भलाई भेज कर बारम्बार अपनी मित्रता का वचन दिया। यहाँ गुजरात के द्वार पर आकर उसे नये अनुभव हो रहे थे। जहाँ उसे अन्यत्र मैत्री की भीख

भगिनी पदी थी, वहाँ मैत्री की भीख उससे मांगी जा रही थी। और वह भी तब जब कि वह अत्यन्त शीर्ण और विपन्नावस्था में था और उसे सोमनाथ-विजय तो एक ओर रही, सही-सलामत गजनी लौट जाने की भी आशा न रही थी।

झालौर का रावल वाक्‌पतिराज परमार चौहानों का सम्बन्धी था। वह एक बूढ़ा, सनकी और घमण्डी आदमी था। उसे अपनी वीरता पर बड़ा अभिमान था। अपने को वह पोथावाषा से तनिक भी कम न समझता था। इसमें सदेह नहीं कि वह एक साहसी योद्धा था, पर राजा को क्या योद्धा होना ही यथेष्ट है। उसके मन्त्री भी ऐसे ही थे। राजा की आयु सत्तर को पार कर चुकी थी। वह अफ़ीम घोलने और रनवासों में अपने बुढ़ापे के दिन व्यतीत कर रहा था। उसका राज-काज आप-ही-आप चल रहा था। भूखे-प्यासे किसान अपना खून-पसीना एक करके जो अन्न उपजाते थे उनकी गाढ़ी कमाई का अधिकांश भाग उसके अत्याचारी कर्मचारी उनसे वसूल कर अपनी भी जेब भरते थे और राजकोष भी भरते थे जिसे मनमानी रीति पर खर्च करने में इस बूढ़े, कामुक और सनकी राजा को रोकने वाला कोई न था। दुर्लभदेव ने उसे लिखा—"काकाजू, चिन्ता मत कीजिए, गजनी के इस दैत्य को सीधा पाटन की ओर तक चला आने दीजिए। यहाँ मैं उसे तलवार के घाट उतारूंगा। आपको अपनी यशस्विनी तलवार को म्यान से खींचने की मुझ दास के रहते आवश्यकता नहीं है।"

राजा हँस हँसकर दुर्लभदेव का यह पत्र पढ़ता और कहता—"रंग है, रंग है, अरे! मेरी तलवार देखनी हो तो देख, पर छोकरा अच्छा है परमार को जानता है। यह बेटा अमीर गुजरात जाता है तो जाय। झालौर पर उसने नज़र की तो जीता छोड़ूंगा नहीं। हा—हा—हा—हा।' और इसके बाद जब अमीर ने उसकी सेवा में अमूल्य जवाहरात से भरा थाल भेजकर मैत्री-याचना की तो यह लालची बूढ़ा बड़ी देर तक उन रत्नों में कौन कितनी कीमत का है, इसी धान पर अपने रत्नों के पारखीपन की डींग हाँकता और गोली-बांदियों पर यह प्रकट करता रहा कि यह अमीर वास्तव में उसके भय से थर-थर काँपता है।

इस प्रकार अपनी दोनों योजनाओं को कार्यान्वित कर तथा अमीर को निष्कंटक करके दुर्लभदेव ने अपना तीसरा नेत्र अब पाटन की ओर फेरा। उसके लिए

जिन लोगों ने विपत्ति मोल ली थी उनकी उस स्वार्थी ने चिन्ता ही नहीं की। उसे केवल अपनी माता महारानी दुर्लभदेवी को जैसे बने महाराज का मन फेर कर सिद्धपुर ले आने और मन्त्री विमलशाह को समझा-बुझाकर जैसे बने अपने पक्ष में करने की व्यग्रता थी।

सिद्धपुर के रुद्र-महालय के मठपति शुक्लबोध तीर्थ संस्कृत और वेदान्त के पण्डित, वयोवृद्ध सन्यासी थे। राजपुत्र के भक्तिभाव से वे प्रसन्न थे। दुर्लभ ने उन्हें बहुत-सी जागीर दे रखी थी। उसकी कृपा से ये बूढ़े सन्यासी राजसी ठाठ से रहते थे। दुर्लभदेव देवाराधना की अपेक्षा मठपति की ही अधिक आराधना करता था। इससे मठपति उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते अघाते न थे। दुर्लभदेव ने और अन्य जनों ने भी पाटन की राज्य-व्यवस्था की दुरवस्था के उल्टे-सीधे चित्र इस वेदान्ती सन्यासी के सम्मुख जो खींचे थे उस पर इसने अपनी यह पक्की राय बना ली थी कि यदि दुर्लभदेव पाटन का अधिपति हो जाय तो गुजरात का बहुत भला हो सकता है। कुछ सच्चे भाव से भी और कुछ दुर्लभदेव की आराधना से द्रवित होकर वे दुर्लभदेव के समर्थक बन गये थे। इन्हीं को अब दुर्लभदेव ने पाटन जाकर राजा को नर्म करके जैसे बने महारानी दुर्लभदेवी को मुक्त कराने और मन्त्रीश्वर विमलदेवशाह को अपना अनुगत बनाने के लिए बहुत ऊंच-नीच समझाकर भेजा। राजनीति को तनिक भी न समझने वाला यह बूढ़ा सन्यासी बिना मामले की गुरुता का विचार किये कि वह कहाँ, किस कार्य के लिए जा रहा है, पाटन की ओर चल दिया। दुर्लभदेव उत्कण्ठा से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

३५ : पाटन में हड़कम्प

घोघाबापा और महाराज धर्मगजदेव के रणागण में गिरने के समाचार हवा में तैरते हुए पाटन पर छा गये। अमीर दवादव गुजरात की ओर बढ़ा चला आ रहा है। उसकी भाँति-भाँति की विकृत और कल्पित कहानियाँ लोग कहने-सुनने लगे। कोई कहता—उसके साथ दैत्यों की सेना है, कोई कहता—उसके पास उड़ने वाली साडनिया हैं, कोई कहता—वह मरकर भी जी उठता है—उसका सिर कटकर फिर जुड़ जाता है। जितने मुँह उतनी बात। पाटन के उद्वेग का ठिकाना न रहा। लोगों के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगीं। सेठ-साहूकार, गृहस्थ अपना धन-रत्न धरती में या तहखानों में छिपाने लगे। जिससे जो लेकर भाग जाते बना—ले भागा। जिसका जिधर मुँह उठा वह उधर ही भाग निकला। किसी को किसी की सुध न रही। अमीर के चमत्कारों और अत्याचारों के अतिरंजित किस्सों ने अनेक रूप धारण करके लोगों में आतंक उत्पन्न कर दिया। पाटन में भगदड़ मच गई।

इस समय पाटन में दो ही ऐसे पुरुष थे, जिन पर पाटन का सारा दायित्व था। एक वैदेशिक मन्त्री दामोदर महता दूसरे मन्त्रीश्वर विमलदेवशाह। दोनों ने परस्पर विचार-विनिमय किया, परिस्थिति को परखा और आगे-पीछे की योजना बनाई। महाराज बल्लभदेव और भीमदेव इस समय राधनपुर में सैन्य तथा युद्ध-सामग्री का संग्रह कर रहे थे। दामोदर महता ने तुरन्त नगर, राज्य और राजकोष की सुरक्षा-व्यवस्था की। नगर की भगदड़ रोक दी गई और ढिंढोरा फिरा कर नगर-निवासियों को राज-व्यवस्था के अनुसार काम करने का आदेश दिया गया।

कन्नौज, उज्जयिनी, श्रीमाल और भृगुकच्छ के ब्राह्मण-परिवारों को तथा राजकोष, राजपरिवार एवं उच्चवर्गीय परिवारों को खम्भात और भरुच भेज दिया गया। अवांछनीय जनों को दूर-देशान्तर में रवाना कर दिया, गाँव-देहात के लोगों को सुरक्षित स्थानों में स्थानान्तरित कर दिया। राह-बाट, पुल और जलाशयों पर पहरे बैठा दिये। खम्भात की खाड़ी में समुचित जहाजों को सर्वथा साधन-सम्पन्न करके समय के लिए तैयार रखा गया। पाटन और आसपास के नगर-ग्रामों की सारी खाद्य-सामग्री पर राज्य ने अधिकार कर उसे तथा धन से भरे छकड़ों को राधनपुर महाराज बल्लभदेव के पास भेज दिया।

अब रह गये गुजरात के प्रतापी महाराजाधिराज, पाटन नगर और पाटन के राजमन्दिर और देवालय। इनके सम्बन्ध में देर तक दोनों चतुर राजनीति-विशारदों ने विचार विनिमय कर अपनी गुप्त योजनाएं बनाईं। विमलदेवशाह ने महाराज को स्थानान्तरित करने का बीड़ा अपने हाथ में लिया।

और दामोदर महता ने नगर की रक्षा का भार सम्हाला। दोनों राज-पुरुष अपनी-अपनी योजनाओं को सफल करने में जुट गये।

३६ : परम-परमेश्वर

परम-परमेश्वर परम माहेश्वर गुर्जरेश्वर प्रबल-प्रताप-मार्त्तण्ड महाराजाधिराज चामुण्डराय बेचैनी और घबराहट में उन्मत्त की भांति बडबडा रहे थे। राजा के सब खुशामदी, जी-हुजूरिए, खवास, गोले, दास, दासी, राजा को छोड जिसके जो हाथ लगा, ले-लेकर भाग गये थे। गुर्जरेश्वर अपने महलो में अकेले पडे रह गये थे। जब से उन्हे मार डालने के षड्यन्त्र का भण्डाफोड हुआ था, वे प्रत्येक आदमी को सदेह और भय की नजर से देखते, अपने ही पैरो की आहट से चौंक उठते, हर समय हाथ में नगी तलवार लिये रहते और नौकर-चाकर, गुलाम-गोले सभी से भयभीत और सशकित रहते थे। अपनी परछाईं से भी डर जाते थे। भोजन और जल सभी में उन्हें विष का भय रहता था। भोजन को वे दूर फेंक देते, चीखते-चिल्लाते, और बहुधा भूखे-प्यासे पडे क्रोध और जनून में बडबडाया करते थे।

आज उनकी नित्यक्रिया में भी बाधा आ उपस्थित हुई। बारम्बार पुकारने पर भी कोई गोला-गोली, खवास चाकर नही उपस्थित हुआ। वे जोर-जोर से गालिया बकने लगे, उनके मुंह से फेन निकलने लगा। बहुत देर बाद एक दासी हाथ बांधे आ खडी हुई। राजा उसे देखते ही चौंक पडे। उन्होने तलवार का हाथ ऊँचा करके कहा—"तू क्यो आई—बोल।"

"मैं अन्नदाता की सेवा में हाजिर हूं।"

"कैसी सेवा?"

"जैसी हुजूर की मर्जी।"

"और सब चाकर-गुलाम कहां गये।"

"सब भाग गये महाराज।"

"क्यों भाग गये ?"

"सारा पाटन ही भाग रहा है, अन्नदाता। नगर में भगदड़ मची है।"

महाराज एकदम गद्दी पर गिर गये। उन्होंने कहा—"पाटन भाग रहा है और मुझे खबर ही नहीं।"

दासी ने जवाब नहीं दिया। नीचा सिर किये खड़ी रही।

राजा ने कहा—"बोलती क्यों नहीं, बोल," फिर राजा ने गुस्से में भरकर कहा—"मैं समझ गया। तुम सब अपने राजा को मार डालना चाहते हो।"

"अन्नदाता, मैं तो बचपन ही से हुजूर की खिदमत में हूँ, महाराज ने तो सदा ही मुझ पर विश्वास किया है।"

"पर अब···" महाराज ने दासी की ओर देखा।

दासी ने निकट आकर महाराज की मसनद ठीक की। फिर हाथ बाँधकर कहा—"अन्नदाता, बाहर मन्त्रीश्वर विमलदेवशाह ड्योढ़ियों पर हाजिर हैं, वे हुजूर को सब बात बता सकते हैं।"

"तो विमल को यहाँ ले आ।"

विमलदेवशाह राजा के निकट आ खड़े हुए। राजा ने पूछा—"विमल, यह सब क्या हो रहा है ? सुनता हूँ पाटन के सब नगरजन घर-बार छोड़कर भाग रहे हैं।"

"महाराज ने सत्य ही सुना है।"

"परन्तु क्यों ?"

"ग़जनी का म्लेच्छ गुजरात पर आ रहा है महाराज।"

"तो बालुकाराय क्या कर रहा है, उसने उसे मारकर भगाया नहीं ?"

"नहीं महाराज।"

"क्यों नहीं ?"

"म्लेच्छ की सेना अपार है। पाटन में सेना नहीं है, सेना के पास शस्त्र नहीं।"

"क्यों नहीं हैं विमल ?"

"राजकोष का सब धन महाराज ने धवलगृह और सरोवर के निर्माण में खर्च कर दिया है।"

"अरे, किन्तु प्रजा की रक्षा कैसे होगी ?"

"नहीं होगी महाराज।"

"यह कैसी बात ?"

"यह बात प्रजा जानती है। परम-परमेश्वर माहेश्वर गुर्जराधिपति महाराज चामुण्डराय अपनी प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ हैं। इसी से वह भाग रही है।"

"बहुत खराब बात है, अब क्या होगा ?"

"पहले पाटन का और फिर सोमनाथ का विध्वंस होगा।"

"नहीं, नहीं रे विमल, ऐसा नहीं होना चाहिए, तू नहीं जानता कि अनहिल्ल-पट्टन पश्चिमी भारत का मुख है और भगवान् सोमनाथ सोलकियों के कुल-देवता हैं।"

"जानता हूँ महाराज।"

"तो फिर ?"

"तो फिर महाराज उठाइए तलवार, घोघाबापा रण में जैसे जूझ गये, महाराज धर्मगजदेव जैसे कट मरे, उसी प्रकार रण में एक-दो हाथ मार-मूरकर आप भी वीरगति प्राप्त कीजिए। पीछे पाटन का जो हो सो हो।

राजा भय और आतंक से पीला पड़ गया। उसे जीवन का बहुत मोह था। उसने मन्त्री की ओर भीत मुद्रा से देखा। मन्त्री अविचल भाव से खड़ा था। राजा ने मर्राए स्वर में कहा—"विमल, पाटन की लाज रख।"

"किस प्रकार महाराज।"

"जैसे तू ठीक समझे। मेरी ओर से तुझे छूट है, समझा।"

"बहुत अच्छा महाराज, तो आप तैयार हो जाइये।"

"किसलिए ?"

"शुक्लतीर्थ पधारने के लिए। वहाँ महाराज विराजकर शान्ति से परलोक-चिन्तन करें।'

"और पाटन ?"

"अब राज्य की खटपट में पड़ने का महाराज का काम नहीं। उसकी समुचित व्यवस्था हो जायगी।"

"तो विमल, तू मुझे गद्दी से उतारता है।"

"महाराज को गद्दी पर विराजे रहने से बहुत कष्ट उठाना पड़ रहा है।"

"और जो मैं गद्दी न छोड़ूँ?"

"तो और अच्छा है। उठाइए तलवार।"

"तलवार!"

"हाँ महाराज, यदि आप किसी म्लेच्छ की तलवार का भोग होना ही चाहते हैं, तो फिर जैसी महाराज की इच्छा।"

राजा की आँखों से झरझर आँसू झरने लगे। उसने कहा—"अरे विमल, यह क्या मेरा तलवार उठाने का समय है?"

"नहीं है महाराज, इसी से मैंने निवेदन किया कि अब महाराज शुक्लतीर्थ पधारें।"

"वहाँ क्या है?"

"देव-स्थान है, रम्यस्थली है, सुपर्णा नदी है, वन-विहंगम है, शीतल मन्द पवन है।"

"और गज़नी का वह दैत्य।"

"वहाँ न जाने पायेगा महाराज।"

"और यदि जाय तो?"

"विमल के जीते जी नहीं, महाराज।"

"यह—यह क्या यथेष्ट है?"

"एक भी गुर्जर जब तक जीवित है, तब तक नहीं।"

"हाँ, अब ठीक है। किन्तु ये हत्यारे, जो अपने राजा को विष देकर मार डालना चाहते हैं।"

"सब दण्ड पायेंगे महाराज, वहाँ उनका कुछ भय नहीं है।"

"तो तू जान विमल।"

"महाराज निश्चिन्त रहें।"

"अच्छा तो तैयारी कर।"

"महाराज का गजराज द्वार पर उपस्थित है। रनवास रवाना हो चुका है। सेवक, खवास सब विश्वासी जन रवाना हो चुके महाराज।"

"तो फिर मैं चला।"

राजा कांपता हुआ गद्दी से उठ खड़ा हुआ। जीवन के पचास वर्ष जहाँ बैठकर, उसने कच्छ, लाट, भालौर, मारवाड, स्थानक और सिन्ध के छत्रपति राजाओं का छत्र-भग किया था, उज्जयिनी के मालवराज जिससे सदा स्पर्द्धा करते तथा भय-भीत रहते थे वही सोलकी गुर्जराधीश्वर चामुण्डराय आज थरथर कांपता हुआ, बुढ़ापे में धुंधली आंखों से अविरल अश्रुधारा बहाता हुआ लडखडाते पैर गद्दी से नीचे रख रहा था।

३७ : ब्राह्मण की कूटनीति

सूर्योदय होते-होते सारा पाटन ही सूना हो गया। जिन गलियों और राज-मार्गों पर सैनिकों, घोड़ों, हाथियों का जमघट जमा रहता था, वे सब सूनी रह गईं। जिन हाट-बाजारों में भाँति-भाँति का क्रय-विक्रय होता था—वहाँ सन्नाटा छा गया। दर्बारगढ़ की सारी चहल-पहल खत्म हो गई। केवल पाँच सैनिक दर्बारगढ़ की ड्योढ़ियों में बैठे और दो-चार भीतर-बाहर आते-जाते दीख पड़ते थे। घरों के द्वार बन्द, दूकानों के द्वार बन्द, देवालयों के पट बन्द और विद्यालयों के द्वार बन्द। पनघट सूने, ताल-सरोवर, नदी-कूप, बावड़ी सब सूनी। जैसे आज सूर्य व्यर्थ ही पाटन पर प्रकाश बखेर रहा था, वायु व्यर्थ ही चल रही थी। इस प्रकार आज पाटन जीवित श्मशान हो रहा था।

चण्डशर्मा ने नगर में डौंडी फिरवा दी—कोई जन नगर से बाहर न जाय। नगर के फाटक बन्द करा दिये गये और अपने आदेशों और कूटनीति का प्रभाव देखने वे स्वयं घोड़े पर सवार होकर नगर में निकले। उनके अकेले अश्व के टापों की आवाज उन्हीं के कानों में आघात करने लगी।

दोपहर दिन चढ़े दोनों ब्राह्मणों की मन्त्रणा-सभा बैठी। मन्त्रणा-सभा में कुल जमा दो ही आदमी थे। चण्डशर्मा और भस्मांकदेव। भस्मांकदेव ने कहा—"यहाँ तक तो हुआ, अब!"

"अब यह कि आप इसी क्षण सिद्धपुर चले जाइए और दुर्लभदेव के सम्मुख भली-भाँति रोना गाना करके कहिए कि राजा, प्रजा, सेठ, साहूकार सब कोई पाटन को सूना छोड़ कर भाग गये हैं, बाणावलि भीमदेव सोमनाथ में अमीर से

युद्ध करने सारी सेना ले गये हैं। राजकोष सारा राजा ले गये हैं। पाटन अरक्षित है—आप धीर, वीर, प्रतापी, धर्मात्मा और सब भाँति योग्य हैं, जैसे सम्भव हो पाटन की रक्षा कीजिए। जो नगर-जन वहाँ हैं उन्हें अभय दीजिए। आप देश के राजा हैं, राजधर्म पालिए। प्रजा की जान-माल की रक्षा कीजिए। इस प्रकार की बातें कहिए—परन्तु चेष्टा ऐसी कीजिए कि वह न तो पाटन आये—न अपनी सेना लाये। उसकी समूची ही सैन्य-शक्ति को हमें समय-कुसमय के लिए सुरक्षित और अक्षुण्ण रखना है। कदाचित् अमीर से निर्णायक युद्ध आबू में ही करने का अवसर आये, तो यही सैन्य हमारे पृष्ठ का बल होगी, यह हमें न भूलना चाहिए। आप ऐसा कीजिए कि वह अमीर को ठण्डा करके पाटन ले आये और अमीर पाटन की बिना कोई हानि किये आगे को सरक जाय। इतना हो कि बस। फिर वापसी में देव विपाक से वह बच आया भी तो हम समझ लेंगे। यदि आप ही दुर्लभ के प्रतिनिधि बनकर अमीर से मिल लें और पाटन में हमी अमीर का स्वागत करें और पाटन को तनिक भी क्षति बिना किये उसे प्रभास की राह पर धकेल दें, तो और भी अच्छा है।

समय बहुत कम है और काम अधिक है। इसलिए देव, आप अभी—इसी क्षण सिद्धपुर की ओर कूच कर जायें, मैं गुप्त राजकोष आदि की सुरक्षा-व्यवस्था करके नागरिकों की सहायता से तब तक अमीर के स्वागत की तैयारियाँ कर रखूँगा।" देव सहमत हुए। तथा आवश्यक परामर्श कर तत्क्षण सिद्धपुर की ओर कूच कर गये।

अब चण्डशर्मा ने नगर के अवशिष्ट नागरिकों के प्रमुखों को दर्बारगढ़ में बुलाया। और उनसे कहा—'भाइयो, यह भारी विपत्काल आया है, ऐसा करो जिससे साँप मरे पर लाठी न टूटे। राजा सब राजकोष और सेना लेकर भाग गया है, हमारे पास न लड़ने के लिए शस्त्र हैं न सिपाही। हम किसी भाँति गजनी के सुलतान का मुकाबिला कर ही नहीं सकते। इसलिए मेरी राय तो यह है कि हम लोग चलकर अमीर की खातिर-खुशामद करके किसी तरह उससे यह आश्वासन ले लें कि पाटन पर वह आक्रमण न करे—सीधी राह सोमनाथ चला जाय। हम उसका कोई विरोध नहीं करते। सोमनाथपट्टन में उसका जो हो सो हो।"

कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। कहा—'ऐसे कायर प्रस्ताव से तो मर-मिटना ही अच्छा है, ऐसा हम करेंगे तो पाटन की प्रतिष्ठा कहाँ रहेगी ?" परन्तु चण्डशर्मा ने कहा—"भाइयो, जान-बूझकर अपना सत्यानाश करना बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। अमीर तुम्हारे घर-बार लूट लाटकर, तुम्हारी बहू-बेटियों की आबरू धूल में मिलाकर, पाटन को राख की ढेर बनाकर आगे जाय—वह अच्छा कि वह बाहर-ही-बाहर खसक जाय वह अच्छा। आखिर बाणावलि भीमदेव उसके दांत तोड़ने को प्रभास में बैठे ही हैं। यह तो एक राजनीति की बात है, इसमें कायरता क्या है ? केवल नष्ट होने के लिए साहस करना आत्मघात कहाता है, और आत्मघात सदैव ही पाप है।

अछता-पछताकर पाटन के नागरिकों ने चण्डशर्मा की युक्ति को स्वीकार किया। और तब चण्डशर्मा ने उन्हें समझा-बुझा तथा शान्त कर विदा किया। इसके बाद वे अपनी योजना-पूर्ति की गोपनीय व्यवस्था करने लगे।

३८ : शत्रु-निमन्त्रण

जैसा सोचा था वही हुआ। दुर्लभदेव इस ब्राह्मण की राजनीति को न समझ सका। भस्मांकदेव जनेऊ-नारियल राजकुमार को अर्पण करके अधोमुख हो बैठ रहे। राजकुमार ने वार्तालाप शुरू किया।

"कहिए देव जी, पाटन में कुशल तो है ?"

"अब कुशल कहाँ महाराज, यशस्वी मूलदेवराज का सचिन पुण्य क्षय हो गया, पाटन आज श्मशान हो गया। महाराज गुर्जरेश्वर और उनके सामन्त राजधानी छोड़ न जाने कहाँ भाग गये। वाणावलि भीमदेव अपने रक्त के आवेश में अमीर से दो-दो हाथ करने प्रभास में जा बैठे हैं, नगर-निवासी अपने जान-माल को लेकर जहाँ जिसका सींग समाया है, भाग गये हैं। पाटन को महाराज, अब आपका ही आसरा है।"

"और राजकोष ?"

"राजकोष में एक फूटी कौड़ी भी नहीं। महाराज ने सब धवलगृह और सरोवर बनवाने तथा भाड़-भड़ैतों में खर्च कर दिया।"

"और सेना।"

"सेना पाटन में कहाँ है, कुछ बिगड़े-दिल अवश्य भीमदेव के साथ गये हैं, शेष सब हल जोत रहे हैं। उन्हें न वेतन, न शस्त्र। न उनके पास अश्व, न उनका कोई नायक।"

"और बालुकाराय ?"

"बालुकाराय क्या और दामोदर महता क्या—सब वाणावलि के गीत गाते हैं,

सुना है वे सब भी उन्हीं के साथ हैं।"

"आपको किसने मेरे पास भेजा है?"

"नगर-जनों ने। उनके घर-द्वार अरक्षित हैं। मैंने बड़ी ही कठिनाई से उन्हें रोका है, अब सबकी आशा-दृष्टि आप ही पर है।"

"मैं क्या कर सकता हूँ, यह तो राजा का काम है।"

"अब आप ही हमारे राजा हैं महाराजाधिराज।"

"और वल्लभ?"

"उनका तो कहीं पता ही नहीं है, सुना है वे साधु होकर मरुस्थली में रण-थम्मी माता के थान पर तपने चले गये हैं।"

"तो यों कहो गुजरात का कोई धनी धोरी ही नहीं है।"

'ऐसा मैं कैसे कहूँ—जबकि अभी चौलुक्य-कुलकमल-दिवाकर महाराज महामाहेश्वर श्री दुर्लभदेव की अजेय तलवार उपस्थित है।"

"देव, मुझे खटपट में न डालिए, पाटन जाने और अमीर।"

"वाह, यह कैसी बात महाराज, पाटन गया तो सिद्धपुर कहाँ रहेगा, कुछ तो सोचिए।"

'तो आप मुझे क्या करने को कहते हैं?"

"मैं कुछ नहीं कहता, पाटन के नागरिक कहते हैं।

"वे क्या कहते हैं?"

'वे कहते हैं, हमारे महाराज दुर्लभदेव हैं, वे हमारी रक्षा करें, हम उनकी धन जन से सहायता करेंगे।"

"क्या पाटन के सेठिया मुझे दम्म देंगे?"

'अन्नदाता, उनका धन ही नहीं, जीवन भी आपका है। जब आप उनकी रक्षा के लिए प्राण न्योछावर करेंगे, तो वे आपको धन क्यों नहीं देंगे।' इसके बाद उसने अभिप्रायपूर्ण दृष्टि से इस ढोंगी, लालची राजकुमार के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—"गुप्त राजकोष कहाँ है, यह मैं जानता हूँ।"

दुर्लभ बड़ी देर तक सोचते रहे। फिर बोले—"तो क्या आप मुझे अमीर के सामने पड़ने को कहते हैं?"

"नहीं महाराज, इससे क्या लाभ ? हमें घोघाबापा और धर्मगजदेव का अनुसरण नहीं करना है।"

"तो फिर ?"

"बस, साँप मरे और लाठी न टूटे।"

"किन्तु कैसे ?"

"अमीर कुछ हमारे राज्य को तो लूटना चाहता नहीं। न यहाँ का राजा ही बनना चाहता है। वह जाना चाहता है सोमपट्टन, सो जाय। वहाँ कुमार भीमदेव का लोहा खाकर वह खेत रहा तो जय गगा। वापिस आया तो सीधा अपनी राह लेगा। इस समय हम लडते हैं तो उसका बल बहुत है। सोमनाथ से लौटने पर जय पाकर भी वह आपकी विशाल सेना का मुकाबिला नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त भीमदेव भी वहाँ लोहा लेकर जल्द नहीं पनपेंगे। इससे अमीर का यह आगमन आपके लिए वरदान है। इस सुयोग से लाभ उठाइए। महाराज, पाटन ने आपका आह्वान किया है।"

दुर्लभदेव सोच में पड गये। मन की बात कैसे कहें—यही सोचने लगे। उनके मन की बात ताडकर भरमांक ने कहा—"क्या अमीर ने अभी तक आपके पास सदेशा नहीं भेजा ? वह तो अब सुना है, आबू की उपत्यका में पडा हुआ है।"

"अमीर का सदेश मुझे मिला है। अमीर के सामने पडना मैं भी नहीं चाहता हूँ।"

"बस, बस, वह पाटन और सिद्धपुर की सलामती का वचन दे तो इतना ही बस है।"

"अच्छा तो देव, आप ही अमीर के पास मेरे दूत बनकर जायें।"

"अच्छा, कहिए क्या कहना होगा।"

"अब यह भी आप बताइए कि उससे हमें क्या कहना चाहिए।" भरमांक हँस दिये। उन्होंने कहा—"महाराज 'वचने का दरिद्रता' यह नीति का वाक्य है। राजनीति भी कहती है कि मन में चाहे जो हो, पर वाणी तो मीठी ही रहे। विशेषकर शत्रु के सम्मुख तो उसके अनुकूल ही बोलना ठीक है।"

"तो समय पर जैसा सूझे—वही कहिए। मैं पाटन का निमन्त्रण स्वीकार

करता हूँ। परन्तु आप ही को प्रधानमन्त्री बनना होगा।"

"नहीं महाराज, इस कार्य के लिए योग्य पुरुष को मैंने पाटन में रोक रखा है।"

"वह कौन ?"

"चण्डशर्मा !"

"वह तो दामोदर के गुट्ट का आदमी है।"

"कभी था। अब तो वह आपका अनुगत है। मेरी सम्मति है आप स्वयं चाहे पाटन में अभी न जायें, अपनी आन फेर दें। मैं नहीं चाहता कि लोग यह कहें कि आप ही डरकर अमीर को पाटन में ले आये हैं। इसकी बदनामी को तो हम अपने सिर से लेंगे। ब्राह्मण हूँ। पाप नहीं लगेगा।" भस्मांक हँस दिये। दुर्लभदेव भी हँसे।

"अच्छी बात है, तो आप अमीर से मिलिए। मैं पत्र और मुद्रा देता हूँ।"

भस्मांकदेव दुर्लभ का विश्वास-पत्र और मुद्रा लेकर आबू की उपत्यका में अमीर की छावनी में जा पहुँचे। अमीर ने खूब ठसक से इस ब्राह्मण का स्वागत किया। उसके लिए गुजरात की भूमि में बराबर सुयोग मिलते जा रहे थे। अमीर ने कहा—"हमारे दोस्त गुजरात के महाराज दुर्लभदेव अमीर से क्या चाहते हैं ?"

"नामदार अमीर हमारे महाराज के ऐसे ही दोस्त हमेशा बने रहें, यही उनकी इच्छा है।"

"यकीनन, हम गुजरात के महाराज के दोस्त हैं।'

'तो महाराज चाहते हैं कि सिद्धपुर और पाटन को कोई नुकसान न पहुँचाया जाय। महाराज की आज्ञा से हम पाटन में अमीर का शाही स्वागत करेंगे। तब अमीर नामदार भी पाटन की रियाया को अपनी रियाया समझ कर उसकी जान माल की सलामती का वचन दें।'

"अलहम्दुलिल्लाह, ऐसा ही होगा।"

"हमारे महाराज, यह भी चाहते हैं कि महाराज के साथ अमीर नामदार के जो कौल-करार हुए हैं, वे सभी पोशीदा ही रहें जिससे रियाया बदगुमान न हो। फिर प्रभास की वापसी में अमीर खुले दरबार हमारे महाराज को गुजरात का

राजा स्वीकार कर लें।"

'हमको मंजूर है।"

'तो जहाँपनाह, कम्बल जैसे जैसे भीगता है, भारी होता जाता है।"

'यह क्या महाराज की बात है ?"

'नहीं, इस ब्राह्मण की।"

अमीर ने हँस कर कहा—"आप हमारे बुजुर्ग हैं, आपकी बात को हम कद्र करते हैं और समझ गये हैं।'

इसके बाद अमीर ने खूब भारी भेंट देकर भस्मांकदेव को विदा किया। सब तरह कृतकृत्य होकर भस्मांकदेव पाटन लौटे।

३६ : गुजरात की राजधानी में

अमीर भस्मांकदेव का संकेत समझ गया। उसने तुरन्त छावनी तोड दी और गुजरात की शस्यश्यामला भूमि को उजाडता, राह-बाट के गाँवों को लूटता-जलाता और निरीह स्त्री-पुरुषों को तलवार के घाट उतारता झपाटेबन्द अनहिल्लपट्टन की पौर पर जा खडा हुआ। सिद्धपुर को उसने बगल में छोड दिया, आबू चन्द्रावली से भी कतरा गया। दुर्लभदेव ने उसके मार्ग में बाधा नहीं दी और विमलदेवशाह भी जैसे कान में तेल डालकर सो गये। दुर्लभदेव की तैयारियों से भयभीत पडा हुआ अमीर आगे बढने में हिचक रहा था—वह उसकी तैयारियों से उसका आश्वासन पाने पर भी भयभीत हो रहा था। अब जैसे भस्मांकदेव ने उसके दिल का कांटा ही निकाल दिया, दुर्लभदेव की अयाचित मैत्री और पाटन के निर्विरोध समर्पण उसके लिए दैवी वरदान बन गये। अब उसने एक क्षण भी खोना घातक समझा और वह ताबडतोड कूच-दर-कूच करता चला गया।

अमीर की अवाई सुन पाटन के तत्कालिन थानेदार चण्डशर्मा नगर के अवशिष्ट जनों का एक प्रतिनिधि-मण्डल बना अमीर की सेवा में पहुँचे और अत्यन्त अधीनता जताकर कहा—'पाटन में आपका अवरोध करने वाला एक भी पुरुष नहीं है, इसलिए आप नामदार से हमारी यह अर्जदाश्त है कि हमें अपनी अनुगत प्रजा समझ हमारी जान-माल की रक्षा की जाय। नगर में लूट-मार न हो। हम सब नगर निवासी आपकी शरण हैं।"

सुलतान यह सुनकर प्रसन्न हो गया। वास्तव में गुजरात की जगत्प्रसिद्ध यह समृद्ध राजधानी इस प्रकार निर्विरोध बिना प्रयास उसके हाथ लग जायगी, इसकी

उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसे सब कुछ स्वप्नवत् भान हो रहा था। वह नहीं चाहता था कि सोमनाथपट्टन पहुँचने से पहले उसके एक भी योद्धा, एक भी घोड़े को क्षति पहुँचे। यह उसका दुर्धर्ष प्रभाव, रणचातुर्य तथा असीम धैर्य ही था कि वह नान्दोल वन के विनाश को सहकर भी अपनी सेना को सुगठित कर सका। फिर भी वह अपनी उस क्षति को जानता था, और अब उसे अपनी विजय में घोर सन्देह था। इस समय यदि अकेला दुर्लभदेव ही सिद्धपुर में उसकी राह रोक लेता, या विमलदेव और भीमदेव की संयुक्त सेना अर्बुदगिरि में ही उससे मोर्चा लेती तो अमीर का निस्तार नहीं था। उसे गुजरात की ओर एक कदम उठाना मौत के मुँह में प्रविष्ट होना जान पड़ रहा था। इन सब कारणों से—इन सब अनागत भयों से मुक्त होने पर अमीर के आनन्द का पार न रहा। उसने नागरिकों की अर्ज़दाश्त स्वीकार की और खड़ी-रकाब पाटन में प्रवेश कर दर्बारगढ़ दखल कर अपने नाम का डंका बजवा दिया। फिर शुक्राने की नमाज़ पढ़ी। अपने नाम का अमल नगर में फेरकर नगरनिवासियों को अभयदान दिया और उन्हें तथा सेना को तीन दिन जश्न मनाने का हुक्म दिया।

नगरनिवासियों को मन की गहरी उदासी मन में ही छिपा कर घरों में रोशनी करनी पड़ी। अमीर के दरबार में हाजरी बजाकर भेंट-नज़र देनी पड़ी। अमीर ने यद्यपि नगर को न लूटने की आज्ञा दे दी थी, पर विजयोन्मत्त पठान और तुर्क सिपाही जहाँ जो वस्तु पाते उठाकर ले जाते। उन्हें रोकने, या उनसे दाम माँगने का साहस नगेर-जन नहीं कर सकते थे। सैनिक यह सुयोग पा नान्दोल वन के सर्वनाश की यथासम्भव क्षतिपूर्ति कर चाकचौबन्द होने लगे।

परन्तु अमीर को जश्न मनाने का अवकाश न था। वह अत्यन्त व्यस्त हो अपने जीवन की सबसे बड़ी मुहिम का सामना करने की तैयारी कर रहा था। उसका अदम्य उत्साह, असीम साहस और रणपाण्डित्य भी उसके मन से भय, शंका और द्विविधा को दूर नहीं कर सके थे। उसने बार-बार अपने सरदारों और सेनापतियों से गूढ़ परामर्श किये। कच्छ और प्रभास के चारों ओर फैले हुए अपने जासूसों को गुप्त आदेश भेजे। सब बातों पर विचार कर उसने इस समय अपने सैनिक और प्रतिनिधि पाटन में छोड़ना निरर्थक समझा। उसकी सारी ही

सफलता अब सोमनाथपट्टन की विजय पर निर्भर थी। सोमनाथ की विजय से समूचे गुजरात पर उसको विजय थी। पाटन भी उसी के चरणतल में था। उसे सूचना मिल गई थी कि प्रभास में सारे कच्छ, गुजरात, काठियावाड़ की तलवारें उसके स्वागत के लिए तैयार हैं। इसलिए वह अब इधर उधर देख ही न सकता था। उसने एक ही ठान ठानी—पहले प्रभास और पीछे कुछ और। उसने पाटन में और समय व्यर्थ खोना ठीक नहीं समझा। उसे जो कुछ उपयोगी भेंट पाटन में मिली, उसे ले, चण्डशर्मा को ही अपना प्रतिनिधि बना, और उसे नगर ही सौंप—उसने तीसरे ही दिन सूर्योदय से पूर्व सोमनाथपट्टन की ओर सवारी बढ़ाई। पाटन में एक भी म्लेच्छ नहीं रहा।

चण्डशर्मा और भस्मांकदेव ने सतोष की साँस ली। अब वे इस दुर्धर्ष शत्रु का वापसी में सत्कार करने और नगर की कठिन-से-कठिन समय में रक्षा करने के सब सम्भव प्रयत्नों में जुट गये। उन्होंने विमलदेवशाह और दुर्लभदेव से अपने सम्बन्ध कायम किये। नगर के प्रत्येक घर को इस भाँति सन्नद्ध किया कि आवश्यकता होने पर प्रत्येक घर दुर्ग का रूप धारण कर ले। इस प्रकार दुधारी मीठी तलवार की राजनीति पर दोनों ब्राह्मण अपनी योजना के ताने-बाने बुनने लगे।

पाटन में इस समय कुल तीन हज़ार पुरुष और केवल पांच सौ स्त्रियां शेष थीं। इन सब को चण्डशर्मा ने सैनिक रूप में सगठित कर दिया। आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक को शत्रु से मोर्चा किस भाँति लेना पड़ेगा—यह सब उन्हें समझाया। घरेलू पदार्थों को युद्ध-साधन कैसे बनाया जाय यह बताया। योजना बना कर व्यवस्थित रूप से पीछे हटना और आगे बढ़ना सिखाया। उनके हौसले बढ़ाये और भय, निराशा के भाव उनके मन से दूर किये। महाराज वल्लभदेव और विमलदेवशाह से यातायात-साधन तथा समाचार-वाहन के सम्बन्ध स्थापित करने की व्यवस्था की। दुर्लभदेव की एक एक गतिविधि पर दृष्टि रखी। वे प्रत्येक बात की मनचाही सूचना दुर्लभदेव को देते, उन्हें अपना राजा समझने का अभिनय करते और उनके आदेशों को मनमानी रीति पर पूरा करते।

दुर्लभदेव अब अपने को सोलह आना गुजरात का राजा समझने लगे थे। वे प्रच्छन्न रूप से एक-दो बार पाटन भी आ चुके थे। चण्डशर्मा की व्यवस्था से

व सन्तुष्ट थ। उन पर उन्हें तनिक भी सदेह न था। चण्डशर्मा की यह सीख—कि जब तक अमीर खुल्लमखुल्ला उन्हे गुजरात का राजा घोषित न करे—वे चुप ही बैठ रहें, मान ली थी।

महाराज वल्लभदेव भी उसी भाँति पाटन में प्रच्छन्न रूप से समय-समय पर आकर इस कुटिल ब्राह्मण से परामर्श कर जाते तथा राजकोष की गुप्त सहायता ल जाते थ। इस प्रकार पाटन में अमीर की वापसी के स्वागत की तैयारियाँ हो रही थी। यह नही कहा जा सकता था कि पाटन अमीर का स्वागत करेगा या भीमदेव का अथवा दुर्लभदेव का। सब कुछ सोमनाथपट्टन के परिणाम पर ही निर्भर था।

४० : अन्तिम नृत्य

उसी दिन ज्योतिलिंग का एक सहस्र घडे गंगाजल से रुद्राभिषेक हुआ। एक सहस्र घृत के दीप महालय में जलाये गये। एक सहस्र शुभ्र मालाएँ और बिल्वपत्र ज्योतिलिंग को समर्पित किये गये। देवार्चन के बाद रत्नमण्डप में नृत्य हुआ। नृत्य केवल चौला ने ही किया।

पहले ही दिन जब चौला ने कुमार भीमदेव को देखा था तभी उसने भीमदेव की सलौनी मूर्ति को चुपचाप हृदय में धारण कर लिया था। वाणावलि भाएगे—ऐसी वह प्रतिक्षण प्रतीक्षा कर रही थी। जब वाणावलि की धूम मची, तो वह सब की दृष्टि बचाकर स्त्रियों के झुरमुट में, सबसे पीछे खडी हो धड़कते हृदय से, मन्दिर के कोट के एक कगूरे पर से नेत्रों को तृप्त कर रही थी। उस श्याम-सलौनी मूर्ति को राजगज पर देख उसके शरीर का प्रत्येक रोम नृत्य करने लगा।

और अब, जब वह देवता के सम्मुख नृत्य करने आई तो उसकी सुषमा ही कुछ और थी। उसने आचूड शुभ्र शृंगार किया था। उस शृंगार में वह शरद् पूर्णिमा की चाँदनी की प्रतिमूर्ति-सी लग रही थी। उसके कण्ठ और कटिप्रदेश में बडे-बडे मोतियों की माला और मेखला थी। मस्तक पर उज्ज्वल हीरों से जडा मुकुट था। इन सब आभरणों में वह स्वयं हीरे की कनियों की एक दीप्तिवान् राशि-सी लग रही थी। उस दिन उसकी सम्मोहनी मुद्रा देख उपस्थित राजा, महाराजा, छत्रधारी, ठाकुर, सरदार, सैनिक सब कोई मन्त्र-मुग्ध से हो गये। कोई मुँह से वाह भी न कह सका।

युवराज भीमदेव की भी ऐसी ही स्थिति थी। वे भी प्रथम दर्शन में ही उसकी

मधुर मूर्ति को हृदय में धारण करके जो ले गये सो आज उसे सम्मुख देख उन्होंने अपने नेत्रों को तृप्त कर लिया। वे नेत्रों के द्वारा जैसे उस सुषमा, सुख और शोभा की अजस्र धारा को पीने लगें। उसी रस-पान में वे आत्मविस्मृत हो गये।

उन्हें होश तब हुआ जब गग सर्वज्ञ ने नृत्य बन्द करने का आदेश दिया। सर्वज्ञ का आदेश पाते ही चौला नतवदन हो देववन्दन कर वहीं भूमि पर लोट गई उसने मन-ही-मन प्रार्थना की—"हे देव, मेरे इस आराध्य की रक्षा करना।"

उसी क्षण गग सर्वज्ञ ने जलद गम्भीर स्वर में कहा—"आज आप सब अन्तिम बार भगवान सोमनाथ का दर्शन कर लीजिए। अब से जब तक गजनी के अमीर का आनक दूर न होगा, देवपट बन्द रहेंगे। आप दर्शन न कर सकेंगे। केवल मैं *एकमात्र देवदास देवार्चन करूँगा, आज मैं इस देवधाम और देवनगर के सब* अधिकार गुर्जर-युवराज भीमदेव को सौंपता हूँ। आज नगर और महालय पर उन्हीं का अबाध शासन चलेगा। आप सब लोग पूर्ण अनुशासन से इस विपत्काल में उनके आदेशों का पालन करें। युवराज भीमदेव को मैं आज देवाविष्ट करता हूँ। अब से पुनपावन भगवान सोमनाथ का निवास युवराज के शरीर में रहेगा। युवराज भीमदेव ही अब से इस सयुक्त धर्म-सेना के एकच्छत्र महासेनापति हैं। सो इनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन आप भगवान सोमनाथ की आज्ञा समझकर कीजिए।"

गग सर्वज्ञ की इस घोषणा के उत्तर में उपस्थित जनता ने गगनभेदी जयनाद किया—"महाराज भीमदेव की जय" "महाधर्म सेनापति की जय," "भगवान सोमनाथ की जय।"

इसी जय-जयकार के बीच खड़े होकर भीमदेव ने एक संक्षिप्त भाषण दिया—

"सद्गृहस्थो, महाप्रभु सर्वज्ञ ने जो भार मुझे सौंपा है वह मैं प्राणान्त उद्योग करके वहन करना अपना धर्म समझूँगा। हम पर घोर धर्म-संकट आया है। यह गजनी का दैत्य जो अपने घोड़ों की टापों से हमारे धर्म और देश को हर बार रौंदता हुआ केवल स्वर्ण और मणि ही नहीं बल्कि हमारी देव-सम्पदा का भी हरण करता है यह उसका दोष नहीं, हमारा ही दोष है। हमारी ही कायरता, फूट और स्वार्थ ने उस धर्मद्रोही को आजतक सफल बनाया है। आज मैं चौलुक्य भीमदेव

अपने प्राणों की शपथ ले करके कहता हूँ कि जब तक मेरे रक्त की एक बूंद मेरे शरीर में रहेगी, तब तक मैं इस दैत्य का दलन करूंगा। और यह मैं आप ही के सहयोग और सहायता के बल पर कह रहा हूँ।"

एक बार फिर गगनभेदी जय-जयकार हुआ। सर्वज्ञ ने हाथ के संकेत से सबको निवारण किया। भीमदेव ने कुछ क्षण शान्त रहकर कहा—"अब आज से यह प्रभासतीर्थ—प्रभास दुर्गाधिष्ठान हुआ। सोमनाथ महालय और प्रभासपट्टन नगर दोनों ही की व्यवस्था सैनिक नियमों के आधार पर दुर्ग की भाँति की जायगी। मैं आशा करता हूँ कि सोमनाथ महालय की रक्षा और सैनिक व्यवस्था के लिए जैसा आदेश आप लोगों को दिया जायगा उसे आप यथावत मान्य कर हमारी शक्ति की वृद्धि करेंगे।"

"हमारी सबसे पहली आज्ञा है कि भगवान सोमनाथ की रक्षा के लिए रक्त-दान देने की सामर्थ्य जिस तरुण में हो, वही शस्त्र धारण करके प्रभास-दुर्गाधिष्ठान में रहे, जो कोई इन तथा समय-समय पर दिये गये आदेशों का उल्लंघन करेगा, वह प्राण-दण्ड का भोग भोगेगा। अब आप सब कोई शान्त भाव से अपने-अपने आवास को चले जायें।'

इस बार जनता ने जयनाद नहीं किया। सब लोग गम्भीर मुद्रा में उठकर चुपचाप चले गये। मन्दिर का जनाकीर्ण रत्न-मण्डप देखते-देखते जनशून्य हो गया।

४१ धर्मसूत्र

सभा-मण्डप में रह गये गग सर्वज्ञ जो इस समय शान्त, निर्वाक्, निश्चल, समाधिस्थ, निमीलित-नेत्र बैठे थे और रह गये बाणावलि भीमदेव—जो वीरासन से उनके सम्मुख बैठे थे। चौला-गग सर्वज्ञ के चरणतल के पास बैठी रह गई, गगा गर्भद्वार के बीचोबीच प्रस्तर मूर्ति-सी खड़ी थी। रत्न-मण्डप में ये चारों ही प्राणी उस समय निर्वाक्, निस्पन्द, मूक, मौन कुछ क्षण बैठे रहे।

कुछ देर के बाद सर्वज्ञ ने निमीलित-नेत्र खोले। व्याघ्र-चर्म से वे उठ खड़े हुए। उन्होंने भीमदेव से मन्द स्वर में कहा—"आ पुत्र" और वे गर्भगृह में चले गये। भीमदेव ने चुपचाप उनका अनुसरण किया, उनके पीछे चौला ने। गगा ने उन्हें मार्ग दिया, पीछे वह भी गर्भगृह में चली गई। सर्वज्ञ ने पीछे लौटकर कहा—"गगा, तू गगनराशि को यहीं ले आ और फिर गर्भगृह का द्वार बन्द कर दे।"

गगा ने ऐसा ही किया। ठीक ज्योतिर्लिंग के नीचे एक व्याघ्रासन पर सर्वज्ञ बैठे। उन्होंने सम्मुख भीमदेव को बैठने का आदेश दिया। चौला निस्पन्द खड़ी रही। सर्वज्ञ फिर समाधिस्थ हो गये।

इसी प्रकार दो घड़ी समय बीत गया। सर्वज्ञ ने प्रकृतिस्थ हो नेत्र खोले। उनके होठों पर हास्य की एक रेखा आई और उन्होंने मृदु स्वर में कहा—"केवल इस गर्भगृह और देवता पर तेरा अधिकार नहीं रहेगा महासेनापति। यहाँ केवल मैं देवनिमित्त रहूँगा। इस क्षण जो गर्भगृह के द्वार बन्द हुए सो ऐसे ही रहेंगे।"

भीमदेव ने बद्धांजलि हो कहा—"गुरुदेव! देव-रक्षण तो करना ही होगा।"

"नहीं, तुम केवल देवस्थान की रक्षा करो पुत्र।"

"देवरक्षा भी होनी चाहिए।"

"देवता तो नित्य रक्षित हैं पुत्र।"

"फिर भी सुरक्षा के विचार से देवता का स्थानान्तरित होना आवश्यक है।"

"सर्वदेशस्थ, सर्वव्यापी देवता को कैसे स्थानान्तर करोगे पुत्र ?"

"मेरा अभिप्राय ज्योतिर्लिंग से है प्रभु।"

"पार्थिव लिंग-शरीर से जब ज्योति अन्तर्धान हुई, तब देवाधिष्ठान वहाँ कहाँ रहा ? देव-प्रस्थान तो हो चुका।"

"कब ?"

"आज—अभी।"

"तो अब यह लिंग देवता नहीं।"

"वही, देवता का पार्थिव शरीर है। जैसे मृत पुरुष का निष्प्राण शरीर रह जाता है।"

"देवता कहाँ गये ?"

"अन्तर्धान हो गये।"

"किस लिए ?"

"धर्मद्वेषी शत्रु के विनाश के लिए।"

"कहाँ ?"

"किसी पुण्य शरीर में।"

"किस प्रकार ?"

"तेरे ही शरीर में देव का वास हुआ है पुत्र। तू अब शिवरूप है, जा देव-द्वेषी का संहार कर।"

"किन्तु लिंग-शरीर ?"

"वह अचल है, यहीं रहेगा।"

"यदि म्लेच्छ उसकी मर्यादा भंग करें तो ?"

"उसका रक्षक मैं हूँ, मैं अपना कर्तव्य पालन करूँगा।"

"लेकिन आप यहाँ न रह सकेंगे ?"

"भली भाँति रह सकूँगा," गंग सर्वज्ञ ने हँसकर कहा—"महासेनापति क्या देवसेवक पर भी अनुशासन चलाएंगे ?"

भीमदेव भी हँस दिये। उन्होंने कहा—"क्यों नहीं, अब तो यह शरीर देवाधिष्ठित हो गया। अब यह आपके चिरकिंकर भीमदेव नहीं—देवदेव महादेव बोल रहे हैं।"

"तो देव जानते हैं कि ऐसी स्थिति में देवता के पार्थिव शरीर की रक्षा के सम्बन्ध में मेरा क्या कर्तव्य है। तुम सेनापति, इतना भी नहीं जानते कि नगण्य पुरुष का भी निष्प्राण शरीर जीवित शरीर की अपेक्षा अधिक सम्माननीय होता है, फिर यह तो देवता का लिंग-शरीर है।"

"किन्तु प्रभु, उसने अनेक देवस्थानों को भंग किया है, अनेक देवमूर्तियों को अपमानित किया है।"

"तो पुत्र, वह उसका अपना पुण्य, पाप, निष्ठा, आचार है, इसका लेखा-जोखा हम कहाँ तक करेंगे।"

"तब हमें क्या करना होगा ?"

"केवल कर्तव्य-पालन।"

"किसके प्रति ?"

"देवस्थान के प्रति। तुम प्राण रहते इसकी रक्षा करो, और मेरा देवलिंग के प्रति, प्राण रहते मैं इसकी प्रतिष्ठा रखूँगा।"

"इसके बाद ?"

"इसके बाद जो देवेच्छा।"

"किन्तु······।"

"नहीं पुत्र, देवेच्छा में किन्तु परन्तु नहीं।"

"तो लिंग-शरीर यहीं रहेगा ?"

"निश्चय।"

"और आप।"

"जहाँ देवमूर्ति वहीं देव-सेवक।"

"यदि दैव-विपाक से म्लेच्छ हमें पराभूत करें ?"

"तो देवेच्छा।"

"तब हम ?"

"जैसे अब तैसे तब, प्राणान्त अपना कर्तव्यपालन करेंगे।"

"जैसी प्रभु की आज्ञा।"

गग नेत्र बन्द कर समाधिस्थ हो गये। इसी समय गगन को संग ले गगा गर्भ-गृह में आई। सर्वज्ञ ने नेत्र खोले—उन्होंने देखा—गगन ने सम्मुख आ साष्टांग दण्डवत किया।

"गगन", सर्वज्ञ ने अकम्पित वाणी से कहा।

गगन बद्धांजलि सर्वज्ञ के सम्मुख बैठा। सर्वज्ञ ने कहा—"मैं आज इसी क्षण तेरा पट्टाभिषेक करता हूँ।" और उन्होंने देवस्नात गंगोदक की धार उसके मस्तक पर डालकर उसका अभिषेक किया। बड़ी देर तक वे मन्त्रोच्चारण करते रहे। फिर उन्होंने लकुलेशदेव की पादुका और लिंग उसे सौंपकर कहा—"गगन! अब तू अभी—इसी क्षण मरुकच्छ को प्रस्थान कर। अब से तू ही पाशुपत आम्नाय का अधिष्ठाता है, देवता और सेनापति के सम्मुख मैंने तेरा यह पट्टाभिषेक किया।" फिर कुछ ठहरकर उन्होंने भीमदेव की ओर देखा और कहा—"तुम पाशुपत आम्नाय के अधिष्ठाता के संरक्षक और साक्षी हो—वत्स।"

"हाँ महाराज", भीमदेव ने बद्धांजलि हो कहा।

"और चौला तू भी।"

"चौला ने हाथ जोड़े।"

गगा ने कहा—"मैं नहीं प्रभु।"

'नहीं', गग ने फिर नेत्र बंद कर लिये। गगन के विदा करने का संकेत कर गग ने भी नेत्र पोंछे, और कहा—"जा पुत्र, शुभ ते पन्थान' स्यु।"

गगन भूप्रणिपात कर आँसू बहाते बहुत देर तक सर्वज्ञ के चरणों में पड़े रहे।

इसके बाद फिर सर्वज्ञ बहुत देर तक नेत्र बन्द किये निश्चल, निर्वाक् बैठे रहे। फिर उन्होंने मन्द स्वर से भीमदेव से कहा—"अब पुत्र, कह तूने क्या योजना स्थिर की है।"

"प्रभु, राजधानी का सम्पूर्ण शस्त्र और अन्न-भण्डार प्रभास में आ रहा है।

महाराज वल्लभदेव खम्भात पहुँच गये हैं। वे यथासाध्य अन्न और शस्त्र एवं सैनिक वहाँ से भेजने की व्यवस्था कर रहे हैं। आठ भारवाहक और तीन यात्रा-जहाजों की व्यवस्था हमारे पास है। अब हमें प्रभास से अनावश्यक स्त्री-पुरुषों को सुरक्षित खम्भात में पहुँचा देना है। सो उसकी व्यवस्था में महता संलग्न हैं। वे पहले वणिक्-व्यापारियों को उनके धन और माल सहित कल प्रात काल रवाना कर देंगे। वापसी में यही यान उधर से आवश्यक सामग्री ले आयेंगे। पीछे स्त्री, बालक, वृद्ध और अनावश्यक व्यक्ति भी भेज दिये जायेंगे। सम्भवत परसों तक इस निष्कासन और सैनिक-सन्निवेश की प्रस्थापना हो जायगी।

"साधु।"

"किन्तु मन्दिर का धन-रत्न भी सुरक्षित होना चाहिए।"

"यह सर्वथा सम्भव नहीं है, परन्तु आंशिक रूप से जो-जो ले जाने योग्य है उसे यथास्थान ले जाओ।" यह कहते-कहते गग सर्वज्ञ गहरी चिन्ता में मग्न हो गये। भीमदेव भी कुछ सोचने लगे।

"किन्तु महालय की स्त्रियाँ?" एक छिपी दृष्टि चौला पर डालते हुए भीमदेव बोले। चौला अभी तक निश्चल भाव से सारा वार्तालाप सुन रही थी। अब साँस रोककर भीमदेव के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

सर्वज्ञ ने कहा—"उन्हें भी खम्भात जाना होगा पुत्र।" फिर उन्होंने गंगा की ओर देखकर कहा—"गंगा, यह व्यवस्था तू कर।"

"किन्तु गंगा का स्थान तो यह है प्रभु।" गंगा अभी तक एक खम्भे के सहारे खड़ी सारा वार्तालाप सुन रही थी। अब उसने स्थिर कंठ से ये शब्द कहे—और आगे बढ़कर गग सर्वज्ञ के दोनों चरण गोद में लेकर उनपर अपने होंठ स्थापित कर दिये।

बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ होकर सर्वज्ञ ने गंगा के सिर पर हाथ रखकर कहा—"गंगा, यह तू क्या कर रही है, सावधान हो।"

"मैं सावधान हूँ, आपका स्थान देवता के चरणों में है तो मेरा स्थान आपके चरणों में है। आप देवता के सेवक हैं और मैं देवदासी हूँ। अब मैं इस काल कौनसी लाज करूँ, बहुत हुआ, जन्म-भर जलती रही, अब मेरी सद्गति का समय

सन्निकट है सो मैं अब उस सुयोग को छोड़ूँगी नहीं।"

गग निरुत्तर हुए। उनके होंठों पर हास्य और आँखों में जल फैल गया। उन्होंने कहा—"गंगा, मैं तेरी किसी भी इच्छा में बाधक नहीं होऊँगा, जैसा तू चाहे वही कर।"

बड़ी देर तक सर्वज्ञ निस्पन्द बैठे रहे। उनकी कूटस्थ दृष्टि देर तक अतीत के चित्रों को देखती रही और गंगा अपनी आँखों से अविरल अश्रु बहाती रही। युवराज भीमदेव की आँखें सजल हुईं। हल्की सिसकी सुनकर भीमदेव और सर्वज्ञ दोनों ही ने आँखें उठाकर देखा तो एक खम्भे से चिपकी चौला सिसक-सिसक कर रो रही थी। एक प्रश्न भीमदेव के होंठों पर आया, परन्तु वाणी जड़ हो गई। उनके नेत्र भी इधर-उधर डोलायमान होकर पृथ्वी पर झुक गये।

गग ने स्नेहार्द्र स्वर में आसन से उठकर कहा—"भीमदेव पुत्र, यहाँ आ और तू भी पुत्री चौला। दोनों आओ।" वे दोनों को ज्योतिर्लिङ्ग के सान्निध्य में ले गये। कम्पित चरणों से चलकर चौला भीमदेव के पार्श्व में खड़ी हो गई। उसका सर्वाङ्ग काँप रहा था। बड़ी देर तक सर्वज्ञ ध्यानस्थ हो देवता के सम्मुख खड़े रहे। फिर स्थिर कंठ से कहा—"आगे बढ़ो युवराज, और तुम भी चौला।"

दोनों ज्योतिर्लिङ्ग के निकट मन्त्रायण में जा खड़े हुए। वहाँ एकाएक चौला का हाथ भीमदेव के हाथ में देकर उस पर मन्त्र पूत, जल और बिल्व फल रख सर्वज्ञ ने कहा—"पुत्र भीमदेव, आज तुम देवाविष्ट सत्व हो—तुम्हारी सेवा के लिए यह देवदासी चौला मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ। यह तुम्हारे ही समान उच्च वंशोद्भव राजकुल की कन्या है। इसकी रक्षा और सम्मान करना और पुत्री चौला, यह साक्षात् शिवरूप सत्व भीमदेव तेरी श्रद्धा, पूजा और सेवा का पात्र है, इसी के माध्यम से तू ने अभी से अपनी श्रद्धा, पूजा, देवार्पण करना। अब तुम अभिन्न हो। धर्मसूत्र में बद्ध हो।"

चौला पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगी। भीमदेव अवाक् रह गये। एक अनिर्वचनीय सुख से अभिभूत होकर वे गग के चरणों में झुक गये। चौला अर्द्ध-मूर्च्छित हो पृथ्वी पर वहीं देव-सान्निध्य में गिर गई।

४२ : प्रभास-दुर्गाधिष्ठान

भीमदेव ने नगर का भार बालुकाराय को सौंपा। मन्दिर की रक्षा का भार जूनागढ के राव को दिया गया। मन्दिर का धन-रत्न, कोष और भीतरी व्यवस्था मकवाणा के सुपुर्द हुई। दामोदर महता को गुप्तचर-विभाग और सूचना-विभाग सौंपा गया। रसद और व्यवस्था पतरी के ठाकुर को और प्रभासपट्टन के जलतट की रक्षा कम्गलाखाणी के सुपुर्द की गई। सम्पूर्ण-संयुक्त धर्मसैन्य का भार बाणावलि ने स्वयं लिया।

बालुकाराय ने तुरन्त नगर में सैनिक व्यवस्था घोषित कर दी और तुरन्त ही निष्कासन-कार्य प्रारम्भ हो गया। नगर-व्यापारी, सेठ-साहूकार अपना-अपना मालमत्ता, धन, रत्न लेकर पुत्र-परिजन सहित खम्भात जाने को ठठ के ठठ जहाज पर आने लगे। तीन प्रहर दिन बीतते-बीतते यह कार्य समाप्त हो गया। उसी दिन रात को पट्टन के सम्पूर्ण ब्राह्मण-परिवार भी रवाना कर दिये गये। उन्हीं के साथ सब बालक और स्त्रियाँ भी। बहुत नगर-जन स्थल-मार्ग से इसी दिन चले गये।

आठ प्रहर में नगर का रूप ही बदल गया। सभी सूने घरों में सैनिकों ने अपने अड्डे जमा लिये। स्थान-स्थान पर मोर्चेबन्दी होने लगी। प्राचीन तट, पुल, खाई, परकोट सभी का सत्कार हुआ। सर्वत्र ही प्रहरियों की नियुक्ति हुई। नगर में एक भी स्त्री, एक भी बालक दृष्टिगोचर नहीं होता था। हाट-बाट में शस्त्रों के बनाने के कारखाने देखते-देखते खड़े हो गये। स्थान-स्थान पर योद्धा अपनी अपनी तलवारों की धार सान पर चढ़ाने लगे। वातावरण में वीर रस

का प्रादुर्भाव हो गया। लोग बेसब्री से देवभजक गजनी के दैत्य की प्रतीक्षा करने लगे।

यह सारी व्यवस्था करके महासेनापति ने सम्पूर्ण संयुक्त सैन्य की परेड कराई। सारी सेना को एकत्र किया गया। उसमें बारह हज़ार काठियावाड के बाँके योद्धा अपने गठीले टट्टुओं पर सवार थे। सात हजार गुजरात की विकट पहाड़ियों की गुफाओं में नंगे रहने वाले भील हाथ में भाला और तीरकमान लिये आये थे। तीन हज़ार कोली-ठाकुरों की ग्रामीण सैन्य गड़ासे और फरसों से लैस थी। दस हज़ार राजपूत क्षत्री मारवाड-सिंध और आस-पास के इलाके से आये थे, एवं अठारह हजार गुर्जर सेना बाणावलि की कमान में थी। इस प्रकार प्रभास के प्रांगण में पचास सहस्र के दल का जमाव था।

ज़री से मण्डित जीनवाले सफ़ेद घोड़े पर सेनापति के ठाठ में बाणावलि भीमदेव छत्र, चमर धारण कर उपस्थित हुए। उनका चपल अश्व हवा में उछल रहा था। उसके मुकुट, कान, कण्ठ और जीन पर जड़े मणि, सूर्य की धूप में चमक रहे थे। महासेनापति भीमदेव ने झिलमिल कवच धारण किया था। उनके तेजस्वी श्यामल चेहरे पर तेज झलक रहा था। सम्मुख खड़े हिन्दू दलबल को देखकर उन्होंने तलवार म्यान से निकालकर जयघोष किया—"जय ज्योतिर्लिंग सोमनाथ।" एक साथ ही सहस्रों कण्ठों से "जय ज्योतिर्लिंग" का गगनभेदी स्वर निकला जैसे समुद्र में तूफ़ान आ गया हो।

४३ : विप्रलम्भ

महालय के अन्तरायण में दूसरे खण्ड पर एक एकान्त प्रकोष्ठ था। उसके सामने खुली छत थी। छत पर से सम्पूर्ण महालय का, महालय के उस ओर लह-राते समुद्र का क्षीण कलेवरा हिरण्या नदी का सब दृश्य दीख पड़ता था। बाणा-वलि भीमदेव ने इसी प्रकोष्ठ में अपना डेरा डाला था।

अभी संध्या होने में देर थी। सेना की परेड से निवृत्त हो, धूप और थकान से क्लांत, शिथिल-गात भीमदेव अपने आवास में लौटे। उनका बूढ़ा विश्वासी सेवक भीमा उपस्थित हुआ। उसने युवराज के शस्त्र और वस्त्र उतारने में सहायता दी। एक गिलास शीतल जल पीकर भीमदेव ने कहा—"भीमा, अब मैं थोड़ा सोना चाहता हूँ, देख, कोई मुझे डिस्टर्ब न करे।" बूढ़े सेवक ने सिर झुकाया और द्वार बन्द करता हुआ बाहर चला आया। थोड़ी देर में महाराज भीमदेव शीतल पवन के झकोरों की थपकियाँ खाकर मीठी नींद में सो गये। बहुत देर वे सोते रहे। एकाएक एक मृदुल सुखद स्पर्श से उनकी नींद टूट गई। उन्होंने आँखें खोल और अचकचाकर देखा—जैसे उनके चरण-तल से फूलों का ढेर स्पर्श कर रहा हो। चौला उनके दोनों चरणों को आलिंगन में भर, निमीलित-नेत्र अपने दोनों गर्म होंठ उनके चरण-नख पर स्थापित किये अधोमुखी पड़ी थी।

उन्होंने हड़बड़ाकर दोनों हाथ पसार दिये। उनके चरण-तल का तल्प भाग आँसुओं से भीग गया है—यह उन्होंने देखा। प्रेम, आवेश और आनन्द से अभि-भूत होकर उन्होंने चौला को अंक में भरकर कहा—"प्राण-सखि, रोती क्यों हो?"

परन्तु चौला की वाणी जड़ हो गई। स्वर उसके कण्ठ से नहीं फूटा। भीम-

देव ने अत्यंत मृदुल भाव से आश्वासन देकर बारम्बार कहा—"कह, कह, रोने का कारण क्या है ?"

चौला के होठ खुले। उसने कहा—"म म——मैं——मैं नही जाऊँगी, मुझे यही, चरण-तल में आश्रय दीजिए।"

"पर तुम्हें भेज कौन रहा है ?"

"सर्वज्ञ प्रभु की आज्ञा है। वे मुझे खम्भात जाने का आदेश दे चुके है।"

"किन्तु ······" भीमदेव विचार में पड गये।

चौला ने कहा—"आप उनसे कहिए—उन्हें रोकिये" और उसकी हिचकिया बँध गई।

"तो गगा से कहो, वह सर्वज्ञ से निवेदन कर देगी।"

"कहा था।"

"फिर ? गगा ने सर्वज्ञ से कहा ?"

"नही।"

"क्यो ?"

"सर्वज्ञ समाधिस्थ है, निवेदन असभव है।"

"तब ?"

"आप आज्ञा दीजिए। सेनापति ने मुझे ले जाने को चर भेजे है, उन्हे निवारण कीजिए।"

"किन्तु······" वे विचार में पड गये। चौला चुपचाप आँसू बहाती रही। भीमदेव ने कहा—"देखूं, यदि सर्वज्ञ······" वे उठकर जब कक्ष से बाहर निकले तो द्वार पर गंगा खडी थी। गगा को देखकर उन्होने हँसकर कहा—

"देखा, चौला रो रही है।"

"क्यो ?"

"वह जाना नही चाहती।"

"उसे जाना होगा, महाराज।"

"किन्तु—"

"सर्वज्ञ का आदेश है।"

"उनसे कहो, इसे रहने दें।"

"कहना असम्भव है।"

"क्यों?"

"वे समाधिस्थ हैं।"

"समाधिभंग होने पर।"

"समाधि अभी भंग नहीं होगी। उनका आदेश टाला भी नहीं जा सकता है। चौला को जाना ही होगा।"

भीमदेव असमंजस में पड गये। फिर उन्होंने हँसकर कहा—"मैं सर्वाधिप सेनापति हूँ, यदि मैं आदेश दूँ।"

"सर्वज्ञ के आदेश को रद्द करके?"

"नहीं, नहीं, परन्तु·······" वे फिर विचार में पड गये। गंगा भीतर गई और सूखी वाणी से कहा—"उठ चौला, विलम्ब न कर, यान जाने में अब विलम्ब नहीं है, सेनापति प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

चौला ने कातर दृष्टि से भीमदेव की ओर देखा। भीमदेव असंयत हुए, उन्होंने कहा—"गंगा, चौला को रहने दे, कुछ हर्ज नहीं। मैं समाधिभंग होने पर सर्वज्ञ से निवेदन कर दूँगा।"

"यह असम्भव है महाराज। सर्वज्ञ का आदेश टाला नहीं जा सकता।"

"तो सर्वज्ञ की समाधि भंग होने तक यान को रोका जाय, मैं बालुकाराय से कहता हूँ।"

इसी समय बालुकाराय ने प्रविष्ट होकर चौला को लक्ष्य करके कहा—"बहुत विलम्ब हो रहा है।"

भीमदेव ने कहा—"इसे रहने दो बालुक, मेरा आदेश है।"

बालुकाराय ने सिर झुकाया। इसी समय दामोदर महता ने बालुकाराय के पीछे से निकलकर कहा—"नहीं महाराज, उन्हें जाना ही होगा।"

"किन्तु सर्वज्ञ की समाधिभंग होने तक·········"

"मैंने सर्वज्ञ से निवेदन किया था महाराज, परन्तु उन्होंने फिर आदेश दिया कि उसे निश्चय जाना होगा।"

भीमदेव ने देखा—चौला स्थिर चरणों से उठी, उनके चरण छुए और गंगा की छाती से जा लगी। फिर बिना पीछे देखे सेनापति के पास जाकर कहा—"चलिए।"

आगे-आगे सेनापति बालुकाराय, उसके पीछे चौला और उसके पीछे दामोदर शृता कक्ष से बाहर हो गये।

भीमदेव की एक-एक रक्तबिन्दु चीत्कार कर उठी। "नहीं, नहीं, ठहरो, मत जाओ। ओ प्राणसखि, प्राणाधिक, कुसुमकोमल, चौला, चौला," वे उन्मत्त की भाँति हाथ पसारकर द्वार की ओर दौड़े।

परन्तु गंगा ने उन्हें रोककर कहा—"मेरे महाराज, आपकी एक मर्यादा है, फिर महाप्रभु सर्वदर्शी हैं, उसकी सुरक्षा सर्वोपरि है, विचार कीजिए।"

भीमदेव आहत पशु की भाँति शय्या पर गिरकर छटपटाने लगे। छद्मवेषी सुलतान का वह असियुद्ध, चौला पर उसकी आसक्ति, यह सब दृश्य उनकी दृष्टि में घूम गया। सर्वज्ञ ने जो उसका समर्पण उन्हें किया है, उसे स्मरण कर उन्हें रोमांच हो आया। उनके मुँह से अस्फुट स्वर निकला—'वह मेरी है, वह मेरी है, परन्तु यह ठीक है उसे सुरक्षित होना ही चाहिए।"

गंगा ने निकट आकर कहा—"हाँ महाराज, वहाँ उसकी सुरक्षा और सुख-सुविधा के लिए सर्वज्ञ ने विशेष आदेश दे दिये हैं। आप निश्चिन्त होकर आराम कीजिए।"

उसने अपनी कोमल बाहु का सहारा दे महाराज भीमदेव को शय्या पर लिटा दिया और दुकूल उनके अंग पर डालकर चुपचाप कक्ष से चली गई।

४४ : अभिसार

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। मार्ग जन-शून्य थे। शोभना को परिचित संकेत-ध्वनि सुनाई दी। उसने चुपके से पीछे की खिड़की खोलकर देखा—एक छाया-मूर्ति दीवार से सटी खड़ी थी। वह हलके पैरों सीढ़ी उतर कर नीचे आई और धीरे से द्वार खोल दिया। शोभना ने कहा—

"आज इतने दिन बाद आकर सुध ली।"

"यह बात नहीं शोभना, म दूर चला गया था।"

"दूर कहाँ?"

"अभी मत पूछो, भेद की बात है।"

"नहीं, बता दो।"

"मैं अमीर के पास गया था।"

"क्या अमीर के पास?" शोभना का मुँह भय और आशंका से फैल गया। उसके मुँह पर हाथ रखते हुए फ़तहमुहम्मद ने कहा—"हाँ शोभना, पीर ने मुझे भेजा था।"

"तुमने अमीर को देखा?"

"अमीर ने मुझे प्यार से थपथपाया और कहा—बरखुरदार, तुम तो जैसे मेरे एक होनहार सिपहसालार हो।"

"अमीर ने यह कहा?" शोभना की आँखों में जैसे आनन्द नाचने लगा।

"यही नहीं, उसने मुझे एक टुकड़ी फौज का सरदार बनाया है।"

"सच?"

"देखना अब मेरी तलवार के जौहर।"

"किन्तु देव, क्या तुम धर्म के विरुद्ध तलवार उठाओगे ?"

"धर्म, प्यारी शोभना, वह धर्म जिसने तुम जैसी कुसुम-कोमल, अमल, धवल, रमणी-रत्न को वैधव्य के दुर्भाग्य से बाँध रखा है, और मेरे उछलते हृदय को लातों से दलित किया है। देखा नहीं था जब तुम्हारे पिता मेरे मन्त्र-पाठ करने पर तलवार लेकर मारने दौड़े थे—तब किसी ने मुझ पर दया की ? सभी ने कहा—मारो साले शूद्र को, वेद पढ़ता है नीच, अधर्मी। अब उस धर्म की तुम अभी तक दुहाई देती हो ?"

"किन्तु देव, वह हमारे बाप-दादों का धर्म है।"

"किन्तु हमारे बेटे-पोतों का धर्म ऐसा होगा, जहाँ सब समान होंगे, कोई छोटा-बड़ा न होगा। जहाँ तुम रानी और मैं राजा होऊँगा, तुम्हें क्या कुछ एतराज है ?"

"नहीं, मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकती। मैं कोई दूसरी बात सोच ही नहीं सकती। तुम जैसा ठीक समझो करो, मैं तुम्हारी हूँ।"

"तो प्यारी शोभना, तुम निश्चिन्त रहो, हम दोनों ही इस धर्म की गुलामी से मुक्त होकर जीवन का फल-लाभ करेंगे। खैर, अब यह कहो यहाँ का क्या हाल-चाल है, देखता हूँ सारा पट्टन ही खाली हो रहा है। सब सेठिए, व्यापारी पट्टन से बाहर चले गये हैं—चारों ओर के राहबाट सैनिकों ही से पटे पड़े हैं।"

"तुम्हें नहीं मालूम, बाणावलि भीमदेव सर्वाधिपति हुए हैं। पाटन में इस समय एक लाख तलवारें अमीर का स्वागत करने को तैयार बैठी हैं।"

"तो क्या पर्वाह, इन तलवारों के पीछे दासता, घमण्ड, स्वार्थ, दुराचार, पाखण्ड जो छिपा हुआ है। ये एक लाख तलवारें अमीर की उस अकेली तलवार का भी मुकाबिला नहीं कर सकती जो केवल एक ईश्वर को मानता है, जिसका एक धर्म, एक जाति, एक ईश्वर और एक ईमान है। जहाँ छोटे-बड़े सब बराबर हैं।"

"यह तुम क्या कह रहे हो, देव ! क्या सचमुच अमीर सोमनाथ को भग करेगा ?"

"नहीं तो क्या ? उस दिन जब मैंने सोमनाथ की पौर में खड़े होकर दर्शन-

करने चाहे थे, तब मुझ शूद्र को धक्के देकर खदेड़ दिया गया था। अब मैं ही अपनी इस तलवार से इस सोमनाथ के दो टुकड़े न कर डालूँ तो तुम्हारे प्रेम का दम न भरूँ।"

"नहीं, नहीं, देव! ऐसी भयानक बात मत कहो। पैरों पड़ती हूँ। भगवान सोमनाथ देवाधिदेव हैं, संसार के स्वामी हैं।"

"देखा जायगा, अभी तो मैं तुमसे एक खास मामले में सहायता लेने आया हूँ।"

"कहो।"

"मेरा काम तुम्हें करना होगा।"

"करूँगी।"

"पर काम मेरा नहीं अमीर का है।"

"अमीर का क्या काम है?"

"उसे पूरा करने ही पर हमारा भाग्योदय निर्भर है।"

"तुम कहते हो तो करूँगी।"

"जरूर करो।"

"कहो।"

"महालय की सब स्त्रियाँ खम्भात जा रही हैं।"

"हाँ हाँ।"

"चौला भी।"

"वह भी, पिता जी कह रहे थे।"

"और तुम?"

"मैं भी।"

"ठीक है, तो सुनो। जैसे बने छाया की भाँति चौला के साथ रहो। उसकी विश्वास भाजन बनो। एक क्षण को भी अपनी आँखों से उसे ओझल मत होने दो।"

"क्या?"

"अमीर का हुक्म।"

"किन्तु क्यों ?" सोमना ने भयभीत होकर पूछा।

"क्यों का उत्तर नहीं। जब मैं खम्भात में तुमसे पूछूं कि चौला कहाँ है तब मुझे बताना।"

"खम्भात तुम कब आओगे ?"

"सोमनाथ को जलाकर क्षार करने के बाद।"

"ऐसी बात मत कहो।"

"तैर कहो कर सकोगी ?"

"करूंगी।"

"तुम कब जा रही हो ?"

"आज ही रात को यान जा रहा है, उसी में।"

"चौला उसी में जा रही है न।"

"सुना है।"

"और भी कुछ सुना है।"

"सुना नहीं, देखा है"

"क्या देखा ?"

"चौला रो रही थी।"

"क्यों ?"

"वह खम्भात जाना नहीं चाहती।"

"किस लिए ?"

"बाणावलि के कारण।"

"सच ?"

"वह गंगा से कह रही थी।"

"तब ?"

"गंगा ने कहा—जाना होगा। सर्वज्ञ की आज्ञा है।"

"चौला ने सर्वज्ञ से कहा नहीं।"

"न, सर्वज्ञ समाधिस्थ हैं।"

"ठीक।"

"चौला न जाय तो ?"

"तुम भी मत जाना।"

"कैसे ?"

"चौला की सेवा में रहने की आज्ञा लेकर।"

"आज्ञा कौन देगा ?"

"तुम्हारे पिता आसानी से यह व्यवस्था कर देंगे, उनसे कहना।"

'ऐसा ही करूँगी।"

युवक तीर की भांति द्वार से बाहर जाकर मकाना की छाया में लोप हो गया। शोभना सकते की हालत में खड़ी देखती रही। आँखें उसकी जलधार से गीली और धुंधली हो रही थीं।

४५ : पतिव्रता रमा

कृष्णस्वामी के अनुरोध से शोभना को चौला की सखी बनकर उसी के साथ रहने में कोई कठिनाई नहीं हुई। कृष्णस्वामी को भी इसमें एक प्रकार की निश्चिन्तता होगई। वालुकाराय ने प्रसन्नता से कृष्णस्वामी का अनुरोध मान लिया और शोभना को चौला के पास पहुँचा दिया। शोभना की आयु यद्यपि चौला से कुछ अधिक ही थी परन्तु दोनो को एक प्रकार से समवयस्का ही कहा जा सकता था। शोभना जैसी आनन्दी, चतुर और तत्पर सहेली पाकर चौला भी बहुत प्रसन्न हुई। राह में ही दोनो हिलमिल गईं। खम्भात पहुँचते-पहुँचते दोनो चिर-सखी हो गईं। महाराज महासेनापति भीमदेव का संकेत पाकर खम्भात में चौला को सब सम्भव सुख, साधन जुटा दिये गये और वहाँ महारानी की भाँति मर्यादा से रहने लगी। शोभना उसकी परछाईं की भाँति रात-दिन साथ रहने तथा उसका मनोरंजन एवं सेवा करने लगी। अपनी सेवा, प्रेम, तत्परता और आनन्दी स्वभाव से शोभना ने शीघ्र ही चौला का मन मोह लिया।

परन्तु रमाबाई किसी तरह खम्भात जाने को राजी न हुई। भाषा और भाव उसके चाहे जैसे रहे हों—अभिप्राय उसका यही था कि पति ही उसका लोक-परलोक में शरण है, पति ही परमेश्वर है, पति ही प्राण है, पति ही धर्म है, उसके चरणों का आश्रय छोड़कर वह जीते जी कहीं नहीं जायगी। जो पति की गति सो उसकी गति। वह जीवन मरण, सुख-दुःख, लाभ-हानि, और विपत्ति में पति की अखण्ड-संगिनी, सहधर्मिणी और भार्या है।

परन्तु यह हुआ अभिप्राय। भाव-भाषा भी देखिए। इसमें किसी का वश भी

करता है। मनुष्य अपने स्वभाव ही के अनुसार मनोभाव प्रकट करता है। जब रमाबाई से खम्भात जाने को कहा गया तो उसने अच्छा खासा महाभारत प्रस्तुत कर दिया। वह गुस्से से मुंह फुलाकर अपनी गोल-गोल आँखें घुमाती हुई बेलन लेकर कृष्णस्वामी के सामने तनकर खड़ी हो गई और सर्पिणी की भाँति फुफकार मारकर बोली—"देखती हूँ तुम मुझे जीती-जागती को कैसे घर से निकालते हो—चार फेरे डाल अग्नि की साक्षी करके लाये हो—भागकर बाप के घर से नहीं निकली हूँ। अब इस घर की देहरी के बाहर मेरी लाश ही निकलेगी—समझे।" किन्तु कृष्णस्वामी ने खूब नर्म होकर समझाते हुए कहा—"यह बात नहीं है सोमना की माँ, वह ग़ज़नी का राक्षस आ रहा है। उसी के भय से सब लोग घर-बार छोड़कर भाग रहे हैं। तुम्हें घर से निकालता कौन है। घर-बार तो सब तुम्हारा ही है। तुम्हीं न घर की मालकिन हो।" इस पर ज़िद करके रमा ने कहा—"तो जिसे डर हो वह भागे। आये वह ग़ज़नी का राक्षस, इसी बेलन से उसका सिर न फोड़ूँ तो मेरा नाम रमा नहीं।" वह गेंद की तरह लुढ़कती हुई सारे घर में घूम गई। तब फफक-फफककर रोने लगी। रोते-रोते बड़बड़ाने लगी—"तुमने जन्मभर जलाया है, और अब डर के मारे औरत को घर से बाहर भेज रहे हो, बड़े बाँके बहादुर हो। अरे नामर्द, औरत की रक्षा नहीं कर सकते थे, तो उसका हाथ चार पंचों में क्यों पकड़ा था? फिर डर है तो तुम भी चलो, तुम यहाँ कहाँ के तीर-तमंचे चलाओगे। देखो है तुम्हारी जवांमर्दी, बस अधिक न कहलाओ।"

कृष्णस्वामी ने फिर साहस किया। समझाते हुए बोले—"सोमना की माँ, महाराज महासेनापति की आज्ञा है। वह तो माननी ही पड़ेगी।"

रमा ने खीझकर कहा—"क्यों माननी पड़ेगी, मैंने महासेनापति से ब्याह नहीं किया, न उनकी दबैल हूँ। महासेनापति मेरे सामने तो आयें। कौन-से शास्त्र-वचन से वे पत्नी को पति-चरणों से दूर करते हैं, पत्नी को घर से निकालते हैं, सुनूँ तो। बड़े आये तीसमारखाँ।"

कृष्णस्वामी ने खीझकर कहा—"तो तुम नहीं जाओगी।"

"नहीं, नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी···नहीं जाऊँगी, जहाँ तुम वहाँ मैं।" वह

रोती-रोती कृष्णस्वामी के पैरों से लिपट गई। रोती-रोती बोली—' इस बुढ़ापे में अधर्म में मत घसीटो, इन चरणों से दूर न करो, दया करो, दया करो।"

बालुकाराय ने आकर समझाया। शोभना ने भी दम-दिलासा दिया, फुसलाया, बहकाया पर रमाबाई एक से दो न हुई। विवश हो, शोभना माता से एक मर रोती हुई विदा हुई। रमाबाई ने कृष्णस्वामी को घर के भीतर खींच, द्वार की साकल भीतर से चढ़ा ली।

४६ : अल्बेरुनी

शेख अल्बेरुनी बहुत भारी विद्वान् थे। इनकी अवस्था सत्तर से भी ऊपर थी। रंग एकदम काला, बहुत ऊँची उठान, लम्बी सफ़ेद डाढ़ी, गृद्ध के समान तेज और भेदिनी दृष्टि। सम्पुटित ओष्ठ, अल्पभाषी।

शेख नदी-तीर की अपनी एकान्त झोपड़ी में बैठे कुछ ज्योतिष की रेखाएँ खींच रहे थे। उनके सम्मुख दिग्विजयी अमीर छद्मवेश में बैठा चुपचाप उनके मस्तिष्क पर बनने बिगड़ने वाली रेखाओं को ध्यान और धैर्य से देख रहा था। दोनों मौन थे। वृद्ध शेख कुछ उलझन में थे। ऐसा प्रतीत होता था कि वे कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे हैं, अन्त में अधीर होकर अमीर ने कहा—

"जैसा कुछ आपने समझा है, कहिए।"

"अभी कुछ नहीं कह सकता सुलतान।"

"अब नहीं तो फिर कब ? जो कुछ कहना है अभी कहिए।"

"तो बेहतर हो कि आप चुपचाप अभी सिन्ध की राह वापस गज़नी चले जायें।"

"खूब, यह आप महमूद को सलाह दे रहे हैं हज़रत ?"

"हुज़ूर, मैं लाचार हूँ, आपके सितारे मुझे उलझन में डाल रहे हैं।"

"काफ़िरों का यह इल्मे-नजूम भी कुफ़्र है, आप इस पर क्यों यकीन करते हैं ?"

बूढ़े शेख ने भौंहों में बल डालकर एक बार अमीर की ओर देखा—फिर शान्त स्वर से कहा—'सुलतान, इल्म की कोई जात बिरादरी नहीं। वह सदा सच्चा

है, सूरज की तरह चमकदार हीरा ग़ज़ालत से उठाया हुआ भी हीरा ही है। बस, आपको अगर इल्मे-नजूम कुफ्र दीख पड़ता है तो शेख को माथा-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं है, आप बिसमिल्लाह कीजिए।"

उसने तख्ती उठाकर रख दी और मौन हो बैठा। अमीर ने नर्म होकर कहा—"खैर, आपने जो कुछ समझा वह कहिए।"

"आपका एक सितारा बहुत खराब है, लेकिन उसका असर आज की तारीख से ठीक चौथे माह होगा।'

"उसका क्या असर है ?"

"आपकी ज़िन्दगी, फ़तह और इज्जत पर खतरा।"

"कैसा खतरा ?" अमीर के होंठ गुस्से से चिपक गए।

"लड़ाई में शिकस्त भी हो सकती है, आपके दुश्मनों की जानें भी जोखिम में हैं।"

"तो क्या परवाह, महमूद ने तो ऐसे बहुत से खतरे उठाये हैं हज़रत !"

'सुलतान, हर उरूज का एक जवाल है, सूरज उगता है, उठता है, तपता है, और आखिर गरूब होता है।'

"तो इससे क्या ? दूसरे दिन सुबह फिर उगता है।"

"हुज़ूर, इल्म में बहस बेकार है।"

"जाने दीजिए। आपने कहा है कि वह सितारा आज से चौथे महीने असर करेगा।"

"जी हाँ।" शेख ने फिर अपनी तख्ती पर नज़र फैलाई।

"खैर, तो तब तक मैं गज़नी पहुंच जाऊंगा।"

"यह नामुमकिन है।"

"क्यों ?"

"आपने यदि लड़ाई छेड़ दी तो वह लम्बी मुहिम होगी। सोमनाथ की फ़तह आसान नहीं है।"

"यह तो इत्तफ़ाक पर मुनहस्सिर है।"

"जी नहीं। हाँ, अगर आपको कोई गैबी मदद मिल जाय, तो बात जुदा है।"

"मसलन ?"

"जैसे वही खतरनाक गुसाईं सच्चा उतरे ।"

"उस पर आपको शक है ?"

"जो खबर मिली है, उससे तो वह आपकी मदद करेगा। मगर काफिर का भरोसा क्या ? फिर वह, जो मालिक से दगा कर रहा हो, अपने दीनो-ईमान से बग़ावत कर रहा हो ।"

"लेकिन वह तो अपने देवता जिन्नात के हुक्म की तामील कर रहा है जिसके हम शाही मेहमान बन चुके हैं और अब फिर उसने मुझे बुलाया है ।"

"ठीक है पर कौन जाने इसमें क्या भेद है ?"

"क्या आपने उससे मुलाकात की थी ?"

"मुलाकात नहीं हुई। मगर मेरे उसके बीच बातचीत तो है ही ।"

"उसी नौजवान की माफत, जिसे आपने अपना सन्देश देकर मेरे पास भेजा था ।"

"जी हाँ ।"

"वह लड़का कहाँ है ?"

"सुलतान के काम से पट्टन गया है ।"

"जिन्नात के बादशाह से कल वही मुलाकात होगी न ?"

"यही उसने कहलाया था, लेकिन उसने इस बार अमीर को अकेला बुलाया है ?"

"मैं जरूर जाऊँगा ।"

"खैर, मेरी सुलतान से एक इल्तजा है ।"

"क्या ?"

"अगर सुलतान इस मुहिम को सर करने पर तुले ही हुए हैं तो ऐसी कोशिश कीजिए कि जल्द-से-जल्द मुहिम खत्म हो जाय, और आप चौथे चाँद से पेश्तर ही ग़ज़नी लौट जायें ।"

"अलहम्दुलिल्लाह, ऐसा ही करूँगा, हाँ वह नाज़नीन ।"

"सब लोगों के साथ सम्मान भजी जा रही है। मैंने बन्दोबस्त किया है कि एक भरोसे की औरत उसके साथ रहे।"

"कौन है वह ?"

"फ़तह की होने वाली जोरू।"

"फतह कौन ?"

"वही नौजवान।"

"आह, उसे मैंने एक टुकड़ी फौज का सरदार बनाया है। अगर वह यह ख़िद-मत ठीक-ठीक बजा लाया तो उसे सिपहसालारों में रखूंगा।"

"वह जी-जान से हुजूर के काम में लगा है।"

"लेकिन हज़रत, सिर्फ एक चीज लेकर ही मैं सोमनाथ को छोड़ सकता हूँ।"

"वह क्या ?"

"वही नाज़नीन, क्या नाम है उसका ?"

"चौला। यह शायद नामुमकिन है सुलतान, एक लाख नगी तलवारें उसकी हिफ़ाज़त कर रही हैं।"

"उस लौंडी की ?"

"वह देवदासी है हुज़ूर, देवता की जोरू।"

"पत्थर के देवता की जोरू—जिन्दा औरत ?" अमीर हँसा।

"इसीसे सोमनाथ और उस लौंडी की इज्जत बराबर ही है।"

"तो मैं सोमनाथ के इसी गुर्ज से चार टुकड़े करके उस लौंडी को अपनी ख़िद-मत में रखूंगा।"

"अब सुलतान किस बात का इन्तजार कर रहे हैं ?"

"किसी बात का नहीं, मेरी सब बिखरी फ़ौज इकट्ठी हो गई है। कल उस गँवी दाँ से मुलाकात होने के बाद खुले मैदान म छावनी डालूँगा।"

"मुझे कुछ हुक्म ?"

"उस छोकरे को मेरे पास भेज दीजिये।"

"बेहतर।"

अमीर ने वृद्ध शख के दोनों हाथ अपनी आंखों से लगाये, चूमे और चुपचाप घोड़े पर चढ़कर रवाना हुआ। अभी भी दिन निकलने में देर थी। पूर्व दिशा में सफ़ेदी छा रही थी।

४७ : सहस्राग्नि-सन्निधान

परन्तु रुद्रभद्र ने धर्म-सेनापति की आन नहीं मानी। एक सहस्र धधकती धूनियों के बीच वहीं कूटस्थ मुद्रा से बैठा रहा। उसका विशाल कृष्णकाय शरीर, लाल भस्म भूषित जटाएँ, मद्य से लाल चोट नेत्र, भयानक काली सघन भौंहें, मोटे निरन्तर हिलते होठ, और बीच-बीच में 'ला विनाश', 'ला विनाश' की चीत्कार। यह सब मिलकर दर्शकों के मन पर एक ऐसा वीभत्स, रौद्र और भयानक प्रभाव छोड़ते थे कि जिसका वर्णन भी असंभव है। उसे न सेना का भय था, न शस्त्रों का, न उसे गुरु के आदेश की परवा थी न सेनापति के। त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर के बाहरी विशाल मैदान में उसने अब सहस्राग्नि-यज्ञ प्रारम्भ किया था। उसके साथ उसके तीन सहस्र सगी-साथी अघोरी, वामपन्थी और कलमुंहे भी वैसी ही मायाविनी आकृति बनाये उस धधकती हुई एक हजार धूनियों के चारों ओर मिथुन मुद्रा में बैठे मन्त्र पढ़ रहे थे। उनके सैकड़ों चेले-चांटे वृक्ष, वनस्पति काट-काटकर ईंधन उन जलती सहस्र महा-चिताओं में निरन्तर झोंक रहे थे। केवल यही नहीं, नगर में जो कुछ भी जहाँ कहीं जलने योग्य अच्छा-बुरा पदार्थ मिल जाता वे उसी को उठा-लाकर धूनियों में झोंक रहे थे। वे लोग कोई भी विधि निषेध नहीं सुनते थे, किसी से नहीं डरते थे, रोकने पर लड़ने-मरने को उद्यत हो जाते थे, वे छूटते ही घातक आक्रमण करते थे।

नगर में नागरिक तो रह ही कम गये थे, अधिकांश बाहर से आये हुए सैनिक थे, जो इनके इस व्यवहार से बड़े आतंकित हो रहे थे। उनसे उनके सम्मुख विरोध करते ही न बन पड़ता था। अन्ध-विश्वास ने उन्हें कायर बना दिया था। उन्हें

देखते ही बड़े-बड़े वीर भाग खड़े होते थे, निकट आते ही ये अघोरपन्थी छूटते ही अपने विकराल चिमटों का प्रहार ऐसे वेग से करते थे कि अच्छे से अच्छे बलिष्ठ पुरुष की खोपड़ी फट जाती। अपने नेता रुद्रभद्र के साथ वे "हूँ फट, ह्रीं, क्लीं" का उच्चारण करते, उनके निरन्तर होठ हिलते रहते और बीच-बीच में वे सब सहस्र-सहस्र कंठ से 'ला विनाश', 'ला विनाश' चिल्लाते।

महामेधावी प्रतापवान् सेनापति बालुकाराय इन दुर्भट हठीले अघोरियों के सम्मुख निरुपाय हो गये। उन्होंने महासेनापति भीमदेव और दामोदर महता से परामर्श किया।

बालुकाराय ने कहा—"क्या उन पर बल-प्रयोग किया जाय?"

"यह शायद ठीक न होगा" भीमदेव ने कहा। "किन्तु क्यों न सर्वज्ञ से निवेदन किया जाय?"

"सर्वज्ञ अन्तस्थ हैं। उनसे मिलना अशक्य है। बात करना भी सम्भव नहीं।"

बहुत विचार-विमर्श के बाद दामोदर महता ने कहा—"उन्हें मुझ पर छोड़ दीजिए। मैं उनसे सब निपट लूंगा। ये मूर्ख हमारा कुछ भी न बिगाड़ पाएंगे और इनका अपने आपही विनाश हो जायगा।"

यही बात तय रही। दामोदर महता ने उनकी गतिविधि की देख-रेख अपने पट्टशिष्य गजानन के सुपुर्द की। उसकी अधीनता में पचास सशस्त्र सैनिक भी दे दिये। उसे आदेश दे दिया गया कि उन्हें छेड़ने का कोई काम नहीं है। वे दूसरों का अनिष्ट न करें केवल यही देखना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस धूर्त रुद्रभद्र की कोई कहीं गहरी चाल तो इस ढोंग की ओट में तो नहीं चल रही है, यह भी देखने का आदेश महता ने अपने शिष्य को दे दिया।

गजानन ने अपने पचास सैनिकों को उन्हीं कलमुखों के छद्मवेष में उनमें प्रविष्ट कर दिया। वे उनमें घुल-मिलकर ईंधन लाने, चिल्लाने तथा होठ हिलाने लगे। महत्वपूर्ण और आवश्यक सन्दिग्ध संदेश गजानन के द्वारा महता दामोदर के पास पहुंचने लगे।

४८ : दैत्य आया

गजनी का दैत्य नल बावणी होता हुआ प्रभास की सीमा में घँसा आ रहा है। अन्तत इसकी सूचना भीमदेव को मिली। भीमदेव ने तत्काल ही युद्ध-समिति की बैठक की। इस समिति में भीमदेव चौलुक्य, सेनापति बालुकाराय, जूनागढ के राव, केसर मकवाणा, राय रत्नादित्य, कमालाखाणी, दद्दा सोलंकी, सामन्तसिंह और सज्जनसिंह आदि प्रमुख भट सेनानायक उपस्थित थे।

प्रश्न था कि क्या अमीर को प्रभास तक आने का अवसर दिया जाय या उसे राह ही में अटकाया जाय। यदि राह में अटकाया जाता है तो दुर्गाधिष्ठान का महत्व जाता रहता है, बल बिखर जाता है। सर्वसम्मति से यही निर्णय हुआ कि अमीर को आगे बढ़ने दिया जाय तथा उसके जीवित लौटने के सब मार्ग बन्द कर दिये जायं।

मकवाणा ने वीर दर्प से मूछों पर ताव देकर कहा—"मैं इस तलवार से उसके दो खण्ड करूँ तो मेरा नाम मकवाणा। इसी धर्मक्षेत्र में राक्षस की मुक्ति हो।"

जूनागढ़ के राव ने कहा—"जब तक शरीर में प्राण हैं, हम लोहा बजाएँगे। आगे जैसी शकर की इच्छा।"

सज्जन चौहान ने कहा—"अब मेरा तो जीवन ही उस दैत्य का सर्वनाश करने के लिए है।"

और भी बहुतों ने बहुत बातें कहीं। सभी ने वीर दर्प से हुँकृतियाँ भरीं। सब के अन्त में जलद गम्भीर स्वर में भीमदेव ने कहा—"यह तो हुआ। अब यह कहो, अमीर का बल कैसा है, उसकी सैन्य कितनी है, उसका संगठन कैसा है?"

"उसके पास चालीस हजार सधे हुए घुड़सवार हैं, इसके अतिरिक्त दो हजार साडनियाँ और पाँच सौ हाथी हैं। बारह हजार अचूक तीरन्दाज हैं जिनके तीर में पाँच टंक की अनी पड़ती है महाराज।"

भीमदेव ने कहा—"तो पहले तीरदाजों ही को लो। हमारे पास कुल सात हजार तीरदाज हैं। वे सब उतने होशियार और अचूक तो नहीं हैं, परन्तु हमारे पास गढ़ हैं, खाई हैं, दुर्ग है, प्राचीर है तथा भरपूर रसद और रण के साधन हैं। सबसे प्रथम उन्हीं से मुठभेड़ हो। इन सात हज़ार धनुर्धरों का अधिकार मैं लेता हूँ।" किन्तु बालुकाराय ने बाधा देकर कहा—"नहीं महाराज, उनका अधिकार मैं लेता हूँ। आप सम्पूर्ण धर्म-सैन्य के नेता और सेनापति हैं। आपका सम्मुख युद्ध में आने का कोई काम नहीं है। महाराज बाणावलि प्रसिद्ध हैं, परन्तु मैं एक ही बाण से उसका हृदय विदीर्ण न करूँ तो बालुकाराय नाम न धराऊँ।"

भीमदेव ने हँसकर कहा—"बालुक, तुम्हारे हस्त-लाघव और शौर्य पर तो मैं ईर्षा करता हूँ, परन्तु तुम्हारे आधीन नगर-रक्षा भी है, इसी से···"

परन्तु बालुक ने बात काटकर कहा—"नगर अब कहाँ है महाराज, यह प्रभास तो अब सैनिक सन्निवेश है। फिर भी मैं तो स्वेच्छा से दायित्व ले रहा हूँ। आपको मैं किसी भी हालत में कोई जोखिम सिर न लेने दूँगा।"

भीमदेव ने कहा—"तब ऐसा ही हो। अपने धनुर्धारियों को तुम सम्हालो। अब हम कुल तीन मोर्चे स्थापित करते हैं। प्रथम मुख्य तोरण; उसका रक्षक कौन होगा?"

जूनागढ़ के राव ने अपनी तलवार ऊँची करके कहा—"यह लोहा। इसके रहते दैत्य महालय के मुख्य तोरण पर पदाधात न कर सकेगा।"

"ठीक है। आप दो सहस्र घुड़सवार और दस सहस्र सैन्य सहित मुख्य तोरण की रक्षा करें।"

"अब दूसरा मोर्चा जूनागढ़ द्वार का सागर-तट है उसे कौन सम्हालेगा?"

"मैं" वृद्ध कमालाखाणी ने मेघ-गर्जन की भाँति कहा, "सागर-तट पर मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

"अच्छा तो तट पर इस समय तीन सौ नावें हैं तथा छः भारवाहक और तीन

शस्त्र-सज्जित जहाज हैं। शत्रु के पास जल-युद्ध का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। ये आपके अधिकार में हुए। आपको अश्वारोही सेना की दरकार नहीं। पाँच हजार तलवार और बर्छे के धनी योद्धा और बालुकाराय के तीरंदाज भी आपके साथ रहेंगे।"

"तो महाराज तट-भाग अभग है, अभग रहेगा।'

"अब रहा नगर-द्वार' भीमदेव ने कुछ चिंतित होकर कहा।

"उसके लिए केवल पाँच सौ अश्वारोही मुझे दे दीजिए"—मकवाणा ने हँसकर कहा। भीमदेव भी हँस पड़े। उन्होंने कहा—' पाँच सौ नहीं, दो हजार अश्वारोही और पाँच हजार पदातिक, साथ ही दामा महता भी।"

सब तो "अधिकस्याधिक फलम्।"

सज्जनसिंह चौहान ने कहा—"किन्तु मुझे क्या काम सौंपा जाता है ?"

भीमदेव ने गंभीर मुद्रा से कहा—'हाँ, अब आपकी बारी है, सज्जनसिंह जी, आपको मैं सबसे कठिन कार्य सौंप रहा हूँ।"

— "यही मेरी अभिलाषा भी है।"

"तो देखिए, यदि दैव-दुर्विपाक से हमें दलित करके यहाँ से सुलतान वापस लौटे तो मरुस्थली में ही उसको समाधि तुम देना। यही कार्य मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ। प्रातःस्मरणीय घोघाबापा का तर्पण तुम्हें ही करना होगा, वीरवर! और अब तो तुम्हीं मरुस्थली के रक्षक हो।"

'ऐसा ही होगा महाराज, प्रतिज्ञा करता हूँ।"

"तब कहो, तुम्हें कितने सैनिक चाहिएँ, यह देख लो, हमारे पास योद्धाओं की बहुत कमी है।"

"यह मैं देख रहा हूँ महाराज।"

"तुम्हें कम-से-कम योद्धा दूँगा।"

"ठीक है महाराज।"

"कहो, फिर कितने ?"

सज्जनसिंह ने फीकी हँसी हँसकर कहा—"एक भी नहीं महाराज, वह सामने नीम की छाया में मेरी साँडनी बँधी है। बस वह और मैं दो ही पर्याप्त हैं।" सज्जन-

सिंह की बात सुनकर सब कोई आश्चर्य से उसका मुँह ताकने लगे। सज्जन ने कहा—"महाराज, बिना कुछ खाये-पीये उसने पाँच बार इस मरुस्थली को पार किया है। वह मरु-समुद्र का जहाज है। वह चालीस दिन बिना खाये पिये धावा कर सकती है। परन्तु एक बात है।"

"वह क्या ?"

"यदि अमीर पीछे मरुस्थली की ओर न लौटे।"

"सम्भवतः वह राजस्थान की ओर मुँह न कर सकेगा।"

"किन्तु अर्बुदाचल के मार्ग जाय तो ?"

"उसकी चिन्ता नहीं। विमलदेवशाह तीस हजार गुर्जर-सैन्य सहित उसका मार्ग रोकने को आबू में सन्नद्ध हैं। फिर काका दुर्लभदेव की गज-सैन्य भी है, और अभी तो यहाँ हम हैं। यदि भगवान सोमनाथ की ऐसी ही इच्छा हुई तो सुलतान के भाग्य का अन्तिम निपटारा या तो तुम्हारी मरुस्थली में होगा या अर्बुदाचल में। मरुस्थल सज्जन का और अर्बुदाचल मेरा।"

"तो महाराज, मरुस्थल की ओर यदि दुर्भाग्य अमीर को ले गया तो, वहाँ से एक भी म्लेच्छ जीता न लौटेगा।"

"अब सामन्त। सामन्त को मैं यहाँ न रहने दूँगा। यह इसी समय घोघागढ़ जाय।"

'मेरा अपराध महाराज", सामन्त ने भरे कण्ठ से कहा।

"अपराध नहीं, भाई घोघाबापा का वंश जीवित रखना होगा। घोघाबापा के चौरासी पुत्र-पौत्रों में एक तुम और सज्जन दो बचे हो। सज्जन को तो मैं उत्सर्ग के मार्ग पर भेज रहा हूँ। पर सामन्त, तुम्हें अपने वंश की रक्षा करनी होगी।" महासेनापति भीमदेव की वाणी कम्पित हो गई। आँखें मेंह बरसाने लगीं।

"तो सामन्त, महाराज की बात रख।"

सज्जन ने आँखों में आँसू भरकर कहा।

'सामन्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"बापू, मैं यहाँ धर्मयुद्ध से विमुख होकर चला जाऊँ तो मेरा क्षत्रिय-धर्म जाय।"

'ऐसा नहीं सामन्त"—भीमदेव ने कहा।

"मैं नहीं जाऊँगा महाराज, मैं सेनापति की आज्ञा अस्वीकार करता हूँ। मुझे अनुशासन भंग करने का दण्ड दीजिए।"

महाराज भीमदेव ने हँसकर स्नेह से उस तरुण को छाती से लगा लिया। दामोदर महता ने कहा—"महाराज, सामन्तसिंह जी के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य है।"

"क्या ?"

"उन्हें खम्भात की रक्षा का भार दीजिए। अन्तत खम्भात का सामरिक महत्व सब से अधिक बढ़ता जायगा।"

"ठीक है, तो सामंत, तुम्हें खम्भात सौंपता हूँ। वहाँ गुर्जरेश्वर श्री वल्लभदेव हैं, चुग्री चौला है, पाटन के हजारों आबाल-वृद्ध हैं, गुजरात की सभी प्रतिष्ठा और सम्पदा इस समय खम्भात में है, इन सबका रक्षक मैं तुम्हें बनाता हूँ वीर।"

सामंत ने सिर झुकाकर कहा—'जैसी महाराज की आज्ञा।"

अन्य आवश्यक व्यवस्था के बाद यह युद्ध-मन्त्रणा भंग हुई। बीस सहस्र सुरक्षित सैन्य की कमान महाराज भीमदेव के अधीन रही।

४६ : शत्रु मित्र

देलवाड़े का राजमार्ग आबाल-वृद्ध नर-नारियों से पटा पड़ा था। कोई ऊँट, घोड़ा, बैलगाड़ी पर, कोई पैदल, कोई असमर्थ रोगी अपाहिज, आने में असमर्थ साथी को पीठ पर लादे हुए प्रभास की ओर आ रहे थे। उनमें बहुत घायल थे, मुमूर्षु थे, अनेक विलाप करती मंद-विधवाएँ थीं जिनका एक ही रात में चिर-सुहाग लुट चुका था। अनेक सिसकते भूखे-प्यासे अनाथ बालक थे, जो रात को माता की सुखद गोद में सोये थे। एक ही रात में उन पर वज्रपात हुआ था। उनके घरबार लूट-पाट और जलाकर खाक कर दिये गये थे। स्त्री-पुरुष सभी को तलवार के घाट उतार दिया गया था। देलवाड़े की सम्पन्न और खुशहाल बस्ती एक ही रात में उजाड़ कर ऐसी कर दी गई थी कि उसे भूतों का वासा कह सकते थे। बचे-खुचे लोग जैसे-तैसे प्रभास की शरण में आ रहे थे।

गजनी का दैत्य देलवाड़े तक आ पहुँचा है और उसने देलवाड़े को भग कर दिया है, यह बात बिजली की भाँति प्रभास में फैल गई। ठठ के ठठ लोग देलवाड़े के राजमार्ग पर आ जुटे। सिसकती हुई अबलाओं, लुटे हुए वृद्धों और आहत युवकों ने देलवाड़े की रक्तरंजित कहानी—चौधारे आँसू बहा-बहाकर कह सुनाई। सैनिक और नगर के अगणित जनों ने उन्हें धैर्य दिया। नगर के भीतर लिया। उनके भोजन और विश्राम की व्यवस्था की। घायलों तथा रोगियों की शुश्रूषा होने लगी। नगरपाल ने तुरन्त ही इन शरणार्थियों को भी खम्भात भेजने की व्यवस्था कर दी। उन्होंने यह भी समझ लिया कि अब युद्ध में विलम्ब नहीं है। तत्काल नगरकोट और दुर्ग के सब द्वार बन्द कर दिये गये। खाई समुद्र के जल से

भर दी गई। बुर्जियों पर धनुर्धारी तैनात कर दिये गये। नगर से बाहर जाना निषेध कर दिया गया।

नगरपाल जब शरणार्थियों, नागरिकों और सैनिकों की व्यवस्था तथा रक्षा एवं प्रथम मुठभेड़ की तैयारियों में व्यस्त थे और महासेनापति भीमदेव व्यग्र भाव से युद्ध-मोर्चों की देखभाल कर रहे थे, तब दामोदर महता ने एक बड़ा भारी दुःसाहस किया। वे शस्त्र-सज्जित घोड़े पर सवार हो, चुपचाप परकोटे से बाहर निकल गये। बाहरी परकोटे के बाहर खाई के उस पार—दक्षिण-पश्चिम कोण में परकोटे से सटा जो महाकाल भैरव का मन्दिर था, वे वहाँ तक चले गये। बड़ी देर तक वे मन्दिर से दूर-दूर उसके चारों ओर घूम घूमकर कुछ निरीक्षण करते रहे। फिर वे हिरण्या नदी के किनारे-किनारे अघोर वन के अभिमुख चलते चले गये। दो प्रहर दिन चढ़ आया था और सूरज की धूप खूब साफ़ चमक रही थी। उनमें बल खाती हुई हिरण्या का जल पिघलते हुए स्वर्ण की भाँति चमक रहा था। किनारे की बालू चाँदी की भाँति चमक रही थी।

चारों तरफ़ सन्नाटा था। दूर तक मनुष्य का नामोनिशान न था। दूरी पर प्रभास का नगरकोट और उसके ऊपर महालय का स्वर्ण-कलश चमक रहा था। दामो महता चौकन्ने हो चारों ओर राह-बाट ताकते नदी के उस पार अघोर वन की काली-काली पहाड़ियों की चोटियों को, और कभी दूर तक टेढ़ी-मेढ़ी बहती हुई क्षीण हिरण्या नदी की धार को देखते चल रहे थे। एकाएक उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि हिरण्या नदी के उस पार अघोर वन के तट पर कोई वस्तु हिलती और इधर-उधर घूमती फिर रही है। उन्हें बड़ा कौतूहल और भय भी हुआ। वह तो अगम्य स्थल है, पिशाचों का वास है, मनुष्य का वहाँ जाना-रहना अशक्य है, तब यह क्या कोई पिशाच है या प्रेत है?

सम्मुख ही महाश्मशान था परन्तु इस समय वहाँ भी सन्नाटा था। उन्होंने एक बार उधर देखकर फिर अपनी दृष्टि उसी हिलती हुई वस्तु पर स्थिर की। उन्होंने अब स्पष्ट देखा कि वह मनुष्य की मूर्ति है, और अश्व पर सवार है। वह बड़े ध्यान से उस मनुष्य-मूर्ति की गतिविधि देखने लगे। उन्होंने देखा कि उस मूर्ति ने अपना अश्व हिरण्या में डाल दिया है, और वह इस पार आ रहा है। ज्यों-

ज्यों वह निकट आता जाता था, उसकी आकृति स्पष्ट होती जाती थी। उसके सिर पर हरे रंग की पगड़ी थी और ऐसा ही एक चुगा उसके शरीर पर था। उसकी लम्बी नंगी तलवार धूप में चमक रही थी और वह घोड़े पर आसीन बड़ी दक्षता से नदी से पार हो रहा था। कुछ निकट आने पर उन्होंने देखा कि सवार कोई म्लेच्छ तुर्क है। उसकी लाल डाढ़ी हवा में फरफरा रही थी। देखते-ही-देखते वह इस पार की भूमि पर आ गया। आते ही उसका बलिष्ठ अश्व हवा में उछला और छलांगें मारने लगा।

अब दामोदर महता को अपनी एकाकी तथा असहाय अवस्था का ध्यान आया। दामो जैसे कूटनीतिज्ञ थे, वैसे ही युद्ध-विशारद भी थे। उन्होंने तत्काल खतरे को समझ लिया। नदी के तट से हटकर सामने कुछ वृक्षों का झुरमुट था। वे तेजी से उधर ही चल दिये।

परन्तु तुर्क सवार ने उन्हें देख लिया। तीर की भांति अपना अश्व उड़ाता और हवा में अपनी तलवार घुमाता हुआ वह उन पर दौड़ा।

महता ने अपना अश्व दो भारी वृक्षों के बीचोबीच व्यवस्थित किया और स्थिर होकर शत्रु के आक्रमण के वेग को रोकने के लिए सन्नद्ध हो गया। अपने अश्व को व्यर्थ थकाना उन्होंने ठीक नहीं समझा। एक तीर के अन्तर पर पहुंचकर तुर्क ने घोड़े को दाहिनी ओर मोड़ा और तेजी से महता का बगली देकर वह पृष्ठ भाग में जा पहुंचा। फिर एक बारगी ही उन पर टूट पड़ा। महता सावधान थे। उन्होंने द्रुत गति से उसी ओर अश्व को घुमाकर तिरछा खड़ा किया। तलवार उन्होंने हाथ में ले ली।

शत्रु को वार करने का अवसर नहीं मिला। इस पर खीझकर वह एक तीर के फासले पर पीछे हटा और फुर्ती से तलवार खींचकर वहां से बाज की भांति झपटा। महता के निकट आकर ज्यों ही वह हाथ ऊंचा करके तलवार के एक वार में शत्रु के दो टुकड़े करना चाह रहा था, त्योंही महता ने फुर्ती से घोड़े को एड देकर उस पर धकेल दिया और अत्यन्त कौशल से उसकी कमर में हाथ डालकर उसे घोड़े से नीचे गिरा लिया और बड़े ही हस्त-लाघव से उसकी गर्दन अपने धनुष की डोरी में फंसा ली। धनुष की डोरी में गर्दन फंसने से तुर्क-शत्रु छटपटाने लगा। तलवार

उसके हाथ से छूट गई। दोनों योद्धा पूरा बल लगाकर पृथ्वी पर द्वन्द्व-युद्ध करने लगे। परन्तु गर्दन डोरी में फँसी रहने से तुर्क के हाथ-पैर ढीले पड गये। दामो महता ने दो-तीन करारे झटके दिये और अनायास ही उसकी छाती पर चढ बैठे। और तलवार की धार उसकी गर्दन पर रखकर कहा—"अब तू मर।"

"किन्तु पराभूत तुर्क ने मृत्यु-विभीषिका से तनिक भी भयभीत न होकर कहा—"शाबाश बहादुर, तुम सिपाही तो नहीं हो, मगर बडे बहादुर हो, मरने से पहिले मैं तुमसे दोस्ती करना चाहता हूँ।"

"तुम कौन हो?"

"दुश्मन।"

"तब तुम समझते हो कि तुम्हारी दोस्ती में फँसकर मैं तुम्हारी जान बख्श दूंगा?"

"अगर तुम अपनी बहादुरी के सिले में सिर्फ मेरी दोस्ती कबूल कर लो तो मैं तुम्हारे हाथ से मरना हजार जिन्दगियो से भी बेहतर समझूँगा। फिर मरने से पहिले मैं तुम्हें कुछ सौगात भी दूंगा।

"क्या?"

"वह तलवार, जिसे तुमने फतह कर लिया।"

"देखता हूँ, तुम एक बहादुर दुश्मन हो।"

"और बहादुरी की कद्र करके मैं तुमसे तुम्हारी दोस्ती माँग रहा हूँ।"

"फिर तो मुझे तुम्हारी जान बख्शनी होगी।"

"जान दुश्मन की है, दोस्तमन। मगर अपना हाथ दो।"

महता ने अपना हाथ बढाया। तुर्क ने अपनी तलवार उसके हाथ में थमाकर कहा—"इसे नाचीज न समझना बहादुर।" फिर कुछ ठहर कर उसने धीरे से कहा—"अब तुम अपना काम करो, खुदा हाफिज।"

वह आँखें बन्द करके निढाल गिर गया। दामो महता उसकी छाती से उतर गये। उसके कण्ठ से धनुष की डोरी निकाल ली और सहारा देकर उसे उठाते हुए उन्होंने कहा—

"तुम आज़ाद हो दोस्त।"

"इस आज़ादी की कोई कीमत तुम नहीं लोगे ?"

"दोस्त को कोई चीज कीमत लेकर नहीं दी जाती।"

"सच है, सच है।" उसने अपने कपड़ों को ठीक किया। फिर कहा—"तो तुमने मेरी दोस्ती कबूल कर ली ?"

"तुम अगर इसके लिए पछता रहे हो तो मैं तुम्हारी दर्खास्त नामंजूर भी कर सकता हूँ।"

"नहीं, मगर हमें कसम खानी होगी। मैं खुदा और पैगम्बर की कसम खाता हूँ कि तुम्हारी दोस्ती को दुनिया की सबसे बड़ी नियामत समझूँगा।"

"और मैं भी भगवान सोमनाथ की कसम खाकर कहता हूँ कि जब तक तुम्हारा मित्र भाव कायम है, मैं सदैव तुम्हारा मित्र रहूँगा।"

"तुम कहाँ तक मेरा यकीन कर सकते हो दोस्त ?"

"जहाँ तक एक दोस्त का किया जा सकता है।"

"तो तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

"कहाँ ?"

"अमीर गज़नी के लश्कर में।"

"किस लिए ?"

"उनके रूबरू हम अपनी दोस्ती की सनद देंगे। मैं अमीर का एक खास उमरा हूँ, मेरे लिए यह जरूरी है।"

महता ने मर्मभेदिनी दृष्टि से तुर्क की ओर देखा। उसकी काली चमकीली आँखें निर्भय आनन्द की धारा बहा रही थीं। उसने कहा—

"क्या तुम्हें मुझसे डर है ?"

"नहीं, मुझे तुम्हारी बात मंजूर है।"

दोनों वीरों ने अपने-अपने घोड़े ठीक किये और उन पर सवार हुए। वे धीरे-धीरे प्रभास की विपरीत दिशा की ओर चलने लगे। यह क्षण दामो महता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। वे स्पष्ट ही एक ऐसे खतरे की ओर बढ़ रहे थे जिसका साहस बहुत कम लोग कर सकते थे।

तुर्क सैनिक कद्दावर और बलवान् था। उसका घोड़ा भी बहुत उत्तम था।

अपने बहुमूल्य वस्त्राभरणो से वह उच्चकुल का भी प्रतीत होता था। यह स्पष्ट था कि यह गजनी के अमीर का कोई उमराव है, और महता अमीर के सैन्य-बल की सही झलक अपनी आँखो से देखने के लिए यह भारी खतरा उठा रहे थे। उन्होंने अभी-अभी उस यवन शत्रु की आँखो में एक गहरे विश्वास की चमक देखी थी तथा अभी उसे प्राणदान भी दिया था इसी से वे सत्साहस करके उसके साथ शत्रुपुरी में निर्भय घुसे चले जा रहे थे।

कुछ दूर दोनो अद्भुत मित्र चुपचाप साथ-साथ चलते रहे। तुर्क ने अपने घोड़े की रास खींचकर कहा—"क्या मैं अपने नये दोस्त का नाम जान सकता हूँ।"

"मैं गुर्जरेश्वर का एक सेवक हूँ, और सब लोग मुझे महता के नाम से पुकारते हैं।"

"अगर गुजरात के राजा के पास एसे ही सेवक है, जैसे कि तुम हो, जो शत्रु के सामने पहाड़-सा अडिग और दोस्त के सामने पहाड़-सा महान् है, तो मैं गुजरात के महाराज के भाग्य पर ईर्ष्या करूँगा।"

"क्या तुम्हारा ऐसा रुतबा है कि तुम प्रतापी गुर्जरेश्वर के भाग्य से स्पर्धा कर सको।"

"यह मैं नही कह सकता दोस्त। लेकिन मैंने जो कहा है उसे फिर दुहराता हूँ।"

"तो मेरा नाम तुम ने पूछ लिया तुर्क सरदार, क्या तुम भी मुझे अपना नाम बताओगे?"

"क्यों नही, मगर थोडा सब्र करने के बाद। अभी तुम मुझे सिर्फ एक दोस्त ही समझ लो।"

"यदि इसमें कोई भेद है तो ऐसा ही सही, लेकिन तुम यह जानते हो कि मैं इस तलवार की दोस्ती के नाम पर कितना खतरा मोल ले रहा हूँ।"

"लेकिन रसूल और खुदा के नाम पर जो तुम्हारा दोस्त बना है, उसके जिन्दा रहते तुम्हें खतरे से क्या डर?"

"लेकिन तुम क्या मुझे अमीर के सामने ले जाओगे?"

"मेरा बिलकुल यही इरादा है।"

"क्या अमीर एक काफ़िर का अपने लश्कर में आना पसन्द करेगा?"

"क्यों नहीं, जब कि वह उसके एक इज्ज़तदार सरदार का जीवनदाता है।"

"यह बात अमीर से कहेगा कौन?"

"मैं कहूँगा।"

"क्या सचमुच ग़ज़नी का अमीर अपने सरदारों की इतनी इज्जत करता है कि वह तुम जैसे एक अदना दर्बारी सरदार के दोस्त का स्वागत करे, जो एकदम अजनबी है।"

"दोस्तमन, अमीर बहादुरों का क़द्रदान है, और तुम देखोगे कि वह उस आदमी को उठकर गले लगायेगा, जिसमें बहादुरी और बड़प्पन दोनों ही बहुत हैं।"

"ख़ैर, यह मैं देख लूँगा।" महता चुप हो गये।" कुछ देर दोनो चलते चले गये। धीरे-धीरे मार्ग के घुमाव के उस ओर घने जंगल में अमीर की छावनी दृष्टि-गोचर हुई। मीलों तक छावनी का फैलाव था। हाथी, घोड़े, पैदल, सिपाही, नौकर-चाकर सब अपना-अपना काम कर रहे थे।

प्रभावशाली तुर्क ने निरन्तर एक विशेष सकेत-शब्द करते हुए छावनी में प्रविष्ट होना प्रारम्भ किया और वे दोनों निर्विघ्न छावनी की मध्यस्थली में पहुँच गये।

महता उस विराट् सैन्य की व्यवस्था और प्रचण्ड सत्ता को देखते हुए तुर्क-सवार के साथ-साथ चलते चले गये।

अब उनमें बहुत धीरे-धीरे कभी-कभी बातचीत होती थी। तुर्क सवार कुछ महत्वपूर्ण बात कहना चाह रहा था परन्तु महता चुपचाप नेत्रों से जो देख रहा था उस पर विवेचन कर रहा था, इसलिए वह बातचीत में अन्यमनस्क हो रहा था।

इसी समय वे एक लाल रंग के बहुमूल्य ख़ेमे के सम्मुख जा खड़े हुए। उसके सम्मुख कोई पचास तीरदाज़ पहरा दे रहे थे। उन्होंने अदब से तुर्क सरदार का अभिनन्दन किया। तुर्क फुर्ती से घोड़े से कूद पड़ा। उसने संकेत से महता को घोड़े से उतरने के लिए कहा और बताया कि वह अमीर से निवेदन

करके उसे अभी भीतर बुला लेगा।

वह भीतर चला गया। दो हबशी गुलामों ने आगे बढ़कर अश्व थाम लिये। सैनिक घूर-घूरकर महता को देखने लगे। महता अपने विचारों में डूब-उतरा रहे थे। परन्तु उन्हें अधिक सोचने-विचारने का अवसर नहीं मिला। एक सम्भ्रान्त दरबारी पुरुष ने अत्यंत आदर-मान से उसका अभिवादन किया और अमीर के खीमे में चलने का विनम्र अनुरोध किया। महता धड़कते कलेजे से खीमे में घुस गये।

प्रथम तो वे वहाँ की महार्घता देख सकने की हालत में रह गये। खीमे में जो सजावट थी वह अकल्पनीय थी। उसमें कीमती कालीन बिछे थे। खीमे के मध्यभाग में मसनद के निकट अमीर सुलतान महमूद प्रसन्नवदन खड़ा था। उसने कहा—"खुश आमदीद दोस्तमन, मेरे पास मसनद पर बैठकर मुझे ममनून करो और बताओ कि गजनी का सुलतान अपने दोस्त को किस तरह खुश कर सकता है।"

दामोदर महता ने दरबारी कायदे से सुलतान का अभिवादन किया और कहा—"आलीजाह, यद्यपि यह सेवक आपको पहचानता न था, फिर भी उसे कुछ ऐसा गुमान हो गया था कि उसे, हो न हो, हुजूर ही की दोस्ती का रुतबा मिला है। हम लोग दुर्भाग्य से दो अलग-अलग उद्देश्यों में सनद्ध हैं, परन्तु नामवर अमीर दामोदर महता को जब चाहेंगे दोस्त की तरह काम में ले सकेंगे।"

अमीर ने कहा—"दोस्तमन, मैं चाहता हूँ कि तुम्हें निहाल कर दूँ, मगर मैं देखता हूँ कि तुम वह बशर हो जिसे शहनशाह ममनून नहीं कर सकते।"

"फिर भी नामवर सुलतान नाजुक मौकों पर जब चाहें दामोदर महता को अपना दोस्त पायेंगे।"

"मुझे यकीन है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम मुझसे कुछ माँग कर मुझे ममनून करो।"

"आलीजाह ने इस साधारण राजसेवक को दोस्त कहकर सब कुछ दे दिया। अब और कुछ माँगने को रहा नहीं।"

"क्या इस जंग की बाबत मेरे दोस्त गजनी के सुलतान से कुछ कहना चाहेंगे?"

"आलीजाह, मैं महासेनापति महाराज भीमदेव का संदेशवाहक नहीं हूं।"

"ठीक है मैं समझता हूं। तो दोस्त, गजनी के अमीर की जान तुम्हारी अमानत है। बस जाओ, खुदा हाफिज।"

अमीर उठकर महता के गले मिला। खीमे के द्वार तक साथ आया। खीमे के बाहर अमीर के साथ मनसबदारों ने उसे विदाई की सलामी दी और राहदारी का सवार देकर उसे विदा किया।

५० : जयशंकर

पौष की पूर्णिमा की प्रभात-वेला में ज्यों ही उषा की प्रथम किरण फूटी, मन्दिर के शिखर पर आरूढ़ प्रहरी ने शख फूँका। क्षण भर ही में चारों ओर शख और भेदी नाद से दिशाएँ गूँज उठी। डकों और नक्कारों की धमक से प्रभास गर्ज उठा। सहस्रों सैनिकों ने जय-घोष किया—"जयशंकर।"

महासेनापति युवराज भीमदेव हड़बड़ा कर उठ बैठे। पार्षद् ने घबराये हुए आकर कहा—"आक्रमण हुआ अन्नदाता।"

"तो मेरे शस्त्र और वस्त्र ला" भीमदेव तुरन्त ही सज्जित होकर कोट पर चढ़ गये। वहाँ गग सर्वज्ञ, जूनागढ के राव कमालाखाणी, केसर मक्वाणा और दामोदर महता आदि सामंत सचिव उपस्थित थे। बहुत लोग भाग दौड़ रहे थे। सैनिक कंगूरों पर चढ़ रहे थे। धनुर्वर धनुष ताने आज्ञा की प्रतीक्षा में थे। घुड़-सवार, भालेबर्दार प्रांगणों में बद्ध-परिकर खड़े थे।

दूर नदी के किनारे-किनारे अर्धोदित सूर्य के चरण-तल में धूल और गर्द के बादल उड़ रहे थे और उसमें से काली-काली मूर्तियाँ प्रकट होती-सी दीख रही थी। पहिले दो-चार और पीछे शत-सहस्र। ये अमीर के अश्वारोही थ।

झपटते हुए बालुकाराय ने बुर्ज में प्रवेश किया। उन्होंने महाराज भीमदेव के हाथ में धनुष-बाण देकर कहा—"देखिए तो महाराज, यह प्रथम बाण है इसी से आप शत्रु का इस धर्म-नगरी में सत्कार कोजिए।"

"अभी ठहरो बालुक," महासेनापति ने सुदूर उड़ती हुई धूल पर दृष्टि गड़ाकर कहा। सबने देखा कि एक दुर्धर्ष योद्धा काले अरबी घोड़ पर सवार हो सेना

से बाहर आया। उसके साथ कुछ और चुने हुए सवार थे। सबके सुनहरी तारकशी के वस्त्र उस प्रभातकालीन सूर्य की पीत किरणों में चमक रहे थे। जो सबसे आगे था वह पगड़ी पर एक मूल्यवान् पन्ने का तुर्रा बांधे था। उसकी दाढ़ी लाल रंग की थी। वह क्षण भर शांत भाव से खड़ा महालय की फहराती ध्वजा को देखता रहा फिर उसने साथी से धनुष लेकर एक बाण सधान किया। तीर खाई में आकर गिरा।

बालुकाराय ने कहा—"महाराज, अब आपकी बारी है," बाणावलि ने कहा—"क्या यही गजनी का अमीर है ?" महता ने आगे आकर कहा—"यही है महाराज।"

बाणावलि ने बारह टक की अनी बाण में लगाकर धनुष को कान तक खींचा और फिर बाण छोड़ दिया। बाण तुर्रे सहित अमीर की हरी पगड़ी को लेकर भूमि पर जा गिरा।

सैनिक गर्जना कर उठे, "जय शंकर, जय सोमनाथ, हर हर महादेव, बम्भोला।"

वह लाल दाढ़ी वाला सरदार घोड़े को घुमाकर तीर की भांति पीछे को फिरा और एक चक्कर काटकर फिर सेना के मध्य भाग में आ खड़ा हुआ। उसने सकेत किया और तीरों की एक बौछार मन्दिर पर पड़ी। साथ ही 'अल्लाहो अकबर' का गगनभेदी नाद भी उठा। परन्तु उसके उत्तर में इधर से कोई उत्तर नहीं दिया गया। तुर्क सवार आगे बढ़कर खाई के किनारे तक चले आये। बहुत से सवारों ने घोड़े पानी में डाल दिये। बहुत से सवार किनारे पर खड़े होकर तीर फेंकने लगे।

इसी समय बालुकाराय ने सकेत किया और मन्दिर के कंगूरों से तीरों की वर्षा प्रारम्भ हुई। इस भीषण बाण-वर्षा से घबराकर तुर्क सेना की गति रुक गई। अनेक सवार मुंह मोड़कर लौट चले। अनेक खाई के जल में ही डूबने-उतराने लगे। परन्तु कुछ सैनिक खाई के इस पार आकर ऊपर चढ़ने की चेष्टा करने लगे। इस पर राव के कच्छी योद्धाओं ने तलवार की भारी मार करनी प्रारम्भ की। देखते-ही-देखते वह सारा रणक्षेत्र भयानक मारकाट, चिल्लाहट और बीभत्स दृश्यों

से भर गया।

सूर्य का प्रखर तेज बढ़ने लगा और युद्ध भी घमासान होने लगा। बाणों से आकाश छा गया। घायलों की कराह और चीत्कार से वातावरण गूंज उठा। अपराह्न में सूर्यास्त से पहले ही अमीर ने युद्धावसान का संकेत किया। तुर्क और अरबी योद्धा मृत शवों को छोड़ भग्नोत्साह पीछे शिविर में लौटे। हिन्दू-सैन्य में 'जय जय' का बोलबाला हुआ।

५१ : दामो महता की चौकी

प्रथम दिन के युद्ध में विफल मनोरथ हो अमीर के लौट जाने पर हर्ष और उमंग की जो बाढ़ राजपूत सैनिकों में आई उसे अपनी आँखों देखते, शाबाशी देते तथा दूसरे दिन के युद्ध के लिए ठीक-ठीक व्यवस्था करते, जत्थेदारों को आदेश देते महाराज महासेनापति भीमदेव बहुत रात तक सारे मोर्चों पर घूमते रहे। आज के युद्ध में हिन्दू सैन्य की कुछ भी हानि नहीं हुई थी। एक भी आदमी व्यापक रूप से आहत नहीं हुआ था। एक भी मोर्चा भंग नहीं हुआ था। प्रथम बाण से जो अमीर की पगड़ी गिरा दी गई थी, उसकी हँस-हँसकर चर्चा हो रही थी। सिपाही अपने-अपने कौशल की डींगें मार रहे थे।

बहुत रात बीतने पर महाराज भीमदेव अपने शयन-कक्ष में गये। वहाँ उन्हें सूचना मिली कि सर्वज्ञ अभी समाधिस्थ ही हैं। सब सेनापति और मंडलेश्वर एक-एक करके महासेनापति से विदा हुए। गंगा ने आकर महासेनापति को देव-प्रसाद दिया और कहा—सर्वज्ञ तथा देवता के कल भी दर्शन नहीं होंगे।

धीरे-धीरे सारा सोमपट्टन नींद में ऊंघने लगा। दिशाओं में शान्ति एवं नीरवता छा गई। केवल एक व्यक्ति अभी विश्राम नहीं कर पाया और वह था दामो महता। वह चुपचाप सारे मोर्चों को बारीकी से देखता हुआ, और बीच-बीच में अमीर की छावनी में जलती और घूमती हुई हजारों मशालों को देख रहा था। उसी के पीछे उसके दो चर चुपचाप उसी की भाँति छायामूर्ति बने चल रहे थे।

द्वारिका द्वार पर आकर महता खड़ा हो गया। उसने बड़े ध्यान से द्वार के सब मोर्चों को देखा। फिर उसने पीछे मुँह कर मन्द स्वर से कहा—"यहाँ किसकी चौकी है मानन्द ?

"दद्दा सौलंकी की।"

"हां, हां, परन्तु इस समय दद्दा हैं कहां, दीख नहीं रहे।"

"उधर बुर्ज पर वे बैठते है, बैठे तो हैं सामने।"

"ठीक है, किन्तु तुम कहते हो, वह युवक इसी घाट पर आता है।'

"जी।"

"दद्दा ने क्या उसे एक बार भी नहीं देखा ?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है। मैंने दद्दा से पूछा था कि चौकी-पहरा सब ठीक है, तो उन्होंने हंसकर यही कहा—'सब ठीक ठाक है भाया, जब तक यह तलवार है।"

"हां आँ, उन्हें तलवार ही का तो भरोसा है, अरे आनन्द, ये योद्धा तलवार ही को काम में लेना जानते हैं, बुद्धि को नहीं, लेकिन तूने कहा था—वह आज भी आयेगा।"

"जी हां।"

"कब ?"

"दोपहर रात बीते।"

"इसमें तो अब देर नहीं है, लेकिन तूने तो कहा था कि वह कृष्णस्वामी की लड़की से प्रेम करता है, वह तो अब है नहीं, फिर अब क्यों आता है ?"

'सिद्धेश्वर से मिलने।"

'सिद्धेश्वर कौन है ?"

"अमीर और रुद्रभद्र का मध्यदूत।"

"ठीक कह सकते हो ?"

"जी, मैंने स्वयं उसकी बात सुनी है, निश्चय ही कुछ गहरी चालें चली जा रही हैं।"

"तो तुम इस निर्णय पर पहुंच चुके कि रुद्रभद्र सहस्राग्नि तप का जो ढोंग कर रहा है, उसका कुछ और ही उद्देश्य है।"

"संदेह तो मेरा यही है, अब आज आप स्वयं देख लें।"

"क्या वह योद्धा है ?"

"खूब तरुण है।"

'पर शायद बुद्धिमान् नहीं।"

"कम से कम सावधान नहीं, पर साहसी है।"

"तो आनन्द, तू उसका विश्वासभाजन बन।"

"इसी के लिए ना मैं यह चीज लाया हूँ" आनन्द ने हँसकर कहा।

"क्या ?"

'द्वारिका-द्वार की चाभी।"

'किन्तु ......।"

"नकली है, इसे सिर्फ दिखाऊँगा, दूँगा नहीं। इसीसे काम हो जायगा।

आनन्द हँसा। इसी समय पानी में कुछ शब्द हुआ। आनन्द ने कहा—"वह शायद आया है। आप इसी वृक्ष की आड में छिप जायें। उसका कौशल देखिए, किस युक्ति से आता है कि दद्दा का चौकी-पहरा ही व्यर्थ जाता है।"

"ऐसा वह क्यों न करे, यहीं का खेला-खाया है, सब घर-घाट जानता है, दद्दा की आँखों में धूल झोंकना उसके लिए कठिन क्या है।"

"क्या दद्दा को सावधान कर दिया जाय ?"

"तब तो शिकार हाथ से निकल जायगा, किसी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, देखा वह छायामूर्ति।"

'वही है, आप उस वृक्ष की ओट में हो जायें।"

"ठीक है देवसेन, तुम अवसर पाकर पानी में पैठना, और अन्तत सावधानी से उसका पीछा करना। तथा सूर्योदय होने से पहिले ही मुझे उसका सब विवरण देना।"

देवसेन क्षण भर में दृष्टि से ओझल हो गया। दामो महता पीछे हटकर वृक्ष की ओट में छिप गये। आनन्द छाया में छिपता हुआ तट की ओर बढा। तटपर एक बहुत बडा प्राचीन वट-वृक्ष था, उसकी अनगिनत जटाएँ जल तक छू रही थी। ऐसी ही एक जटा को पकडकर कमर तक जल में घुसकर उसने एक शब्द किया। शब्द सुनकर जल में एक सिर बाहर निकला।

आनन्द ने कहा—'निर्भय रहो मित्र, और निकट आ जाओ, कोई खटका

नहीं है।"

छायामूर्ति ने पास आकर कहा—"दम्म मैं ले आया हूँ, यह लो। उसने सोने से भरी एक भारी थैली आनन्द के हाथ में दी—और इधर-उधर सिर हिलाकर बालों का जल झाड़ा। स्वर्ण-दम्म से भरी थैली लेकर आनन्द ने कहा—"ठीक है, मैं भी तुम्हारी चीज ले आया हूँ, देखो" उसने वस्त्र से निकालकर बड़ी-सी चाभी दिखाई।

युवक ने प्रसन्न होकर कहा—"लाओ दो, बाकी इनाम कल मिल जायगा। आनन्द ने चाभी वस्त्र में छिपाकर कहा—"अभी नहीं मित्र, सब काम खूब होशियारी से आगा-पीछा देखकर होना चाहिए। अभी दे दूंगा तो हम पकड़े जायेंगे। प्रातःकाल चाभी माँगी जायगी, न देने से मुझ पर विपत्ति आयगी। तथा द्वार पर पहरा-चौकी बढ़ जायगी। हमारी सारी योजना व्यर्थ जायगी।"

"तब ?"

"मैंने एक युक्ति सोची है। इसी प्रकार की दूसरी चाभी बनवाई है, वह कल मिल जायगी। उसे लेकर तुम अपना काम करना। किसी को सदेह भी न होगा।"

"यही सही, पर अब नित्य आने में जोखिम है।"

"बस एक बार और। परन्तु मैं तुम्हारी एक सहायता करना चाहता हूँ।"

"क्या ?"

"एक पुरुष से मुलाकात।"

"कौन है वह ?"

"काम का आदमी है।"

"कहाँ ?"

"जल से बाहर आओ।"

"वह क्या सहायता करेगा ?"

"सब कुछ।"

"तुमसे भी अधिक ?"

"सबसे अधिक।"

"क्या उस पर विश्वास कर सकता हूँ ?"

"प्राणों का इतना मोह है तो ऐसा दुस्साहस न करो। जाओ, यह लो अपने दम्म।"

"नाराज न हो दोस्त।"

"फिर विश्वास क्यों नहीं करते।"

"करता हूँ।"

"तो मेरे साथ आओ।"

दोनों व्यक्ति वट की लम्बी शाखाओं के सहारे तट पर आये और पेट के बल रेंगकर उस वृक्ष के निकट पहुँचे। दामो महता भी वहाँ पेट के बल औंधे पड़े थे।

दामो ने कहा—"यही वह युवक है ?"

"जी हाँ।"

"तो जरा खसककर मेरे पास आओ।" युवक दामो महता से सट गया।

महता ने छाती के नीचे से तलवार निकाल कर कहा—"इसे भली भाँति देख कर बताओ कि पहचान सकते हो—यह किसकी तलवार है ?"

युवक ने घने पत्तों के झुरमुट से छनकर आती हुई चन्द्र की क्षीण छाया में तलवार को भली भाँति परख कर कहा—"पहचान गया।"

"तो जिसकी यह तलवार है उसके पास जाकर कहो कि जिसके पास यह तलवार है उसके साथ तुम्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए। फिर यदि वह तुम्हें यहाँ भेजे तो कल इसी समय यहीं भेंट होगी। और बात फिर।"

यह कहकर दामो महता खसक कर तेजी से निकट की एक अंधेरी गली में घुस गये।

युवक सकते की हालत में रह गया। आनन्द ने कहा—"क्या तुम जानते हो, यह किसकी तलवार है ?"

"तुम जानते हो ?"

"न।"

"मैं भी नहीं जानता"—युवक के चेहरे पर गहरी घबराहट के चिह्न थे। सघन

होकर उसने कहा—"कल मुझे आना होगा दोस्त।"

"इस तलवार को देखने?"

"बेशक!"

"इसी समय।"

"इसी समय।"

"तो तब तक के लिए विदा।"

युवक ने आनन्द से हाथ मिलाया। और उसी भाँति रेंगकर पेट के बल पानी में पैठ गया। आनन्द ने मन्द स्वर से कहा—"मेरे दम्म मत भूलना।"

युवक ने कहा—"अच्छा।"

५२ : फ़तहमुहम्मद

परिचित शब्द-संकेत से आश्वस्त हो फ़तहमुहम्मद ने पानी से सिर निकाला। आनन्द ने वट-वृक्ष की डाल से झूलकर कहा—"कोई डर नहीं है दोस्त, बाहर आ जाओ," जब युवक ने जल से बाहर निकलकर कहा—"वह बुजुर्ग कहाँ है, मैं उनसे मिलूँगा।"

"तब मेरे पीछे आओ।"

दोनों व्यक्ति चुपचाप खसककर एक अँधेरी गली में घुस गये और टेढ़े-तिरछे रास्ते पार करते एक छोटे से मकान के द्वार पर जा खड़े हुए। द्वार पर पहुँचकर आनन्द ने संकेत किया। संकेत होते ही द्वार खुल गया। दोनों ने भीतर जाकर देखा—एक प्रशस्त कक्ष में दामोदर महता गद्दी पर बैठे हैं। युवक ने आगे बढ़कर अदब से उनका अभिवादन किया।

अभिवादन का जवाब देकर महता ने हँसकर कहा—"इत्मीनान से बैठ जाओ और कहो—जिसकी वह तलवार थी उससे मुलाकात हुई ?"

"हुई।"

"उसने क्या कहा ?"

उसने कहा—"जिसके पास वह तलवार है, उसका हर हुक्म बजा लाना लाजिम है।"

"तो तुम उस आदमी की मर्यादा भी समझ गये न।"

"जी हाँ, मैं हुजूर को रुतबे में अमीर से किसी हालत में कम नहीं समझता।"

"ठीक है, अब अपनी बात कहो।"

"मुझे सुलतान ने आपकी खिदमत में भेजा है।"

"किस लिए ?"

"सुलह का पैग़ाम देकर।"

"पैग़ाम क्या है ?"

"सुलतान सिर्फ़ एक चीज पाकर इस मुहिम से लौट जाएँगे।"

"कौन चीज ?"

"जाँ-बख्शी हो तो अर्ज करूँ ?"

"कहो।"

"वह नाजनीन।"

"कौन ?"

"चौला नर्तकी।"

"दामोदर महता गम्भीर मुद्रा में क्षण भर बैठे रहे। फिर कहा—"कल भी क्या इसी बात को कहने आये थे ?"

"जी नहीं।"

"वह बात क्या थी ?"

"अब उस बात को रहने दीजिए।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"फ़तहमुहम्मद।"

"यह तो नया नाम है, पुराना नाम क्या था ?"

"उस नाम से अब क्या ?"

' फिर भी, मैं जानना चाहता हूँ।"

' देवा, देवस्वामी, युवक उदास हो गया।"

"तुमने कृष्णस्वामी के पास बहुत कुछ पढ़ा-लिखा है।"

"जी हाँ, लेकिन उनके पास नहीं, पीर के पास।"

"तुम तो संस्कृत भी जानते हो, फिर म्लेच्छ भाषा क्यों बोलते हो ?"

"पर शूद्र हूँ, दासी-पुत्र हूँ, संस्कृत पढ़ना मुझे निषिद्ध है, इसकी सजा मौत है, मैं म्लेच्छ भाषा नहीं, शाही जबान बोलता हूँ जो मेरे पीर ने मुझे सिखाई है।"

"लेकिन मैं तुम्हें यदि तुम्हारे पुराने नाम से पुकारूँ ?"

"बेकार है।'

"उस नाम से भी तुम्हें नफरत है ?"

'उसकी याद से भी।"

"तुमने सिर्फ शोभना के लिए ही धर्म त्यागा न ?"

'जी नहीं, मैंने धर्म कबूल किया।"

"मेरा मतलब हिन्दू-धर्म से है।"

"वह धर्म नहीं, कुफ है, धर्म तो सिर्फ इसलाम है।"

"इसलाम में तुम्हें कुछ मिला ?"

"जी हाँ, समानता, उदारता, जीवन, आशा, आनन्द, दौलत।"

"और शोभना ?"

"वह भी।"

"लेकिन वह तो अब मेरे कब्जे में है, यदि मैं तुम्हें न दूँ ?"

'तो मैं आपसे लड़ूँगा।"

"मेरा हुक्म नहीं मानोगे ?"

"नहीं जनाब।"

"अमीर का जो हुक्म है।"

"वह सुलतान के काम के लिए है यह मेरा काम है। शोभना के लिए तो मैं सुलतान नामदार से भी लड़ूँगा।"

"क्या तुम्हारी ऐसी हैसियत है ?"

"हैसियत का सवाल नहीं है, जनाब, तबियत का सवाल है।"

"क्या मतलब ?"

"एक तरफ शोभना और एक तरफ सारी दुनिया, यही मतलब।"

"तुम्हारी बातों से मुझे तुम पर प्यार हो गया, यदि मैं तुम्हें शोभना दे दूँ और वह तलवार भी जिसकी कीमत तुम्हें मालूम है, तो क्या तुम फिर देवस्वामी बन सकते हो ?"

"नहीं हजरत, मैं मुर्दे का मास नहीं खाता।"

"मुर्दे का मांस कैसा ?"

"कमीना हिन्दू धर्म, जो ऐसा मुर्दा है कि इसकी सड़ी हुई बू से दूर ही रहना चाहिए।"

"तुम शोभना के लिए इतना नहीं कर सकते ?"

"जरूरत नहीं है, शोभना के लिए मेरे पास यह तलवार है, लेकिन हम लोग इसे बर्बाद कर रहे हैं।"

"खैर, तो तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"सुलतान की जो ख्वाहिश है वह तो मर्ज कर चुका।"

"लेकिन वह तो मेरे बूते की बात नहीं है भाई।"

"आप क्या अपने देवता को बचाने के लिए एक अदना औरत की कुर्बानी नहीं कर सकते ?"

"एक ओर एक अदना औरत के लिए तुमने अपना धर्म, ईमान, कर्तव्य, देश-भक्ति, सबको लात मार दी। विदेशी विधर्मी तुर्क के दास बन गये, अपने ही घर को बर्बाद करने पर तुले बैठे हो, दूसरी ओर गज़नी का अमीर जिसे लेकर सारी मुहिम से ही मुंह फेरने को तैयार है, उसे तुम 'अदना औरत' कहकर पुकारते हो ? अभी तुम बच्चे हो देवस्वामी, तुम्हारा सिर फिर गया है, और प्रतिहिंसा और स्वार्थ ने तुम्हें पागल कर दिया है। फिर भी तुम्हें यह भूलना न चाहिए कि तुम किसके दूत हो और किससे बात कर रहे हो। तुम्हें मर्यादा से बात करनी चाहिए।"

फ़तहमुहम्मद का सिर झुक गया। उसने आगे झुककर दामो महता के दोनों हाथ छूकर आँखों से लगाये। फिर कहा—"मुझे माफ़ कीजिए, आपकी जो भी मर्यादा हो—मगर आप मेरे लिए रुतबे में अमीर से कम नहीं हैं, मैंने सिर्फ़ साफ़गोई की है, अब हुज़ूर का क्या हुक्म है ?"

"खेद है कि अमीर का यह संदेश मैं महासेनापति तक नहीं ले जा सकता।"

"तो हुज़ूर, मुझे ही महाराज महासेनापति तक पहुँचा दें।"

"तब तो तुरन्त तुम्हारा सिर काट लिया जायगा, क्योंकि तुम सैनिक नियम के विरुद्ध चोरी से पाटन में आये हो।"

"हुजूर क्या मेरी रक्षा न करेंगे ?"

"नहीं कर सकता, फिर तुम यदि अमीर का संदेश महासेनापति तक ले जाना ही चाहते हो तो खुले रूप में अमीर के दूत का अधिकार-पत्र लेकर महाराज के पास जा सकते हो, बाधा नहीं होगी।"

"सुलतान के लिए क्या आप कुछ भी नहीं कर सकते ?"

"सुलतान पर यदि कोई गहरी विपत्ति पड़े और वह मेरा आश्रय चाहे तो मैं उसकी मदद इस तलवार की मैत्री के नाम पर करूंगा और तुम जो इस समय चोरी से आये हो, तुम्हें प्राणदण्ड से बचाकर जीता चला जाने दूँगा, क्या यह काफ़ी नहीं है ?'

"काफी है हुजूर, मैं सुलतान नामदार से हुजूर की मेहरबानी की बात कहूँगा।"

"तुम्हें और कुछ कहना है ?"

"जी नहीं।'

"तो अब तुम जा सकते हो और कभी किसी मुसीबत में तुम्हें एक शुभचिन्तक की आवश्यकता हो तो मेरे पास आना देवस्वामी। यह मत भूलना कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और तुम्हें फतहमुहम्मद नहीं देवस्वामी ही समझता हूँ।"

"फतहमुहम्मद ने दोनों हाथ जोड़कर हिन्दू-रीति से महता का अभिवादन किया और कक्ष से बाहर हो गया। आनन्द भी उसके साथ-साथ पीछे चला। पानी में पैठकर फतहमुहम्मद ने कहा—"मेरी चीज़ ''

"यह है, लेकिन दम्म ?"

"यह लो" युवक ने मुहरों का तोड़ा आनन्द को पकड़ा दिया। फिर कहा—"वह चीज़ मुझे दो।"

"अभी मेरे पास ही रहने दो, इस से मैं तुम्हारी मदद करूंगा।'

"फतहमुहम्मद ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, तो अब मैं चला।"

"फिर अब कब ?"

"कल।"

"ठीक है' युवक ने पानी में गोता लगाया परन्तु वह गया नहीं। दम साधकर

कुछ देर पानी के भीतर ही भीतर बहाव से ऊपर को चला, और फिर किनारे पर आकर एक सीढ़ी के सहारे थोड़ा ऊपर आकर उसने साँस ली, फिर इधर-उधर देखा।

आनन्द भी तट से गया नहीं। दो-चार कदम जाने का अभिनय करके वह भेड़ी की भाँति घूमकर पेट के बल रेंगता हुआ किनारे-किनारे बहाव के ऊपर चलने लगा। उसे यह समझने देर न लगी कि फ़तहमहम्मद गया नहीं, पानी में यहीं है। जब उसने पानी से सिर निकाला तो आनन्द ने देख लिया। वह भी धीरे से जल में पैठ गया। तलवार नंगी कर उसने हाथ में ले ली। फ़तहमुहम्मद ने डुबकी लगाई और आनन्द ने ध्यान से उसकी गति-विधि देखी। फिर उसने भी डुबकी लगाई।

दोनों साहसी युवक अपने-अपने कार्य में तत्पर थे। जल ही जल में वे मुख्य द्वार तक पहुँच गये। यहाँ काफ़ी प्रकाश था। पहरा भी बहुत था। फ़तहमुहम्मद थोड़ा हटकर गहरे जल में पैठ गया। आनन्द ने देखा कि वह केवल छिपकर आगे बढ़ना चाहता है, वह भी सावधानी से जल के भीतर ही भीतर आगे बढ़ने लगा। त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर के पार्श्वभाग में जल के ऊपर ही एक बहुत भारी शमी का वृक्ष था। उस वृक्ष से आनन्द को कुछ संकेत-शब्द सुनाई दिया। उस शब्द को सुनकर फ़तहमुहम्मद ने पानी से सिर निकालकर संकेत किया और फिर किनारे की ओर बढ़ा। आनन्द एक सीढ़ी से चिपक गया।

आनन्द ने सिद्धेश्वर को पहचान लिया। वह वृक्ष से उतरकर सीढ़ी तक चला आया। फ़तहमुहम्मद ने उसके कान के पास मुँह ले जाकर केवल इतना ही कहा—"मंजूर है" और वह पानी में बैठ गया। आनन्द ने स्पष्ट यह शब्द सुना। उसने देखा कि फ़तहमुहम्मद तीर की भाँति लौटा जा रहा है। सिद्धेश्वर ने अपने चारों ओर देखा और मन्दिर के पिछवाड़े की ओर चला गया। आनन्द भी पानी से निकलकर उसके पीछे-पीछे हो लिया। नंगी तलवार उसके पास थी। सिद्धेश्वर चोर दरवाज़े से घुसकर जहाँ छोटे-छोटे बहुत-से मन्दिर थे, उनमें से चक्कर काटता हुआ जाने लगा। आनन्द ने भी निःशब्द उसका पीछा किया।

घूमने-फिरते वह संकटेश्वर की बावड़ी के निकट आकर एकाएक आनन्द की दृष्टि से ओझल हो गया। आनन्द ने बहुत खोजा पर सिद्धेश्वर का पता न लगा जैसे उसे धरती निगल गई हो। इस समय प्रभात की सफेदी आकाश पर फैल रही थी। आनन्द पीछे लौटा।

५३ : रात के अँधेरे में

कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का क्षीण चन्द्र आकाश में बाँकी छटा दिखा रहा था। सागर स्तब्ध था। आधी रात बीत चुकी थी। इस समय सर्वत्र सन्नाटा था। यत्र-तत्र प्रहरियों की पदचाप ही सुन पड़ती थी। समुद्र की लहरें तटवर्ती चट्टानों से टकरा रही थीं। सुदूर शत्रु की छावनी की मशालें धुँधली-सी प्रतीत हो रही थीं। कमालाखाणी अपने मोर्चे पर मुस्तैद थे। उनके कान चौकन्ने थे। वे अमीर की चुप्पी से सन्देह में थे। इससे वे बड़ी उत्सुकता और बारीकी से अमीर की गति-विधि पर अपनी गृद्ध दृष्टि जमाये थे। उन्होंने अपने दो सौ कुशल कछुओं को किसी भी क्षण तैयार रहने का आदेश दिया हुआ था।

उनके कानों में कुछ असाधारण शब्द सुन पड़े। दूर कहीं बड़ी सावधानी से ठोक-पीट हो रही थी। बीच-बीच में किसी के पानी में गिरने का धमाका तथा तैरने का भी सन्देह हो रहा था। उस क्षीण चन्द्र-प्रकाश में साफ-साफ कुछ भी दीख नहीं रहा था। पर उधर किनारे पर कुछ नौकाएँ जमा हो रही हैं, ऐसा उन्हें अनुमान हुआ। उनकी दृष्टि एक अन्धकारपूर्ण स्थान पर केन्द्रित हुई। तब उन्होंने देखा कि वहाँ चुपचाप कुछ काली-काली मूर्तियाँ एकत्र हो रही हैं।

उन्होंने अपने विश्वस्त नायक 'जीवन' को बुलाकर कहा—"भाया, ऐसा चल कि पैरों की आहट न हो। और जितनी जल्दी हो सके सारी बुर्जियों पर तैनात प्रहरियों को सचेत कर दे और सेनापति से कह कि जितने धनुर्धर सम्भव हों, उन सबको जितनी जल्दी हो सके यहाँ भेज दें। सावधान रहे—जरा भी शब्द न हो, जरा भी हलचल न हो। योद्धा मशाल साथ न लावें तथा प्रकाश से बचकर—

खाई से सटकर कोट की आड में यथास्थान छिपकर मेरे संकेत की प्रतीक्षा करें।"

नायक ने तत्क्षण राव की आज्ञा का पालन किया। उसके जाने पर राव ने अपने निकट खड़े एक योद्धा से कहा—"उधर, जहाँ समुद्र खाई से मिलता है, उस आम्रकुंज के अन्धकारपूर्ण घरे में मुझे कुछ दिखाई देता है भाया ?"

"बापू, वहाँ तो बहुत से आदमी इकट्ठे हो रहे हैं. क्या कोट पर आक्रमण होगा ?"

"शत्रु की सेना तो खाई से बहुत दूर है। यह आक्रमण की तो नहीं, कोई दूसरी ही प्रवृत्ति का उद्देश्य दीख पड़ रहा है।"

राव सोच में पड़ गये।

"बापू ?" योद्धा ने चिन्तित होकर कहा।

"क्या ?"

"वे जहाज।"

दूर क्षितिज पर कुछ प्रवहण धीरे-धीरे प्रभास की ओर बढ़े आ रहे थे। राव ने आँखों पर हाथ रखकर देखा और कहा—"भाया, वह तो अपने ही प्रवहण हैं, अमीर क्या उन्हें पकड़ने का प्रयत्न कर रहा है ?"

"उन्हें क्या सावधान नहीं किया जा सकता बापू ?"

"कैसे ?"

"संकेत से ?"

"मशाल से संकेत देना जोखिम का काम है।"

"और यदि मैं संकेत-शब्द करूँ ? प्रवहण के नायक मेरा संकेत-स्वर पहचानते हैं।"

"ठीक नहीं है भाया, शत्रु का ध्यान उधर है भी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। तेरे शब्द-संकेत से या मशाल के संकेत से शत्रु का उधर ध्यान जा सकता है।"

"पर बापू, नौका को आने देना भी तो खतरे की बात है।"

"यह तो है भाया, क्या तू नौका को पहचानता है ?"

"हाँ बापू।"

"उसे इसी क्षण ला सकता है ?"

"देखता हूं।"

"तो जा, और तट की सारी मशालें बुझाता जा, पर तेरी परछाई भी न दीखने पाये, हो।"

योद्धा ने जवाब नहीं दिया। वह तेजी से एक ओर चल दिया। राव फिर उधर ही देखने लगे। उन्होंने दूसरे एक योद्धा को बुलाकर कहा—"भाया, तू कुछ रस्से जितनी जल्दी हो सके जुटा। दो-चार आदमी और संग ले। पर देख, आहट न हो और इधर की हलचल उधर शत्रु की दृष्टि में न पड़ जाय, तू पृथ्वी पर रेंग कर जा।"

सैनिक ने तत्काल ही आज्ञा का पालन किया।

इसी समय एक तट प्रहरी ने आकर निवेदन किया—"महाराज, शत्रु चुपचाप नावों का एक बेड़ा बना रहे हैं।"

राव ने व्याकुल होकर प्रहरी को देखा। पर उन्होंने संयत स्वर में कहा—"कैसा बेड़ा भाया ?"

"उन्होंने सैंकड़ों नावों को जोड़कर एक भारी बेड़ा बना लिया है और वे उसे खाई के मुहाने से कुछ हटकर खूंटों से बांध रहे हैं।"

प्रहरी सांस रोककर राव का मुंह ताकने लगा। उसने फिर कहा—"बापू, उधर हमारे प्रवहण पड़े हैं, शत्रु कहीं उन पर संकट तो लाने की तैयारी नहीं कर रहा है ?"

किन्तु राव ने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। वे गहरे विचार में पड़ गये।

"महाराज, कुछ योद्धा भी बाहर निकालिए।"

"भाया, वे तो उन तरणियों के पास पहुंचने से पहले ही तीरों से बींध दिये जाएंगे।"

सैनिक विचार में पड़कर राव का मुंह ताकने लगा। राव ने कहा—"भाया, अपनी जगह पर सावधान रह और कोई बात हो तो मुझे कह। परन्तु चुपचाप मेरे पास नायक को भेज दे।"

सैनिक चला गया। और कुछ क्षण बाद नायक ने आकर राव को मुजरा

किया।

राव ने शत्रु की हलचल समझाते हुए कहा—"देखा तुमने ?"

"बापू, महाराज को सूचना देनी होगी।"

"उन्हें क्या इस समय कष्ट देना ठीक होगा। यह क्या हमारे बूते के बाहर का बात है ?"

इसी समय भोला ने आकर मुजरा किया। राव ने कहा—"भाया, मुझे तेरी अभी आवश्यकता है।"

"तो अन्नदाता, यह दास हाज़िर है।"

"तू साहस करेगा ?"

"क्यों नहीं अन्नदाता।"

राव ने इधर उधर देखकर कहा—"रस्से ?"

सैनिक ने कहा—"ये हैं।"

"इन्हें कोट से नीचे लटका दो।" फिर पलट कर भोला से कहा—"भाया, दुश्मन वहाँ बेड़ा बना रहे हैं, वहाँ उस ग्राम की अमराई की ओर देख।"

"देख चुका हूँ बापू।"

"तो जाकर मेरे वीर देव को सावधान कर दे। ऐसा न हो, वह शत्रु के बगुल में फँस जाय।"

"मैं अभी चला महाराज।" उसने रस्से पर हाथ डाला।

"परन्तु शब्द न हो, सकट के समय मुझे सूचना कैसे देगा ?"

"अन्नदाता, मेरा सकेत तो पहचानते हैं।"

"हाँ, हाँ वीर, वैसा ही कर, बन पड़े तो देख आ, बेड़े की रक्षा कैसे हो रही है।"

भोला ने पानी में डुबकी लगाई।

राव ने कुछ देर उसे देखा, फिर नायक की ओर मुड़कर कहा—"शत्रु गहरी चाल चल रहा है।"

"कैसी बापू ?"

"देखते नहीं हो, वह बेड़ा !"

नायक पूरी बात सुनने के लिए राव की ओर ताकता रहा। राव ने कहा—"सूर्योदय होते ही अमीर आक्रमण करेगा। आक्रमण के प्रारम्भ ही में वह इसे खाई में खींच लायेगा और कोट पर चढ़ने की चेष्टा करेगा।"

"यह तो बड़ी भयानक विपत्ति है बापू।"

"इसे दूर करना होगा, भाया।"

"बापू, महाराज को सूचना देनी चाहिए।"

"नहीं, यह हमारा काम है। तुम जितने तैराक इसी क्षण इकट्ठे कर सकते हो, उन्हें लेकर खाई के मुहाने पर मेरी प्रतीक्षा करो। परन्तु सावधान रहो। शत्रु को तुम्हारी हलचल का तनिक भी पता न लगने पाये।"

नायक चला गया। राव ने देखा—धनुर्धर योद्धा दो-दो, चार-चार की संख्या में, दल-बादल की भाँति आ-आकर बुर्जियों पर, मोर्चों पर, ठीयों पर आसीन होते जा रहे हैं।

राव आश्वस्त हुए। परन्तु इसी समय उन्हें ऐसा भास हुआ कि वह विराट बेड़ा हिला। उन्होंने आश्चर्य से देखा, वे नावें बिखर कर भिन्न भिन्न दिशाओं में बह चलीं। राव को आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। क्या यह "भगवान भूतनाथ का दैवी चमत्कार नहीं है?"

इतने में कोट के नीचे से संकेत हुआ। राव ने रस्सी लटका दी। भोला चढ़ रहा था।

राव हर्ष से नाच उठे। उन्होंने कहा—"आ वीर, क्या यह तेरी ही कारस्तानी है?"

भोला हँसते हँसते अपने भीगे वस्त्र निचोड़ने लगा। उसने कहा—"बड़ा मजा हुआ बापू, जाते जाते मैंने सोचा—चुपचाप बेड़े को देखता ही चलूँ। जाकर देखा—वहाँ कोई नहीं था। बेड़ा खूँटे से बाँधकर मेरे बेटे सब चले गये थे। प्रहरी दूर आग ताप रहे थे। मैंने डुबकी लगाई और बेड़े की तली में पहुँच दाँव से बेड़े की सब रस्सियाँ काट डालीं। किसी को पता भी नहीं लगा। बेड़ा लहरों के थपेड़ों में घूमता हुआ गहरे समुद्र में यह जा, वह जा।"

भोला दाँत निकालकर हँसने लगा।

"बड़ी बात हुई भाया, तैंने प्रभास को भी बचा लिया और मेरी इज्जत को भी।" उन्होंने आगे बढ़कर भोला को छाती से लगा लिया। फिर कहा—"परन्तु अभी तुझे फिर जाना पड़ेगा।"

"समझ गया बापू, मुझे वीरसिंह जी को सावधान करना है।"

"हां-आ, कहीं हमारे प्रवहण शत्रु की दृष्टि में न पड़ जायें।"

"तो मैं अभी चला।" भोला ने रस्से पर हाथ डालते हुए कहा और वह चुपचाप गहरे पानी में पैठ गया।

५४ : दद्दा चौलुक्य

जिस समय मुहाने की चौकी पर वृद्ध शार्दूल लाखाणी अपनी जागृत सत्ता से प्रभास का संकट टालने का यह प्रयत्न कर रहे थे, उसी समय उसी अर्द्ध-निशा में द्वारिका-द्वार पर कुछ दूसरा ही दृश्य समुपस्थित था। भरुच के दद्दा चौलुक्य की चौकी द्वारिका-द्वार पर थी। आधी रात बीत चुकी थी और चौलुक्य एक सैनिक के साथ कोट की देखभाल कर रहे थे। उनकी आयु अभी तरुण थी। शरीर सुकुमार और सुन्दर था। वे कर्मठ पुरुष न थे। मूलराजदेव ने जब दक्षिण के सेनापति बारप को परास्त कर भृगुकच्छ ले लिया तब उन्होंने चौलुक्यों के पुराने राजा के वंशधरों में से एक को लाट की गद्दी पर बैठा दिया था किन्तु उस पर शासन पाटन के दण्डनायक का रहता था। चामुण्डराय के शासनकाल में दद्दा के पिता ने विद्रोह किया था, सो उसे पदच्युत करके चामुण्डराय ने दद्दा को गद्दी पर बैठा दिया था। अब राजा बन दद्दा भरुकच्छ में चैन की वंशी बजा रहे थे। पाटन के दण्डनायक का फरमान पाने पर उन्हें यहाँ आना पड़ा। पौष की शिशिर रजनी में उन्हें अपनी नव-परिणीता तृतीय रानी को सूनी सेज पर छोड़कर आना पड़ा था। सो वे पल-पल में भरुच भागने की सोच रहे थे। लड़ाई-झगड़ा उन्हें पसन्द नहीं आ रहा था। युद्ध में उन्हें तनिक भी रस न था।

फिर भी दद्दा चौलुक्य एक विचारवान् तरुण थे। यद्यपि भीरु थे, सुकुमार थे परन्तु सहृदय थे। जब उन्हें महाराज भीमदेव ने द्वारिका-द्वार की चौकी सुपुर्द की तो उन्होंने निष्ठापूर्वक वह सेवा ग्रहण की। वे पूरे धर्मभीरु थे। वे वाम

शैव थे और भगवती त्रिपुरसुन्दरी के सेवक थे। रुद्रभद्र पर उनकी अपार श्रद्धा थी। उनके आशीर्वाद से उन्हें पुत्र-लाभ हुआ था। उन्ही के रक्षाकवच से उन्हें भरुच की गद्दी मिली थी। उन्ही के तप के प्रभाव से वे जीते-जागते हैं, ऐसा वे मानते थे। उन्होंने अपनी प्रथम पुत्री चौला को उन्ही के कहने से त्रिपुरसुन्दरी को भेंट कर दिया था जो गग सर्वज्ञ के हस्तक्षेप से भगवान सोमनाथ को अर्पित की गई थी जिससे रुद्रभद्र का क्रोध भडक कर सीमा पार कर गया था।

प्रभास में आते ही उन्होंने सुना कि रुद्रभद्र सहस्राग्नि सन्निधान तप कर रहे हैं। उन्होंने यह भी सुना कि उनका भेजा निर्माल्य त्रिपुरसुन्दरी की भेंट नही हुआ, इसी से क्रुद्ध हो रुद्रभद्र विनाश का आह्वान कर रहे है। उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि गजनी का दैत्य ही यह विनाश बनकर आया है और इसमें रुद्रभद्र की तप प्रेरणा है। और भी बहुतों की यही राय थी। इसकी चर्चा भी बहुत थी। सर्वज्ञ तक यह चर्चा पहुँच चुकी थी पर उन्होंने उस पर कान नही दिया था।

दद्दा जब रुद्रभद्र को प्रणाम करने धूनी पर गये तो रुद्रभद्र ने उनका प्रणाम स्वीकार नही किया। उन्होंने लाल-लाल आँखें करके होंठो ही-होंठो में 'विनाश, विनाश' कहकर उन्हें देखा और दूर चले जाने का सकेत किया। भय से काँपते हुए चौलुक्य चले आये। तब से वे अत्यन्त चिन्तित, अपमान और अमगल की आशका से आतक्ति रहने लगे। उन्हें फिर रुद्रभद्र के सम्मुख जाने का साहस न हुआ। चौला से मिलने का सर्वज्ञ ने उन्हें निषेध कर दिया था तथा बलपूर्वक यह व्यवस्था कर दी थी कि चौला पिता से मिलने न पाये।

परन्तु उस अर्धनिशा में कोट का निरीक्षण करते हुए उन्होंने एक छाया-मूर्ति को अपनी ओर आते देखा। उन्होंने नगी तलवार हाथ में ली। निकट आने पर पहचाना—वह रुद्रभद्र है। कमर में केवल एक रक्ताम्बर है। शरीर नग-धडग। भयंकर जटाजूट के नीचे आग के अगार के समान जलते नेत्र हैं। भस्मभूषित कृष्णकाय है। विकराल डाढों में सम्पुटित मोटे-मोटे काले होंठ हैं। कठ, भुजा और कमर में रुद्राक्ष हैं। हाथ में एक भारी चिमटा है। उस भीमकाय, कृष्ण वर्ण, भयानक आकृति को देखकर दद्दा चौलुक्य का

सून सूख गया जैसे साक्षात् काल-भैरव ही उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ हो। उन्होंने हाथ की तलवार पृथ्वी पर फेंक दी और भूमि पर गिरकर साष्टांग दण्डवत की।

वज्रगर्जन की भाँति एक शब्द उनके कान में पड़ा—"उठ चौलुक्य।"

दद्दा खड़े होकर काँपने लगे—वे बद्धांजलि चुपचाप खड़े रहे। अपनी बड़ी-बड़ी घनी काली भौंहों पर जलती हुई दृष्टि को स्थिर करके रुद्रभद्र ने एक उंगली उठाकर कहा—"इस बार आशीर्वाद नहीं दूंगा, विनाश दूंगा।" दद्दा थर-थर काँपने लगे।

रुद्रभद्र ने अट्टहास करके कहा—"अरे धर्मद्रोही, नहीं जानता—विनाश आ रहा है, सावधान हो जा। यहाँ रोने के लिए कुत्ते और स्यार आ रहे हैं।" उसने अपना विकराल चिमटा हवा में घुमाया और आकाश की ओर देखकर कहा—"ला विनाश, ला विनाश।"

आस-पास के सैनिक सहम कर पीछे हट गये।

रुद्रभद्र ने वज्रगर्जन करके कहा—"त्रिपुरसुन्दरी का निर्माल्य भ्रष्ट हुआ।"

चौलुक्य होठ हिलाकर रह गये।

रुद्रभद्र ने फिर हवा में चिमटा ऊँचा करके कहा—"ला विनाश, ला विनाश।" उसने ऐसी मुद्रा बनाई जैसे भगवान रुद्रदेव प्रलय का ताण्डव-नृत्य कर रहे हों। दद्दा ने काँपते-काँपते कहा—"रक्षा करो, प्रभु, रक्षा करो।"

परन्तु रुद्रभद्र का उन्माद कम नहीं हुआ, उसने अग्निमय नेत्रों से घूरते हुए कहा—"नहीं, नहीं, यह पुरी भस्म होगी। महाकाल का कोप है।" फिर कुछ ठहर कर कहा—"आ मेरे साथ......" इतना कह वह द्वारिका-द्वार की ओर बढ़ा।

पर दद्दा चौलुक्य पत्थर की मूर्ति की भाँति वहीं खड़े रहे।

रुद्रभद्र ने पीछे घूमकर कहा—"आदेश सुना नहीं रे?"

"प्रभु, यहाँ मेरी चौकी है।"

"पर यह देवता की आज्ञा है।"

"देवता की क्या आज्ञा है ?"

"मेरे साथ आ," रुद्रभद्र ने वज्रगर्जना की।

पर दद्दा फिर भी उसी भाँति निस्पन्द खड़े रहे। रुद्रभद्र ने चिमटा हवा में ऊँचा करके कहा—"पातकी, तू देवाज्ञा को स्वीकार नहीं करता तो मेरा दिया पुत्र फेर दे। महाकाल अभी उसका भक्षण करेंगे। ला दे।" उसने उसी क्षण पृथ्वी पर पद्मासन से बैठ सिन्दूर से मैरवी चक्र रचा और अघोर मन्त्रों का उच्चारण कर वह फद्-फद् करने लगा।

दद्दा ने कहा—"प्रभु रक्षा करो, मेरा एक ही पुत्र है।"

"वह मैंने तुझे दिया था रे। अब मैं उसे लूँगा। उसने जल्दी-जल्दी मन्त्रोच्चारण करते हुए गीली मिट्टी का एक पुतला बनाया।"

दद्दा ने कहा—"नहीं, नहीं, प्रभु, मैं आज्ञाधीन हूँ—चलिए।"

"तो आ", पुतले को मुट्ठी में दबाकर वह द्वारिका-द्वार की ओर चल दिया।

दद्दा चौकी छोड़ नीचे उतरे।

द्वारिका-द्वार पर आकर रुद्रभद्र ने कहा—"खोल दे द्वार।"

दद्दा ने रुद्रभद्र को साष्टांग दण्डवत करके कहा—"नहीं, नहीं, गुरुदेव, महाराज की आज्ञा नहीं है। ऐसा मैं करूँगा तो मेरा सिर धड़ पर नहीं रहेगा।"

"मैं कहता हूँ चाभी दे।"

"नहीं, गुरुदेव, नहीं।"

"तेरे पुत्र को महाकाल भक्षण कर लेगा रे।" उसने मिट्टी का पुतला दिखला कर कहा।

"सो कर ले।"

"तेरा नाश होगा।"

"सौ बार हो। मैं चला।" दद्दा मुट्ठी में कसकर तलवार पकड़े पीछे को भागे। परन्तु रुद्रभद्र ने दौड़कर एक भरपूर चिमटे का हाथ कसकर उनके सिर पर दे मारा। दद्दा घूमकर गिर पड़े।

रुद्रभद्र ने उनके वस्त्रों से चाभी निकाल द्वार की खिड़की खोली। प्रेत की भाँति सिद्धेश्वर कहीं से आकर खिड़की की राह बाहर हो गया। खिड़की बन्द कर और चाभी को यत्न से अपनी जटा में रख रुद्रभद्र तेज़ी से एक ओर को चल दिया।

५५ : संकटेश्वर की बावड़ी

रात-भर के जागरण से थका हुआ आनन्द खिन्न होकर अपने डेरे पर आया। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर उसने विश्राम की परवाह न कर दामो महता से मिलना चाहा पर दामो महता अपने आवास में न थे। आनन्द ने उनकी खोज में समय नष्ट करना ठीक नहीं समझा। वह द्वारिका-द्वार की तरफ चला। उसकी दृष्टि खाई के उस पार श्मशान के उस छोर पर पड़ी अमीर की छावनी पर घूमने लगी। सूर्य काफी ऊपर उठ गया था, धूप की तिरछी किरणें सुहावनी लग रही थीं। उसकी उज्ज्वल आभा में रत्नाकर की फेन-राशि बड़ी शोभायमान दीख रही थी। वह कुछ देर तक खूब ध्यान से अमीर की छावनी को देखता रहा। वहाँ इस समय इतना दिन चढ़ने पर भी कोई नई हलचल न थी। आज अमीर क्या युद्ध नहीं करेगा—आनन्द कुछ देर यही सोचता रहा। परन्तु फिर उसकी विचार-धारा सिद्धेश्वर की ओर गई। आखिर सिद्धेश्वर एकाएक उसकी आँखों से ओट होकर गायब कैसे हो गया।

सोचते-सोचते आनन्द तेजी से सकटेश्वर की बावडी की ओर चला। इस समय भी वहाँ सन्नाटा था। महालय में सब लोग युद्ध-सज्जा में दौड़-धूप कर रहे थे। कोई शस्त्र सजा रहा था। कोई सैनिक-टुकड़ियाँ इधर-से-उधर आ जा रही थीं। अकेले-दुकेले सिपाही, सवार-प्यादे अपने रास्ते आ-जा रहे थे। आनन्द का ध्यान इन सबसे हटकर सकटेश्वर की बावड़ी में लगा था।

बावड़ी पर आकर वह चुपचाप एक सीढ़ी पर बैठकर जल की हिलती हुई लहरों को देखने लगा। बहुत-से विचार उसके मस्तिष्क में आये। आज अमीर युद्ध

तहो कर रहा है, सिद्धेश्वर उस युवक से संकेत पा यहाँ आकर लोप हो गया है। इन दोनो बातो में कोई सम्बन्ध है या नहीं—आनन्द यही सोच रहा था। दोपहर हो गया। सूर्य का प्रखर तेज बढ गया। भूख, प्यास, थकान उसे सता रहे थे। उसे विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। इसी समय उसे जल में कुछ हलचल प्रतीत हुई। क्षण भर ही में जल में से एक सिर निकला। यह देख आनन्द बिजली की भाँति फुर्ती से भूमि पर एक पत्थर के ढोके की आड में लेट गया। लेटे ही लेटे वह खिसक कर एक वृक्ष की आड में छिप गया। यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि सिद्धेश्वर जल से बाहर आ रहा है। वह जल से बाहर आकर भारी-भारी डग रखता हुआ एक ओर को चला गया। आनन्द का मन एक बार उसका पीछा करने को हुआ, पर कुछ सोचकर वह ठिठक गया। वह बडे ध्यान से बावडी के जल को देखने लगा। एकाएक उसने मन में एक संकल्प दृढ किया और वह वस्त्रो सहित जल में पैठ गया।

उसने चारों ओर दृष्टि डाली, कोई न था। वह बावडी के मध्य भाग में पहुँच गया, जहाँ कंठ तक जल था। साहस करके उसने पानी में गोता लगाया और बावडी के चारो ओर घूम गया। साँस फूल जाने से वह फिर बाहर आया। दूसरी बार और फिर तीसरी बार उसने गोता लगाया। इस बार उसे दीवार में एक छिद्र नजर आया। छिद्र बहुत बडा था—चारों ओर टटोलकर वह उस छिद्र में घुस गया। घोर अन्धकार था। परन्तु उसे तुरन्त ही मालूम हो गया कि वह एक सुरंग का द्वार है। तथा सुरंग में ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पाँच-छ सीढियाँ चढने पर ही वह जल से ऊपर हो गया। जल से ऊपर आकर वह एक सीढी पर बैठकर सुस्ताने लगा। उसने देखा कि सामने आगे सुरंग में कहीं से प्रकाश आ रहा है। वह आगे बढा। दस-बारह सीढियाँ चढने पर उसने देखा कि ऊपर एक बडा छिद्र है। छिद्र में से एक भारी वट वृक्ष उसे दीख रहा था। वह समझ गया, यह वही विशाल वट वृक्ष है जो कालभैरव के मन्दिर के पार्श्व में है, यहीं से ऊपर को सीढियाँ उस छिद्र तक जा रही थीं पर सम्मुख सीधी सुरंग थी। अब उसने अपने गीले वस्त्रों को निचोड़कर नंगी तलवार हाथ में ले ली और सुरंग में आगे बढ गया। सुरंग में घोर अन्धकार था। उसके अंग में कँपकँपी होने लगी

परन्तु उसने अन्त तक जाने का निश्चय कर लिया, और अन्धकार में तैरता हुआ-सा आगे बढ़ने लगा। उसने दोनों हाथ आगे पसार दिये और अनुमान किया कि सुरंग जंगल और मैदान पार कर रही है। बीच में उसे एक-दो छिद्र मिले, जहाँ किंचित् प्रकाश मोटे-मोटे छिद्रों से आ रहा था।

वह आगे बढ़ा। यहाँ सुरंग दो-तीन दिशाओं में फट गई थी। सोच-विचार कर वह एक दिशा में आगे बढ़ा। कोई वस्तु उसके सिर को छूती हुई उड़ गई। वह सिहर उठा। एक तरफ उसने मन्द-मन्द किसी के धसकने का शब्द अनुभव किया। भय से उसके समूचे अंग में पसीना आ गया। वह और आगे बढ़ा। अब उसे प्रत्यक्ष दीख पड़ा कि सुरंग में सर्प और चिमगादड़ बहुत हैं। परन्तु अब साहस ही उसका आसरा था। वह बड़ी देर तक चलता गया। धीरे-धीरे सुरंग ऊँची होती गई और उसका सिर ऊपर छत से जा टकराया। टटोल कर देखा तो वह ठोस पत्थर की चट्टान थी। अब वह भूमि पर बैठकर दोनों हाथ-पैरों से पशु की भाँति चल रहा था। उसने तलवार मुँह में दबा ली थी। धीरे-धीरे सुरंग तंग होती गई और अब उसे बिलकुल लेटकर खसकना पड़ा। पर थोड़ा और चलने पर प्रकाश की झलक उसे दिखाई दी—प्रकाश बढ़ता गया। अन्त में एक चौकोर-सा समतल स्थान आया जहाँ से ऊपर को सीढ़ियाँ बनी थीं। सीढ़ी चढ़कर उसने सुरंग से बाहर मुँह निकाला और देखा कि वह पापमोचन के खंडहरों में आ पहुँचा है। उचककर वह बाहर आया। उसके हाथ, पैर, मुख और शरीर में धूल, मकड़ी के जाले और गन्दगी लग गई थी। उसने झड़ककर वस्त्र साफ किये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

पापमोचन एक तीर्थ था परन्तु चिरकाल से वह खण्डहर और वीरान पड़ा था। इधर लोगों का आना-जाना नहीं था। दूर तक मोटे-मोटे पत्थरों के टूटे-फूटे मन्दिर और मठ फैले पड़े थे। यह स्थान सोमनाथपट्टन से बारह मील पर था। आनन्द ने इसके सम्बन्ध में सुना था परन्तु उसने कभी यह स्थान देखा नहीं था। वह सावधानी से खण्डहर में घूमने और यह देखने लगा कि वहाँ किसी मनुष्य का कोई गुप्त वास तो नहीं है। खण्डहर में घूमते-घूमते वह जब उसके नैऋत्य कोण की दिशा में पहुँचा तो यह देखकर उसके भय और आश्चर्य का ठिकाना न रहा

कि सामने ग़ज़नी के अमीर का लश्कर पड़ा है। उसे अपनी एकाकी स्थिति का भान हुआ और अब उसे यह समझने में देर न लगी कि सिद्धेश्वर इस गुप्त मार्ग से अमीर के पास मिलने आया होगा। उसकी मेघा-शक्ति ने यह भी समझ लिया कि यदि इस गुप्त मार्ग का उपयोग अमीर सोम-सदन में प्रविष्ट होने के लिए करे तो फिर पट्टन का निस्तार नहीं है। अब उसके मस्तिष्क में दो विचार आये, एक यह कि वह उसी मार्ग से जल्द-से-जल्द कोट में लौट जाये, महता को सूचना दे दे और इस मार्ग पर चौकी-पहरा रखवा दे, दूसरा यह कि थोड़ा और साहस करके अमीर की गतिविधि का अनुसंधान करे। बहुत सोच-विचार कर उसने अमीर की छावनी की ओर रुख किया परन्तु इसी समय तुर्क सवारों ने उसे घेर लिया। आनन्द ने हौसला बनाये रखा। उसने तलवार म्यान में रख ली और कहा—"मैं शत्रु नहीं, मित्र हूँ, मुझे सुलतान नामदार की सेवा में ले चलो।" तुर्क सवार उसे बांधकर छावनी ले गये।

५६ : राजबन्दी

आनन्द को तुरन्त ही अमीर के सम्मुख पेश किया गया। आनन्द अमीर के तेज, प्रताप और प्रदीप्त व्यक्तित्व से डगमगा गया। उसने तलवार की मैत्री की याद दिलाई, फतहमुहम्मद के प्रति मैत्री-भाव भी प्रकट किया, परन्तु इससे उसका अनिष्ट ही हुआ। अमीर जैसे राजनीति के महापण्डित को यह समझते देर न लगी कि सुरंग के रास्ते एकाएक नये अनपेक्षित व्यक्ति का आना शुभ नहीं है। उसने फतहमुहम्मद और सिद्धेश्वर दोनों से परामर्श करके विश्वस्त रूप से उसे शत्रु मान कड़े पहरे में बन्दी कर लिया। परन्तु उसके खान-पान और रहन-सहन की अच्छी व्यवस्था कर दी। सिद्धेश्वर ने स्पष्ट कह दिया था कि यह हमारे भेद को जान गया है। यदि इसे छोड़ दिया गया तो इसका घातक परिणाम होगा और हमारी सारी योजना निष्फल हो जायगी।

बन्दी आनन्द की खूब खातिर तवाज़ा की गई। कोई काम की बात उससे उगलवाने के पूरे प्रयत्न किये गये। पहिले उसने पागल होने का स्वांग भरा पर वह भी निभा नहीं। अन्त में वह शान्त मौन हो बैठा। बहुत कहने-सुनने पर भी फतहमुहम्मद से उसे नहीं मिलने दिया गया। आनन्द अमीर के शिविर में बन्दी है—यह बात अत्यन्त गोपनीय रक्खी गई।

अन्तत. सब बातों पर खूब आगा-पीछा सोचकर आनन्द स्थिर हो गया। वह ऊपर से प्रसन्न और निश्चिन्त रहने लगा। छूटने की उसने कोई चेष्टा नहीं की। एक-दो बार अमीर ने उससे बात की, कुछ मामले की बात निकलवाने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु उसने हँसकर टाल दिया। कहा—"अभी तो मैं अमीर नाम-

दार की सेवा में हूँ ही, समय माने पर अमीर के लाभ की बात निवेदन करूँगा।"
अमीर ने इस गूढ पुरुष पर पहरे-चोकी की और भी यत्न से व्यवस्था कर दी।

रुद्रभद्र से अमीर की एक बार और मुलाकात हुई। सिद्धेश्वर का दूतत्व तो जारी ही रहा। अमीर अब यह भेद भी जान गया कि अघोर वन का वह पिशाच-राज और कोई नहीं, वही धूर्त रुद्रभद्र है। अमीर उसे महालय की सारी सम्पदा सौंप उसे महालय का अधिष्ठाता स्वीकार कर ले—इस शर्त पर उसने अमीर को सुरंग की राह महालय में ले आने का वचन दिया। बीच में बहुत से आदान-प्रदान हुए और अन्त में सब योजना स्थिर कर ली गई। योजना अत्यन्त गुप्त रखी गई। अमीर अपना शिविर और पीछे हटा ले गया और योजना की पूर्ति में लग गया।

दामोदर महता को आनन्द के इस प्रकार एकाएक गायब हो जाने का बहुत आश्चर्य हुआ। और जब पूरा दिन और रात्रि भर बीत गई तो उनका आश्चर्य चिन्ता में बदल गया। एक विशेष चिन्ता की बात यह भी थी कि अमीर ने कोट पर आक्रमण करने की चेष्टा नहीं की। उल्टे वह अपना लश्कर पीछे हटा ले गया। राजपूत योद्धा हथियार बांधे अपने अपने मोर्चों पर मुस्तैदी से डटे हुए आक्रमण की प्रतीक्षा करते रहे। सदैव ही हिन्दू रणनीति यही रही है, आगे बढ़कर शत्रु का दलन करने की नहीं। जब दूसरा भी दिन यों ही बीत गया और अमीर ने युद्ध करने का कोई लक्षण प्रकट नहीं किया अथवा अमीर का कोई सैनिक भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ तो दामो महता अत्यन्त गम्भीर हो गये। वे सोचने लगे 'क्या आनन्द के इस प्रकार एकाएक गायब हो जाने और अमीर के पीछे हटने में कोई तारतम्य है?" उनका यह विश्वास इसलिए और भी बढ़ गया कि फिर फ़तहमुहम्मद नहीं आया।

रुद्रभद्र और सिद्धेश्वर के प्रति उनके सदेह के भाव अवश्य थे। रुद्रभद्र के समूचे पाखण्ड में वे किसी गहरी कार्यवाही का अनुमान कर रहे थे। धीरे-धीरे इसी लक्ष्य-बिन्दु पर उनका सारा सदेह केन्द्रित हो गया। उन्होंने चुपचाप रुद्रभद्र और सिद्धेश्वर पर अपनी सैकड़ो आँखें स्थापित कर दीं। परन्तु दो दिन यों ही बीत गये, कोई नई बात उन्हें नहीं दीख पड़ी। दैव-दुर्विपाक से सकटेश्वर को

बावड़ी का भेद उनसे अज्ञात ही रह गया।

कठिन उलझन को सुलझाने में दामो महता दूसरों को साझी नहीं बनाते थे। स्वयं ही उलझ-सुलझ कर निपटा लेते थे। परन्तु अब, उन्हें जब कोई ओर-किनारा न मिला तो उन्होंने बात का महत्व समझकर सब बातें महासेनापति से कह डालना ही ठीक समझा। महता ने महाराज महासेनापति भीमदेव से एकान्त मुलाकात कर सारा विवरण उन्हें अथ से इति तक कह सुनाया। महता की अमीर से मुठभेड़, तलवार की मैत्री, फतहमुहम्मद और सिद्धेश्वर का षड्यन्त्र और आनन्द के एकाएक गायब हो जाने के समाचार सुनकर महाराज भीमदेव बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने कहा—"महता, क्या मंत्रणा-सभा बुलाई जाय।" महता ने कहा—"महाराज, इन विषयों को प्रकाश में लाना ठीक न होगा। आनन्द के सम्बन्ध में जब तक यह न ज्ञात हो जाय कि वह कहाँ है, कोई कदम आगे बढ़ाना हितकर न होगा। इस सम्बन्ध में अपनी गुप्त कार्रवाई जारी रखूँगा। आवश्यकता होगी तो प्रच्छन्न रूप से अमीर की छावनी में भी जाऊँगा। उसकी गति-विधि समझनी होगी। तथा अमीर के आक्रमण से विरत होने का कारण क्या है, इसका पता लगाना होगा। उसके बाद यदि आवश्यक हुआ तो फिर मंत्रणा-सभा बुला ली जायगी।"

परन्तु महता का सारा ही चातुर्य बेकार गया। धूर्त रुद्रभद्र और उसके चर को ज्यों ही इस बात का पता लग गया कि उनका मंत्र फूट गया है, तथा उन पर दृष्टि रखी जा रही है तो वह भी चौकन्ने और सावधान हो गये। इसी प्रकार और तीन दिन व्यतीत हो गये। कहाँ क्या हो रहा है, इस बात का मर्म कोई न जान सका।

५७ : दो घड़ी की प्राण-भिक्षा

आकाश में बदली छाई थी और उनके बीच तृतीया का अस्तगत चन्द्र क्षीण प्रकाश डाल रहा था। एकाध तारा बादलों में झाँक रहा था। इसी समय दद्दा सोलंकी की मूर्च्छा टूटी। कुछ देर वे सिर पकड़कर बैठे रहे, परन्तु शीघ्र ही उन्हें घटना का स्मरण हो आया। उन्होंने भयभीत होकर अपनी कमर टटोली—द्वारिका-द्वार की चाभी वहां नहीं थी। भय से उनका मुंह पीला हो गया। उन्होंने आंख उठाकर खाई के उस पार बिखरे हुए अंधकार पर दृष्टि डाली। उन्होंने देखा—असंख्य काली-काली मूर्तियां चीऊंटियों की भांति किसी माया से प्रेरित-सी खाई के इस पार धँसी चली आ रही हैं और अनवरुद्ध द्वारिका-द्वार से महालय के परकोट में प्रविष्ट हो रही हैं। कहीं भी एक शब्द नहीं हो रहा है। उनका सिर घूमने लगा और आंखों में अंधेरा छा गया। सिर के घाव से अभी भी खून बह रहा था। और सिर दर्द से फटा जा रहा था। परन्तु वे दौड़कर दो-दो, चार-चार सीढ़ियां फलांगते हुए द्वारिका-द्वार की ओर दौड़े। राह में एक बुर्ज था, वहां सैनिकों की एक टुकड़ी पहरा बदल रही थी। बुर्ज द्वारिका द्वार से तनिक आड़े पड़ता था। दद्दा के सिर से खून बहता देख टुकड़ी के नायक ने कहा—"बापू, यह क्या? रक्त कैसा?" पर दद्दा ने पागल की भांति कहा—"प्रलय हो गया रे, प्रलय, उधर देख।"

दलपति ने देखा तो सन्नाटा छा गया। उसने तुरन्त नरसिंहे में फूंक दी। वह नरसिंहा-निनाद उस क्षीयमाण रात्रि के सन्नाटे में गूंज उठा। सहसा सभी बुर्जों से नरसिंहे बज उठे और सैनिकों की टुकड़ियों में भाग-दौड़ मच गई। दद्दा नंगी

तलवार हाथ में लिए पागल की भाँति 'सावधान-सावधान' चिल्लाते द्वारिका-द्वार की ओर दौड़े, जहाँ के वे रक्षक थे, और जहाँ चींटियों की पंक्ति की भाँति शत्रु धँसे चले आ रहे थे।

इसी बीच सैकड़ों मसालों का प्रकाश हो गया था। और टिड्डी-दल की भाँति राजपूत योद्धा नंगी तलवारें ले-लेकर द्वारिका-द्वार की ओर बरसाती नदी की भाँति बढ़े चले आ रहे थे। धनुर्धर अपने अपने नाकों पर जमकर तीर बरसाने लगे। बर्छेवाले बाँके वीर बर्छा फेंकने लगे। हज़ारों वीर खाई में कूदकर बढ़े आते हाथियों पर करारा वार करने लगे। देखते-ही-देखते टूटती हुई वह रात प्रलय-रात्रि हो गई।

शीघ्र ही दोनों दल जुट गये। 'हर हर महादेव' और 'अल्लाहो अकबर' का निनाद एक-दूसरे से टकरा गया। योद्धा छाती से छाती भिड़ाकर घातक प्रहार करने लगे। तीरों से आकाश पट गया। घायलों की चीत्कार, मरतों का आर्तनाद, हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, शस्त्रों की झंकार सब मिलकर रक्त में अवसाद उत्पन्न करने लगा।

महाराज महासेनापति भीमदेव झटपट कवच धारण कर शस्त्रास्त्र ले घोड़े पर सवार विद्युत्गति से सारे मोर्चों की व्यवस्था का निरीक्षण करने और समुचित आदेश देने लगे। बालुकाराय और दामो महता उनकी रकाब के साथ थे। महासेनापति ने द्वारिका-द्वार पर आकर गम्भीर स्थिति देखी। दद्दा चौलुक्य मुट्ठी में तलवार थाम, ख़ून से शराबोर, महाराज महासेनापति भीमदेव के सम्मुख आ चिल्लाकर बोले—"मैं कर्त्तव्यच्युत हुआ हूँ। मेरा शिरच्छेद करने की आज्ञा दीजिए।"

महाराज ने पूछा—"क्या बात है चौलुक्य?"

"मैं द्वार की रक्षा न कर सका।"

"अवश्य ही आपने शक्ति भर कर्त्तव्य-पालन किया होगा।"

"नहीं महाराज, मैंने कर्त्तव्य-पालन नहीं किया। मैंने चौकी त्याग दी।"

"क्या?" महाराज ने क्रोध से नथुने फुलाकर कहा।

हठात् उन्हें याद आया कि चौलुक्य चौला के पिता हैं। उन्होंने नर्म होकर

कहा—"हुआ क्या चौलुक्य ?"

चौलुक्य ने सब घटना जल्दी-जल्दी सुना दी। महाराज की आँखों से आग निकलने लगी।

उन्होंने पूछा—"तुम रुद्रभद्र के साथ चौकी छोड़कर द्वारिका-द्वार पर गये।"

"गया—गया, मैं गया।"

"तुमने द्वार की चाभी रुद्रभद्र को दी ?"

"नहीं महाराज। मेरे सिर पर ब्रह्म राक्षस ने प्रहार किया, मैं बेसुध हो गया, फिर होश में आया तो अनर्थ हो चुका था।"

"तुम्हें मरना होगा।" महासेनापति ने गम्भीर होकर बालुकाराय को पुकारा। बालुकाराय सम्मुख आये तो महाराज ने आज्ञा दी—' चौलुक्य को ले जाकर अभी शिरच्छेद करो।"

"दुहाई महाराज", चौलुक्य ने दाँत से तृण दाबकर कहा।

"क्या प्राण-भिक्षा माँगते हो ?"

"नहीं महाराज, केवल थोड़ा समय मुझे भिक्षा में मिले।"

"किस लिए ?"

"प्रायश्चित्त के लिए।"

"कितना समय ?"

"केवल दो घड़ी।"

"तो बालुक, चौलुक्य को बाँध लो, उसकी तलवार भी छीन लो।"

"यह नहीं महाराज, मृत्युदण्ड तक मुझे और मेरी तलवार को स्वतन्त्रता दीजिए।"

"तुम भागना चाहते हो, चौलुक्य ?"

"नहीं महाराज, मैं भागूँगा अब कहाँ ? मेरा सारा राज्य जमानत पर लीजिए।"

"तुम चाहते क्या हो ?"

"पृथ्वीनाथ, समय कम है, विवाद में बहुमूल्य क्षण नष्ट हो रहे हैं। मुझे

दो घडी को मेरी तलवार बख्श दीजिए।"

दामो महता ने कहा—"महाराज, समय टेढा है, चौलुक्य का जिम्मा मैं लेता हूं।"

"तो दामो, दो घडी बाद, तुम्हीं इसका सिर काट लेना। शायद मुझे फिर आज्ञा देने का अवसर न मिले।" उन्होंने अपना अश्व आगे बढाया और दद्दा, तलवार ऊँची किये छलाँगें भरते द्वारिका-द्वार की ओर दौडे।

उन्होंने अपने कच्छी योद्धाओं को ललकार कर कहा—"भाइयो, यह प्राण और तलवार मुझे दो घडी को मिले हैं। इसी बीच हमें यह कलंक धो बहाना है। आगे बढो, द्वार हमारा है और इस कोमल भावुक तरुण क्षत्रिय का तेज उस समय अपना अप्रतिम रंग दिखाने लगा। दद्दा के सब योद्धा प्राणों का मोह छोड छातियों की दीवार बनाकर द्वार पर अड गये। अमीर ने अपनी गति का अवरोध देख द्वार पर उन्मत्त हाथी हूल दिये पर दद्दा चौलुक्य की तलवार उनसे भी न झुकी। लोथों पर लाशें पाटकर दद्दा ने दो घडी बीतते-न-बीतते द्वार पर अधिकार कर लिया। द्वार बन्द होने पर वह घूमे और भीतर घुस आये। शत्रुओं को गाजर-मूली की भाँति काटने लगे। दद्दा पर जो रण-रंग चढा उसके प्रभाव से शत्रु आतंक से भयाक्रान्त हो पटापट मरकर गिरने लगे। एक बार फिर भीषण नाद हुआ—'हर हर महादेव'।

५८ : समर्पित तलवार

इसी समय जूनागढी-द्वार पर तुमुल कोलाहल हुआ। महाराज महासेनापति का ध्यान उधर गया। मामला गम्भीर होता जा रहा था। कमालाखाणी की तनिक भी आन न मानकर शत्रु मोट में घुस आये थे। हज़ारों कछुए धातु की बडी-बडी ढालों में सिर छिपाये नर्मनियाँ पीठ पर लादे तैरते हुए कोट तक आ रहे थे। पीछे बलूची घुड़सवार उन पर बाणों की छाया कर रहे थे। उनकी अगल बगल अमीर के हाथी दीवार बनाकर चल रहे थे। देखते-ही-देखते सैंकड़ों सीढ़ियाँ कोट पर लग गईं और जीवट के तुर्क लम्बी लम्बी डाढ़ी के बीच बड़ी बड़ी तलवारें को दाँतों में पकड़ सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। कोट के राजपूतों ने ऊपर से तीर, पत्थर और गर्म तेल उलीचना आरम्भ किया। वृद्ध कमालाखाणी अकथ पराक्रम दिखा रहे थे। उनके पाँच हज़ार तलवार और बर्छे के धनी योद्धाओं की लोथों से कोट और तट पट गया था। अब उनकी आशा अपने जहाज़ों पर थी जो तेज़ी से बढ़े चले आ रहे थे। जहाजों के बीच में तीन सौ नावें थीं जिनमें से प्रत्येक पर इक्कीस इक्कीस धनुर्धारी थे। मार के भीतर आते ही जहाजों और नौकाओं से बाण-वर्षा होने लगी। नौकाएँ आगे बढ़कर अमीर के तैरते हुए हाथी, घोड़ों और पादनिकों का कचूमर निकालने लगी। इस पर अमीर ने अपने सम्पूर्ण मस्त हाथियों को कोट में ठेल दिया। घुड़सवार बलूची भी पानी में पैठ गये। इस काली बला से उलझकर नावें उलटने लगी। अमीर ने जहाजों में आग लगाने को अग्नि-बाण छोड़ने आरम्भ किये।

अब मुख्य युद्ध जल में हो रहा था। देखते-ही-देखते एक जहाज़ में आग लग

गई। शीघ्र ही वह जहाज धायँ-धायँ जलने लगा। इसी समय वीरवर दद्दा चौलुक्य ने द्वारिका-द्वार अधिकृत किया। द्वारिका-द्वार से 'हर हर महादेव' का निनाद ऊँचा हुआ और खाई में आग की लपटों को लहराता देख शत्रुओं ने हर्ष से उन्मत्त हो 'अल्लाहो अकबर' का नाद किया। हर्ष और भयपूर्ण दोनों के नाद आपस में टकरा गये।

महाराज महासेनापति भीमदेव मुग्ध नेत्रों से दद्दा का अतुलनीय विक्रम देख रहे थे। इस दुर्धर्ष कोलाहल से उनका ध्यान जूनागढ़ी द्वार की तरफ गया। वे अश्व को और ऊँचाई पर ले जाकर वहाँ की गति-विधि ध्यान से देखने लगे। देखते-देखते उनकी भृकुटी में बल पड़ गये। उन्होंने इधर उधर चिन्ताग्रस्त नेत्रों से देखा। इसी समय रक्त से शराबोर प्रत्येक अंग से झर झर खून झरते हुए दद्दा हाँफते हुए आये और अपनी तलवार महाराज महासेनापति के सम्मुख बढ़ाते हुए उन्होंने वीर दर्प से कहा—"अपने पाप का प्रायश्चित्त और अपराध का परिहार मैंने कर लिया—महासेनापति, वह देखिए द्वार अब हमारे अधिकार में है, दो घड़ी पूरी हुईं। अब महाराज, यह मेरी तलवार और यह मेरा प्राण।" महाराज भीमदेव ने तुरन्त घोड़े से कूदकर दद्दा को छाती से लगा लिया। प्रेम के आँसू बहाते हुए उन्होंने कहा—"चौलुक्य, क्षत्रिय धर्म बड़ा कठोर है। अभी यह तलवार अपने वीर हाथों में मजबूती से पकड़े रहो। उधर देखो, जूनागढ़-द्वार पर दबाव बढ़ रहा है। कमालखाणी संकट में है, जाओ वीर, यह मेरा अश्व है, अपना जौहर दिखाओ। चौलुक्यों का रक्त जिससे उज्ज्वल हो।"

चौलुक्य ने तलवार मस्तक से लगाई। महाराज महासेनापति ने रकाब थामकर वीर को अपने अश्व पर चढ़ाया और रक्त की होली खेलने में मस्त तरुण चौलुक्य अपने शूरों को ललकारता हुआ जूनागढ़ी द्वार पर लपका।

उसके साथ अब केवल पाँच सौ ही योद्धा थे। सभी के अंग लोहू से रंग चुके थे। पर यह आन पर खेलने की बात थी। बात की हो तो बात है। इन वीरों ने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। वीर चौलुक्य शत्रुओं में धँसते चले गये। उसके चुने हुए वीरों ने उन्हें चारों ओर से घेर कर वह मार मारी कि आतंक छा गया। पर इसी समय अमीर के बलूची दैत्य लम्बी-लम्बी खमदार तलवार ले-लेकर दद्दा

के छोटे से दल पर टूट पड़े। कमालाखानी उनकी मदद नहीं कर सकते थे। वे अपने जहाजों की सुरक्षा में व्यस्त थे। महाराज महासेनापति ने देखा। क्रोध से थर-थर कांपते हुए महाराज भीमदेव पाँवप्यादे ही तलवार हाथ में ले दौड़ भागे। यह देख बालुकाराय ने दौड़कर उन्हें अपना अश्व दे दिया। महाराज चौलुक्य के पीछे तुर्कों में घंसते ही चले गये। उन्होंने किसी की आन नहीं मानी। विकट संकट देख बालुकाराय ने महाराज के हजारों शरीर-रक्षकों को ललकारा। परन्तु इतने आदमियों के एक-साथ बढ़ने की वहाँ गुंजाइश न थी। बढ़ती हुई सेना की प्रगति धीमी पड़ गई। उधर महाराज और दद्दा एकबारगी ही शत्रु के दबाव में पड़ गये। बालुकाराय चिन्ता से अधीर हो गये।

इसी समय एक अत्यन्त भयानक अघट घटना घटी। लड़ते-लड़ते एक बलिष्ठ तुर्क से दद्दा की भिड़न्त हो गई। तुर्क का एक पैर सीढ़ी पर था दूसरा कोट पर। उसके एक हाथ में विकराल टेढ़ी तलवार थी, दूसरे से वह सीढ़ी थामे था। दद्दा ने लात मारकर उसे पीछे धकेलना चाहा। लात सीढ़ी में उलझ गई। सीढ़ी उलट गई, एक क्षण के लिए दोनों हवा में निराधार लटके और तुर्क के साथ दद्दा भी खाई में जा गिरे। उस स्थान पर खाई में तुर्क ही तुर्क दीख रहे थे। पानी में गिरकर तुर्क दद्दा से भिड़ गये। दद्दा जैसे सुकुमार तरुण का—जब कि वे पहले ही घायल हो चुके थे, इस भयानक मुठभेड़ में जुट जाना जीवट का ही काम था। सैकड़ों तलवारें उन पर पड़ रही थीं। और इसमें तनिक भी सन्देह न था कि दद्दा के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। महाराज भीमदेव उस समय उनके निकट पहुँच चुके थे पर उन्हें गिरने से बचा न सके। अब इस प्रकार इस वीर का निधन देखना भी उनके लिए संभव न था। महाराज भीमदेव हाथ में तलवार लिये घोड़े समेत ही खाई में कूद पड़े। भय और विस्मय से राजपूत हाहाकार कर उठे। चारों ओर कुहराम मच गया। महाराज महासेनापति भीमदेव को खाई में घोड़े सहित कूदते हजारों आदमियों ने देखा महाराज का प्राण संकट में देख ललकारते हुए सैकड़ों योद्धा सत्तर हाथ ऊपर कोट से खंदक में कूद पड़े। ऊपर कोट पर अनगिनत योद्धा आ जुटे, और बाण-वर्षा करने लगे। महाराज भीमदेव तैरते हुए प्रबल पराक्रम से शत्रुओं का दलन करते हुए दद्दा के निकट जा पहुँचे। और चौलुक्य से गुथे हुए दैत्य का सिर काट लिया। दैत्य

से मुक्त होकर चौलुक्य पाशु ही तैरते हुए एक घोड़े पर चढ़ गये। पल-पल में योद्धा कोट पर से मोट में कूद रहे थे। उस समय पानी में वह खजर और तलवार चली कि मोट का जल लाल हो गया। उस पार से शत्रु टिड्डी-दल की भांति बढ़े चले आ रहे थे। महाराज और दद्दा पर हजारों तलवारें छा रही थी। बाणों की बौछारों ने उन्हें ढांप लिया था।

बालुकाराय ने दद्दा को मोट में गिरते और महाराज को उनके पीछे छलांग मारते देखा। इस समय वे द्वारिका-द्वार पर मोर्चा ले रहे थे। वहाँ बड़े वेग का घमासान हो रहा था तथा द्वार 'अब टूटा, अब टूटा' ऐसा प्रतीत हो रहा था। अब वे क्या करें? सोचने विचारने का समय न था। सकट भारी था। बालुकाराय ने चरम साहस किया—अपने पाँच सहस्र सुरक्षित लाट योद्धाओं को ललकारा और द्वार खोल दिया। एक ओर 'हर हर महादेव' का नाद करते हुए लाट योद्धा द्वार से शत्रुओं को धकेल कर अपने महाराज के प्राण की रक्षा के लिए बाहर आ-आकर जल में कूदने लगे। दूसरी ओर तुर्क सवार 'अल्लाहो अकबर' कहते हुए, एक बार दुर्धर्ष वेग से फिर द्वार में घुस गये। बालुकाराय का सारा ध्यान महाराज पर था। और वे जल में कूदकर दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए अपने योद्धाओं को बढ़े आने को ललकार रहे थे। और गुर्जर योद्धा आकाश से टूटते नक्षत्रों की भाँति जल में कूदकर तलवार चला रहे थे। बड़ा ही दुर्घट समय था। अन्त में गुर्जर योद्धा महाराज के निकट पहुँच ही गये। कठिन मार में उन्होंने महाराज और दद्दा का सैकड़ों घावों से भरा मूच्छित शरीर अपने कब्जे में लिया और हाथों हाथ लेकर द्वारिका-द्वार की ओर लौटे। पर इस बीच अरक्षित द्वार पर फिर तुर्कों ने अधिकार कर लिया था और उनके दल-बादल कोट में घुसे चले आ रहे थे। मकवाणा ने दूर से यह देखा। उन्होंने यह भी देखा कि महाराज, दद्दा और बालुकाराय तीनों की खैर नहीं है। उनका कोट में प्रविष्ट होना तथा जीवित रहना कठिन है। वे दुर्धर्ष वेग से अपने योद्धाओं को लेकर द्वारिका-द्वार पर दौड़े और लोहे की जीवित दीवार बनकर द्वार पर अड़ गये। एक बार शत्रु की गति फिर रुक गई। अब इस वीर ने प्रबल सामर्थ्य से शत्रु को चीर कर राह बनाई। बालुकाराय और महाराज को भीतर लिया तथा एक बार फिर द्वार को अधिकृत करने में सफल हुए। राजपूतों ने तुमुल हर्षनाद किया—'हर हर महादेव, हर हर महादेव'।

५६ : विनाश का अग्रदूत

धूर्त और महान् रणपंडित अमीर समूचे युद्ध-क्षेत्र पर अपनी गृद्ध दृष्टि दिये सैन्य-संचालन कर रहा था। अभी उसकी सेना का मुख्य भाग तथा वह स्वयं खाई के उस पार ही था। इधर राजपूत सभी मोर्चों पर दबाव में पड गये थे। राजपूतो के मोर्चे जर्जर और अरक्षित हो रहे थे, पर सबसे भयानक बात तो महासेनापति का मूर्च्छित हो जाना था। कुटिल और प्रत्येक मूल्य पर विजय, केवल विजय ही प्राप्त करने के हौसले मन में रखने वाले अमीर को यह भास गया कि निर्णायक युद्ध का क्षण अब दूर नहीं है और उसने अविलम्ब अपनी योजना कार्यान्वित की।

फ़तहमुहम्मद और सिद्धेश्वर उसकी रकाब के साथ थे। उसने फतहमुहम्मद की ओर भेदभरी दृष्टि से देखा और अपनी डाढी पर हाथ फेरते हुए कहा—"ऐ नेकबख्त, यही वक्त है कि तू अपनी मुराद को पहुँच सकता है। क्या तू सबसे जबर्दस्त नाजुक मुहिम का सर्दार बनकर इस बडी फ़तह का सेहरा अपने सर पर बाँधने को तैयार है ?"

फ़तहमुहम्मद ने आगे बढकर अमीर की रकाब चूमी। उसने कहा—"आली-जाह, मेरे खून की प्रत्येक बूँद सब कुछ कर गुजरने पर आमादा है, मैं जिन्दगी को एक तिनके के समान समझता हूँ, हुजूर हुक्म दें।" उसने तलवार सूत ली।

"तो जा, सिर्फ़ दो सौ मर-मिटने वालो को छाँट ले। यह गुसाईं तुझे राह दिखायेगा। अब से दो घडी के भीतर उस बुलन्द दर्वाज़े की पौर पर गजनी के सुलतान का इस्तक्बाल कर। मैं खुदा का बन्दा महमूद—वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। और मैं कहता हूँ कि वह दर्वाजा आज से फ़तह-दर्वाजा कहलायेगा।"

यह ले यह तलवार, जिसने सोलह बार फतह का पानी पिया है, पाक परवरदिगार और पैगम्बर इसे सत्रहवीं फतह तेरे हाथ से दे। जा राह के हर रोड़े को रौंद डाल, और अपनी राह साफ़ कर। तुझे इस तलवार के साथ वे सब हकूक मैंने दिये, जो अमीर महमूद को प्राप्त हैं। जा जा, अलहम्दुलिल्लाह। राज की बात से तू अनजान नहीं।'

युवक ने तलवार को दोनों हाथों में लेकर चूमा। एक नजर उसने अमीर के चुने हुए योद्धाओं पर डाली। दो सौ जीवट के वीरों को अपने पीछे आने का संकेत कर सिद्धेश्वर के अश्व की लगाम अपने घोड़े के चारजामे से बाँध, तलवार की नोक उसकी छाती पर रखकर कहा—"चलो गुसाईं।"

सिद्धेश्वर इस दासीपुत्र की स्पर्द्धा और दबंगता से क्रुद्ध गया। उसने घृणा से उसकी ओर देखा। फिर सुलतान से कुछ कहना चाहा मगर सुलतान ने अपना रुख फेरकर पास खड़े मसऊद से कहा—'मसऊद, अब हमारी बारी है।" और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे एकबारगी ही समूचा अचल हिमालय चल विचल हो गया है। ज्यों ही अमीर ने घोड़ा पानी में डाला, उसके साथ ही तीस हज़ार योद्धा पानी में पैठ गये। 'अल्लाहो अकबर' के तुमुल नाद से महालय प्रकम्पित हो गया। महालय के सभी मोर्चों पर जूझते हुए राजपूतों के हाथ एक क्षण को रुक गये। शत्रु-दल नया बल पाकर विद्युत् गति से आगे बढ़ा।

फतहमुहम्मद अपनी छोटी-सी टुकड़ी को लिये द्रुत-गति से लश्कर से पीछे हटकर पापमोचन की ओर बढ़ा और कुछ ही क्षणों में सुरंग के द्वार पर आकर घोड़े से उतर पड़ा। सभी योद्धा घोड़ों से उतर पड़े। फतहमुहम्मद ने सिद्धेश्वर की पीठ में तलवार की नोक छुआकर कहा—"आगे चलो गुसाईं।"

परन्तु सिद्धेश्वर इस दासीपुत्र का यह अपमानजनक व्यवहार न सह सका। उसने कहा—'क्या तेरे कहने से ?"

परन्तु फतहमुहम्मद ने तर्क नहीं किया। फुर्ती से रस्सी उसकी कमर में डालकर उसके दोनों हाथ पीछे कसकर बाँध दिये और दो तुर्क सैनिकों के हाथ में रस्सी थमाकर कहा—"इस आदमी को तनिक भी दरेग़ करते देखो तो तुरन्त सिर उड़ा दो।" इसके बाद उसने मशाल जलवाई और सिद्धेश्वर को धकेलता हुआ

सुरंग में घुस गया। उसके पीछे उन दो सौ दैत्यों की सेना भी। सिद्धेश्वर रस्सियों से जकड़ा हुआ—तलवार की नोक से धकेला जाकर सुरंग में बदहवास की भाँति चलने लगा। विश्वासघात करने के पश्चात्ताप से उसका मन ग्लानि और दुःख से भर गया पर अब क्या हो सकता था। अपमान और क्रोधाग्नि की ज्वाला से जलता, भुनता, शोक और अनुताप में डूबता उतराता, तलवार की नोक से धकेला हुआ वह विश्वासघाती ब्रह्मराक्षस विनाश की उस अन्धरी सुरंग में राह दिखाता, मन-ही-मन अघताता पछताता बढ़ा चला जा रहा था।

६० : निर्णायक क्षण

डंका बजाते और खुशियाँ मनाते हुए प्रधान तुर्क सेनापति मसऊद हाथियों पर पुल बनाने की सामग्री लेकर खाई में घुसा। दो सौ हाथियों पर मोटी-मोटी लोहे की जंजीरें, भारी-भारी रस्से, छोटे-बड़े तख्ते और पुल बनाने की आवश्यक सामग्री थी। हाथियों की आड लेकर हजारों बढई अपने-अपने औजार पीठ पर बाँध, बड़ी-बड़ी लोहे की ढालों के नीचे सिर छिपाये चल रहे थे। उनके पीछे अपने बलूची घुड़सवारों के बीच बसा हुआ अमीर अपनी हरी पगड़ी पर पन्ने का तुर्रा पहने, अपनी लाल डाढ़ी को फर्राता हुआ आगे बढ़ा। उसके पीछे बाणों का मेंह बरसाते, असंख्य योद्धा मशकों पर, हाथियों पर और घोड़ों पर तैरते बढ़े चले आ रहे थे जैसे वे भूमि पर ही हों।

अभी सूरज ढलने लगा था। उसकी तिरछी पीली किरणें अमीर की तलवारों में पीली चमक उत्पन्न कर रही थीं। सेना गगनभेदी 'अल्लाहो अक्बर' के नारे बुलन्द करती हुई बरसाती नदी के प्रवाह की भाँति बढ़ी चली जा रही थी। मृत्यु और विपत्तियों को खेल समझने के अभ्यस्त, तुर्किस्तानी पार्वत्य प्रदेश के ये बर्बर सैनिक किसी भी बाधा को बाधा न समझ दुर्धर्ष वेग से चले आ रहे थे। उनके आगे विजयी महमूद था जिसे अपनी सतर्कता, साहस, योजना और युद्ध-कौशल पर पूरा भरोसा था।

सिंहद्वार पर जूनागढ़ के राव की चौकी थी। वे अपने दस हजार सैनिकों के साथ इस आनी हुई विपत्ति का सामना करने को अग्रसर हुए। अभी तक युद्ध में इनका मोर्चा अक्षुण्ण बचा था। उन्होंने झटपट दूसरे मोर्चों पर सावधानी से रहने

के सन्देश भेजे और कठिन युद्ध के लिए तैयार हो गये। सकट के क्षण को उन्हो
समझ लिया था। क्षण-क्षण अन्य मोर्चों के समाचार उन्हे मिल रहे थे। आ
दिन से भी अधिक काल तक जो उनके नेत्रा के सम्मुख खून की होली खेली ग
थी—उसे देखते हुए भी वे अब तक अचल, अमग रहे थे। अब उनकी बारी थी
सोरठी योद्धाओं ने तलवार खीच ली। राव ने सैनिकों को सम्बोधन करके कहा—
"भाया, यह जीवन का अमर साखा है याद रखना। जहाँ तुम्हारे पैर हैं—व
से आगे—तुम्हारे जीते जी शत्रु के चरण इस देवधाम को अपवित्र न करने पायें।

सोरठी योद्धा गर्ज उठे और अब उन्होने एकबारगी ही कोट से बाणो व
मेंह बरसाना शुरू किया। देखते ही-देखते मध्य द्वार के सम्मुख शत्रु उनरने लगे
वे तीरो से बिध-बिधकर घायल हो चीत्कार कर और घूम-घूमकर गिरने लगे
परन्तु उनका घोर चीत्कार 'अल्लाहो अकबर' और 'हर हर महादेव' के घोर ना
में व्याप्त होने लगा। मरे हुए सैनिको का स्थान दूसरे सैनिक तुरन्त लेते। ए
घोडा गिरता तो दूसरा घोडा आता। मुर्दों से खाई पट गई। पर मुर्दों और अध
मरो को चरणो से रूंधते हुए दूसरे बर्बर सैनिक धँसे ही चले आ रहे थे। अब पु
बनाने वाले इस तट पर आकर पुल के रस्से कोट की दीवारो में जमाने का प्रयत
कर रहे थे। उन पर ऊपर से बडे-बडे पत्थर लुढकाये जा रहे थे। सिंहद्वार प
शत्रुओ के दल-बादल एकत्र हो रहे थे। यह देख राव ने अपने हजारो योद्धाओ क
बडे-बडे पत्थरो से द्वार को भीतर से पाट देने का आदेश दिया। बडे बडे पत्थ
इधर-उधर के मकानो, मन्दिरो और चबूतरो से उखाड़-उखाडकर द्वार पर ढे
किये जाने लगे। खाई में भरे हुए तुर्कों के तीरो से कोट पर के राजपूत बि
होकर खाई में गिर रहे थे। उधर भारी-भारी पत्थरो से चटनी होकर महमूद के
योद्धा मर रहे थे।

परन्तु आज जैसे प्राणो का किसी को मोह ही न था। खाई और खाई के
बाहर मुर्दों का टीला लग रहा था—फिर भी शत्रु-दल टिड्डी-दल की भाँति बढत
ही आ रहा था।

अब द्वार पर हाथियो की टक्कर लगने लगी। आठ मस्त हाथी सूंड से
भारी-भारी शहतीर ले द्वार को ठेलने लगे। उनके कन्धे पर बैठे महावत

निर्दयता से उनके कान की जड में अंकुश बींध रहे थे। और हाथी चिंघाडते हुए बड़े-बड़े शहतीरों से सिंहद्वार के लौह-जटित फाटक पर आघात कर रहे थे।

उधर पुल भी खाई पर फैल गया। और इधर-उधर तैरते हुए योद्धा उन पर चढ़कर दौड़ने लगे। अब ऊपर से उनपर खौलता हुआ तेल और जलती हुई लकडियाँ फेंकी जाने लगीं। बड़े बड़े लकड़ी के कुन्दों में तेल और गन्धक से तर कपड़ा लपेट कर आग लगाकर उन्हें हाथियों पर फेंका गया। गन्धक की गन्ध से घबराकर हाथी चिंघाडते हुए पीछे हटकर खाई में जा गिरे। इसी समय शत्रुओं ने सिंहद्वार में आग लगा दी।

कोट में भय की लहर व्याप गई। इसी समय कोट के अन्तरायण से वज्र निनाद सुन पडा—"अल्लाहो अकबर"। राजपूत योद्धा आश्चर्यचकित हो भीतर की ओर देखने लगे। जो कुछ देखा उसे देख भय से वे चिल्ला उठे, न जाने कहाँ से कैसे धरती फोड़कर अन्तरायण में शत्रु घुस आये थे। कोई कुछ न समझ सका।

६१ : महता की दृष्टि

दामोदर महता युद्ध नहीं कर रहे थे, परन्तु वे सारे ही मोर्चों पर बारीक दृष्टि रख रहे थे। उनके मस्तिष्क में आनन्द का एकाएक गायब हो जाना घबराहट का कारण बन रहा था। यद्यपि इसका स्पष्ट कारण वे नहीं समझ पाये थे, परन्तु यह वे निश्चित रूप से समझ गये थे कि वह शत्रु का बन्दी हो गया है। यह भी उनसे छिपा न रह गया था कि रुद्रमद्र शत्रु को सहायता दे रहा है। परन्तु कैसी ? यह वे भी न समझ पाये थे। फिर भी किसी आकर्षित, अकल्पित भयानक घटना की वे प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु वह क्या हो सकती है, यह नहीं समझ रहे थे। एक बात और थी, आनन्द के साथ सिद्धेश्वर भी गायब था। आखिर ये दोनों कहाँ गये ? क्या सिद्धेश्वर भी बन्दी है तब तो बात ही दूसरी हो जाती है। यही उलझन थी जिसे दामो महता इस समय नहीं सुलझा सके थे।

गत रात से इस क्षण तक उन्होंने पीठ नहीं खोली थी। सारे आक्रमणों की स्थिति पर उन्होंने दृष्टि रक्खी थी और अब इस क्षण सङ्कट के लक्षण वे प्रत्यक्ष देख रहे थे। उन्हें अपना निर्णय करने में देर नहीं लगी। ज्यों ही उन्होंने जहाज में आग लगी देखी, वे शेष जहाजों को कुशलता से बचाकर खाड़ी के सुरक्षित स्थान में ले गये। नौकाओं में धनुर्धरों को शत्रुओं पर बाणवर्षा करते हुए पीछे हटकर जहाँ तक सम्भव हो सुरक्षित रहने के उन्होंने आदेश दिये। कमालाखाणी को योजना का सारा रूप समझा दिया। उनका ख्याल था कि शत्रु का ध्यान शीघ्र ही जूनागढ़ी द्वार से हट जायगा और वह सिंहद्वार पर ही मुख्य आक्रमण करेगा। वही हुआ भी। दामो महता की इस योजना और कौशल को शत्रु ने नहीं समझा।

इधर से निवृत्त हो उन्होंने द्वारिकाद्वार की गम्भीर स्थिति पर विचार किया। द्वार की स्थिति बहुत ही खराब हो गई थी—परन्तु इस समय बड़े-बड़े पत्थरों और मलवे के पहाड़ से वह पट चुका था। तथा अमीर के सिंहद्वार पर धसारा करते ही वहाँ भी दबाव कम पड़ गया था। यद्यपि इस समय वह द्वार एक प्रकार से अरक्षित ही था और कोई सेनापति वहाँ न था, परन्तु अब उसके लिए और कुछ किया भी नहीं जा सकता था। दलपति और नायक जो कुछ कर सकते थे, कर रहे थे।

जिस समय वह भयानक घटना घटी—चौलुक्य खाई में गिरे—और महाराज भी मोट में कूदे—उस समय दामो वहाँ से काफी फासले पर गणपति के मन्दिर के इधर-उधर गहरी चिन्ता में सोचते-विचारते चक्कर लगा रहे थे। इधर शत्रु थे ही नहीं, इसलिए यह भाग एक प्रकार से शून्य ही रहा था। त्रिपुरसुन्दरी के बाहरी मैदान में रुद्रभद्र और उसके पाखण्डी संगी-साथी धूनियाँ ताप रहे थे जैसे इनके लिए वह महा विपद्-काल कोई मूल्य ही नहीं रखता था। इन धूर्तों को इस प्रकार निश्चिन्त देख दामो महता को अब इस बात में तनिक भी संदेह नहीं रह गया था कि ये लोग अवश्य ही किसी गहरी अभिसन्धि में लिप्त हैं। रुद्रभद्र के ऊपर उनकी तीव्र दृष्टि थी। यद्यपि वे उसकी दृष्टि से सर्वथा बचे हुए थे तदपि उसके दूत क्षण-क्षण पर इधर-उधर के समाचार ला और उनके आदेश ले जा रहे थे। वे प्रत्येक क्षण किसी अप्रत्याशित घटना की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि इसी क्षण महाराज महासेनापति के मोट में छलांग मारने से उत्पन्न तुमुल नाद ने उनका ध्यान उधर खींचा और वे घोड़ा दौड़ाते उधर दौड़ पड़े। हवा में उछलते महाराज के अश्व की एक झलक उन्होंने देखी थी। वे जब तक मोर्चे पर पहुँचे बालुकाराय साहस का परिचय दे चुके थे। उन्होंने द्वार खोल दिया था और उनकी विकटवाहिनी द्वार के बाहर जा रही थी। कोट से योद्धा तलवार ऊँची किये दबादब मोट में महासेनापति के चारों ओर कूद रहे थे।

दामो महता ने कोट के कँगूरे पर चढ़कर इस विकट युद्ध को देखा। उनके देखते-देखते ही महाराज का और दद्दा का मूर्च्छित क्षत-विक्षत शरीर बालुकाराय ने अधिकृत कर कोट की ओर मुँह मोड़ा। यद्यपि उन पर महान् संकट था—तथापि

दामो महता उसे देखने रुके नहीं।

वे पीछे लौटे। वे जूनागढ़-द्वार के निकट तक आ गये। यहाँ अब मरे और अधमरे शत्रु-मित्रों के ढेर पड़े थे। युद्ध का दबाव वहाँ बहुत कम हो गया था। कमालाखाणी बहुत घायल हो गये थे पर वे बराबर मोर्चे पर डटे थे। दामो ने उनके निकट पहुँचकर कहा—"वीरवर, जितने धनुर्धर योद्धा सम्भव हो, मोर्चे के पीछे जहाज़ पर भेजना प्रारम्भ कर दो, लाखाणी ने मर्मभेदी दृष्टि से महता को देखकर कहा—"जैसी भगवान सोमनाथ की इच्छा महता, महासेनापति को मेरा जुहार कहना।"

दोनों धीर पुरुषों ने गीली आँखों से एक-दूसरे को देखा, और अपने-अपने काम में लगे। महता अब सिंहद्वार की ओर फिरे। यहाँ भारी घमासान युद्ध हो रहा था। धीर वीर जूनागढ़ के राव बढ़-बढ़कर हाथ मार रहे थे। महता को देखकर उन्होंने चिल्लाकर कहा—"महता, महाराज का ध्यान रख आया।"

"महाराज के साथ बालुकाराय है अन्नदाता, उनकी चिन्ता न करें। यह भारी लोहा लेना तो आप ही का भाग्य है।"

"महता, तुम भी जाओ, यहाँ तो मैं ही बहुत हूँ। आज म्लेच्छ से दिल खोलकर दो-दो हाथ करूँगा। अभी तो वह दूर है वह हरी पगड़ी देखते हो न ?" राव ने हँसकर तलवार की नोक उधर उठाई।

"हाँ, बापू, देख रहा हूँ। आप देवासुर-संग्राम कर रहे हैं। महाराज के लिए आपका कोई संदेश है बापू ?"

"वे जियें, म्लेच्छ का सत्यानाश देखने के लिए, और ये आज यदि मेरे हाथों से जिन्दा बच निकले तो अपने हाथ से इस धर्मद्रोही का शिरच्छेदन करें। भाया, मेरा यही सन्देश है और सबको प्यार।"

"राव उधर से मुँह फेरकर युद्ध में लग गये जैसे महता का मोह सर्वथा वे भूल गये।

इस समय अमीर के सैनिक बड़ी-बड़ी जंजीरों से पुल को सिंहद्वार के प्रस्तर-स्तम्भों में अटका रहे थे। राव ने अपने योद्धाओं को ललकारा—"अरे, हमारे रहते यह क्या हो रहा है वीरो, कूद पड़ो और पुल को तोड़ दो।" हज़ारों योद्धा

कोट में कूद पड़े। ऊपर से जलते हुए फलीते और भारी-भारी पत्थरों की बौछार की भरमार शुरू हो गई। अमीर के योद्धा पुल पर चढ़ आये। दोनों पक्षों ने बाणों से आकाश को पाट दिया। कच्छी योद्धा बड़ी-बड़ी रेतियाँ लेकर जंजीरों से चिमट कर जंजीरों को काटने लगे। ऊपर तलवारों के वार हो रहे थे और वे अपनी कसी हुई मुट्ठी में रेतियाँ लिये लुढ़क रहे थे।

पुल पर हजारों मनुष्य, घोड़े और पदातिक चढ़ गये थे। उस पर बोझ बहुत पड़ गया था। इसी समय तड़तड़ा कर जंजीरें टूट गईं। उधर पुल में आग लग गई। पुल टूट गया। राजपूत हर्ष से चिल्ला उठे—"हर-हर महादेव।"

परन्तु इसी क्षण अन्तर्कोट से दिल को थर्रा देने वाला निनाद उठा—"अल्लाहो अकबर।" क्षण भर के लिए राजपूत योद्धा थम गये। दामोदर जो मुग्ध होकर सोरठ के राव का पराक्रम निहार रहे थे—अब तलवार ऊँची कर अन्तर्कोट की ओर दौड़ पड़े।

६२ : दो तलवार

न जाने किस अचिन्त्य विधि से सक्टेश्वर की बावडी का जल एकाएक सूख गया। बावडी में कीचड-ही-कीचड रह गई। उसी कीचड में से प्रथम एक, फिर दूसरा, इसके बाद तीसरा इस प्रकार एक के बाद एक अनगिनत सिर निकलने लगे। मानो दैत्य पाताल फोडकर जन्म ले रहे हों। सबसे आगे रस्सों से बन्धा सिद्धेश्वर था और उसके पीछे नगी तलवार हाथ में लिए फ़तहमुहम्मद। उसके पीछे अन्य तुर्क योद्धा। उनके विकराल शरीर कीचड और गन्दगी में लतपत, वीभत्स और भयानक प्रेतों के समान दीख रहे थे।

भूमि पर पैर रखते ही बिना एक क्षण का विलम्ब किये फतहमुहम्मद ने तलवार का एक भरपूर हाथ सिद्धेश्वर की गर्दन पर मारा। उसका सिर भुट्टे के समान कटकर दूर जा गिरा। उसे साँस लेने का भी अवसर नहीं मिला। फ़तहमुहम्मद ने तलवार ऊँची करके कहा—'यह हमारी पहली फ़िश्त है। उसकी तडपती हुई लाश को वहीं छोड वे सब प्रेतमूर्तियाँ वृक्षों और दीवारों की आड में नि शब्द गणपति-मन्दिर की ओर बढी। गणपति-मन्दिर के प्रागण को बगल में छोड वे सब चुपचाप महाकाल भैरव के विशाल चौक तक आ गईं। युद्ध का शोर यहाँ तक सुनाई पड रहा था, परन्तु युद्ध का यहाँ और कुछ भी प्रभाव न था। सामने ही रुद्रभद्र और उसके सैकडो वामाचारी चेले-चांटे और कलमुँहे लोग सहस्राग्नि सन्निधान तप रहे थे। जहाँ तक दृष्टि जाती थी धूनियाँ धधक रही थीं। उनमें बडे-बडे लक्कड जल रहे थे। सबके बीच में दैत्याकार रुद्रभद्र का कज्जल-सा काला शरीर अचल, स्थिर आसीन था।

फतहमुहम्मद बाज की भाँति इन पाखण्डियों पर टूट पडा। देखते-ही-देखते उसके बर्बर तुर्क सैनिक उन पाखण्डी तपस्वियों को गाजर-मूली की भाँति काटने और धूनियों में झोंकने लगे। बाबा लोगों में भगदड मच गई। सब कन-मुँहे, अघोरी वामाचारी अपनी अपनी धूनी छोड जान ले लेकर इधर-उधर—जहाँ जिसका सींग समाया—भाग निकले। पर फतहमुहम्मद ने ललकार कर कहा—'देखना एक आदमी भी इन शैतानों में से जिन्दा यहाँ से न निकलने पाये।" कद्दावर तुर्क उन पर पिल पडे और देखते-ही-देखते उन सब के टुकडे कर डाले।

रुद्रभद्र की सारी सिद्धियाँ और दिव्य शक्तियाँ हवा हो गईं। वह सूक्तों के पाठ भूल गया और भय से डरता-काँपता गिडगिडाता हुआ फतहमुहम्मद के पैरों में गिरकर कहने लगा— अरे देवस्वामी, मुझे पहिचान, मैं अमीर का दोस्त हूँ, अमीर का दोस्त। तू मुझ अमीर के पास ले चल, वह तुझसे प्रसन्न होगा। उस का मुझसे कौल-करार हो चुका है—मैं अमीर का दोस्त···"

"तो ले, यह अमीर की तलवार है, इसका पानी पी" इतना कह उसने तलवार का एक भरपूर हाथ मारा और उस दैत्य का सिर भूमि में लुढकने लगा। काजल के ढेर के समान उसके शरीर से खून की नदी बह चली। फतहमुहम्मद ने खून टपकाती हुई तलवार हवा में घुमाते हुए कहा—"बहादुरो, यह दूसरी किश्त है। आओ, अब अमीर नामदार का इस्तकबाल करने हम फतह-दर्वाजे की ओर बढें। याद रखो, हमारा एक-एक पल कीमती है, हमें सिर्फ दो घडी का वक्त है।"

और वे 'अल्लाहो अकबर' का सिंहनाद करते हुए सिंहद्वार की ओर बढे, जिसे फतहमुहम्मद ने अभी से फतहदर्वाजा कहना प्रारम्भ कर दिया था। यह उस गहरे आत्मविश्वास का फल था जो मुस्लिम सत्ता की सफलता का मूल कारण था। वह अन्तर्कोट की ओर गली-कूचों को पार करता हुआ तेजी से बढ रहा था। राह में जो मिला—उसी के उसने दो टुकडे कर दिये। वह मुख्य मन्दिर के परकोटे के द्वार पर पहुँचा, जहाँ कभी पहर-पहर पर चौघडियाँ बजती थी पर इस समय वहाँ सन्नाटा था। वह दीपस्तम्भों पर तिरस्कार की दृष्टि फेंकता हुआ सीढ़ों पर

चढ़कर सभा-मण्डप में जा पहुँचा, जहाँ एक शूद्र के चरण कभी नहीं पहुँचे थे, जहाँ खड़े होकर देव-दर्शन करने की चेष्टा में एक बार उसे धक्के देकर निकाल दिया गया था। सभा-मण्डप के पार्श्व ही में रत्न-मण्डप था और उसके मूल में वह गर्भगृह, जहाँ भगवान भूतपावन महाकाल सोमनाथ का ज्योतिर्लिङ्ग था। कदाचित् वह इस समय अपना कर्तव्य भूलकर ज्योतिर्लिङ्ग के दर्शन की इच्छा से रत्न-मण्डप की ओर बढ़ा। उसने सोचा—एक बार उस पत्थर के देवता को देखूँ तो—जिसे देखने का अधिकार सिर्फ इन ब्राह्मणों को ही है।

परन्तु उसकी गति रुक गई। रत्न-मण्डप के द्वार पर नंगी तलवार हाथ में लिये अचल भाव से दामोदर महता निर्भय खड़े थे।

दोनों तलवारें ऊँची हुईं और भिड़ गईं। बर्बर तुर्क 'अल्लाहो अकबर' का निनाद करते हुए तलवारें ले-लेकर दामोदर पर टूटे। वहाँ इस समय एक चिड़िया का पूत भी न था। दामोदर ने दो सीढ़ी उतर मुस्कराते हुए कहा—देवस्वामी, इस तलवार को पहचानते हो ?

फतहमुहम्मद सहम कर दो कदम पीछे हट गया। उसके योद्धा भी किसी जादू से जड़ हो गये। जिसकी तलवार जहाँ थी वहीं रही। फ़तहमुहम्मद ने अदब से सिर झुकाकर कहा—"पहचान गया जनाब, लेकिन ऐसी ही तलवार यह मेरे पास भी है। आप भी पहचान लीजिए।"

दामोदर ने अपनी मुस्कान को और विस्तृत करके कहा—"ठीक है, देव, तो ये दोनों तलवारें लड़ तो नहीं सकतीं।"

"जी नहीं।"

"और जिसके हाथ यह तलवार है, उसके साथ तुम कैसा सलूक करोगे ?"

"जी, जहाँ तक तलवार का सवाल है, मुझे भी हक़ हासिल है कि मैं उससे बराबरी का सलूक करूँ। क्योंकि ऐसी ही दूसरी तलवार मेरे पास भी है। मगर आप बुजुर्ग और मुरब्बी हैं, मेरा फ़र्ज है कि आपकी इज्जत करूँ। मैं अमीर का हुक्म जरूर बजा लाऊँगा, मगर अमीर नामदार के बाद मुझे आपका हुक्म बजा लाना फर्ज हो जाता है।"

"और यदि ऐसा करने में तुम्हें खतरा उठाना पड़े।"

"तो क्या हर्ज है, खतरे के डर से फतहमुहम्मद क्या फर्ज को तर्क करेगा ?"

"शाबाश बहादुर, तो क्या अमीर ने तुम्हें रत्नमण्डप तक आने का हुक्म दिया है ?"

"नहीं जनाब।"

"तो मित्र, अमीर का हुक्म बजा लाओ। अभी यहाँ मेरी चौकी है। यहाँ आने को वह आदमी हिम्मत करे जिसे इस तलवार की आन न हो।"

फ़तहमुहम्मद ने एक बार दामोदर को सिर झुकाकर प्रणाम किया और चुपचाप पीछे लौट चला।

६३ : छत्र-भंग

द्वारिका-द्वार को पार कर जो तुर्कों के दल-बादल घुस आये थे—वे प्राचीरों पर चढ़कर बुर्जों पर दख़ल करने लगे। कमालाखाणी की तनिक भी आन न मानकर अमीर ने कछुए इस पार आ रहे थे और नसैनियाँ लगा-लगाकर कोट पर चढ़ रहे थे। जो कोट पर पहुँच चुके थे, वे एक हाथ से तलवार चला रहे थे—दूसरे से आने वालों को सहायता दे रहे थे। लड़ाई चौमुखी हो रही थी। लाशों से जल थल पट गये थे।

सिंहद्वार पर जूनागढ़ के राव अपने काठियावाड़ी योद्धाओं की अडिग दीवार बनाये लोथों का पहाड़ बना रहे थे। बड़े-बड़े कद्दावर तुर्क अपनी डाढ़ी दाँतों में भींच दुहरी तलवार फेंक रहे थे। उधर बलोची सवारों के दस्ते गहरा घँसारा कर रहे थे। द्वार की बहुत ही दुर्दशा हो चुकी थी और वह किसी भी क्षण गिर सकता था। ऊपर-नीचे चारों ओर हज़ारों तलवारें छा रही थीं। नीचे चींउटियों की कतार की भाँति हठी तुर्क योद्धा पलपल पर बढ़े आ रहे थे। राजपूत उन्हें पीछे धकेल रहे थे। वृद्ध राव नवघन शत्रुओं से गस गये थे। उन्होंने आँख उठाकर चारों ओर देखा, मन में समझा आज ही प्रलय का क्षण उपस्थित होगया प्रतीत होता है। गुर्जर योद्धा असीम पराक्रम दिखाने लगे। अब बाण, तलवार, गदा और कुश्ती का हाथों-हाथ युद्ध हो रहा था। मध्य एशिया के प्रचण्ड योद्धाओं की अजेय सेना लिये अमीर सिंहद्वार पर तलवार ऊँची किये खड़ा था। राव ने अमीर को देखा। उन्होंने सोचा क्यों न दो-दो हाथ इस गजनी के दैत्य से कर लिये जायँ। फिर कैलाशवास तो होना ही है। उन्होंने तलवार सम्भाली और अमीर

को ललकारते हुए कोट से कूदने को तैयार हुए। बच्छी योद्धा 'बापू', 'बापू' कह करके दौड़ पड़े। परन्तु इसी समय अन्तरायण से 'अल्लाहो अकबर' का विकट नाद उठा, और मायामूर्ति की भांति भीतर कोट से तुर्क योद्धा निकल-निकलकर पीछे से मार करने लगे। जब तक कि राजपूत सम्हलें फतहमुहम्मद ने उनके सिरों पर छलांग मारी और बिल्ली की भांति उछलकर द्वार खोल दिया। नदी के प्रवाह की भांति शत्रु जय-निनाद करते हुए भीतर घुस पड़े।

राव ने देखा तो असयत हो उधर दौड़ पड़े। परन्तु जैसे तिनका भँवर में पड़कर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है उसी प्रकार तिल-तिलकर वे खेत रहे।

राजपूतों में हाहाकार मच गया। अब युद्ध की कुछ व्यवस्था न रही। दो-दो, चार-चार योद्धा दल बांधकर लड़ने लगे। चारों ओर पुकार मच गई—अन्तर्कोट अन्तर्कोट। और बचे-खुचे योद्धा सिमटकर अन्तर्कोट की ओर दौड़ चले। राहबाट सब लाशों से भरे पड़े थे। मरते हुओं के आर्तनाद, योद्धाओं की चीत्कार और घोड़ों तथा हाथियों की चिल्लाहट से वातावरण अशांत हो उठा। फतहमुहम्मद ने अमीर की रकाब चूमकर अमीर का स्वागत किया। फिर वह उछलकर घोड़े पर चढ़ा, और अमीर के आगे-आगे तलवार की धार से राह बनाता चला। अमीर अपने विशाल काले घोड़े पर सवार अपनी अप्रतिहत वीरवाहिनी के दल-बादल लिये महालय की सिंहपौर में घुसा।

६४ : धर्मानुशासन

रत्न-मण्डप की पौर पर दामोदर महता उसी प्रकार अचल भाव से निस्पन्द खड़े रहे। वे सोच रहे थे—दासीपुत्र के शौर्य, पराक्रम, विनय और उन्चाशयता की बात। कुछ ही क्षण में उन्हें प्रतीत हो गया कि सिंहद्वार का पतन हो गया और अमीर की सेना अन्तरायण में घुसी चली आ रही है। क्या करना चाहिए—इसका कुछ भी निर्णय वह कर्मठ राजपुरुष इस समय न कर सका। वह देख रहा था—आज उसी के नेत्रों के सम्मुख गुजरात के उस विश्रुत देवस्थान के भंग होने का क्षण आ लगा। कैसे वह उसे देखे, कैसे वह उसे रोके। उसके हाथ में अमीर की दी हुई तलवार थी, क्या वह उसके नाम पर अमीर से याचना करे—उस अमीर से—जिसे उसने एक बार प्राणदान दिया था—नहीं, नहीं। उसने वह तलवार म्यान में कर ली और गुर्जर तलवार सूत ली। उस साहसी पुरुष ने इस पुण्य पर्व पर प्राणोत्सर्ग का निर्णय कर लिया। उसने अपने ही आप से कहा, नहीं—नहीं, इस पौर पर मेरे रहते म्लेच्छ का चरण नहीं पड़ेगा।

शोर और 'अल्लाहो अक्बर' का नाद निकट आ रहा था। शस्त्रों की झन-झनाहट, और मरने वालों के आर्तनाद बढ़ रहे थे। परन्तु इस स्थान पर एक भी पुरुष न था। सामने से गर्द उड़ती आ रही थी। और कुछ ही क्षणों में शत्रु इस भूमि की रजकण को रक्त-रंजित करने आ पहुँचेगा—यह वह जानता था। दामो महता और एक पौर नीचे उतरे। इसी समय किसी ने पीछे से उन्हें छुआ। उलट कर देखा, तो गंग सर्वज्ञ। वही शान्त मुद्रा, वही अचल धैर्य। सर्वज्ञ ने करुण नेत्रों से गुजरात के मन्त्री को देखा और स्थिर स्वर से कहा—"आ पुत्र!"

उस समय राजपुरुष के मुँह से एक शब्द भी न निकला। उसने आँखों में आँसू भरकर गंग की गंभीर मुद्रा देखी और चुपचाप बालक की भाँति उनके पीछे-पीछे हो लिया। गर्भगृह में जाकर सर्वज्ञ ने गर्भगृह के द्वार बन्द कर लिये। फिर ज्योतिर्लिङ्ग के ठीक पीछे जा एक गुप्तद्वार उन्होंने खोला। और कुछ दूर अन्धकारपूर्ण सुरंग में चलकर छोटे कक्ष में जा पहुँचे।

कक्ष में महाराज भीमदेव और चौलुक्य के शरीर भूमि पर पड़े थे। बालुकाराय शोकमग्न चुपचाप खड़े थे। नंगी तलवार उनके हाथ में थी। उनकी तलवार और शरीर पर लगा रक्त सूख गया था। पास ही में गंगा स्तब्ध, निश्चल खड़ी थी।

गंग ने शांत वाणी से कहा—"पुत्र, चौलुक्य तो कैलाशवासी हुए परन्तु महाराज सेनापति केवल मूर्च्छित हैं। उनकी रक्षा का भार तुम्हें सौंपता हूँ पुत्र, गुजरात के गौरव की रक्षा करने को ही भीमदेव जीवित रहें—ऐसा ही देव आदेश है। अब समय कम और काम बहुत है, एक-एक क्षण मूल्यवान् है। आओ मेरे साथ"—यह कहकर सर्वज्ञ ने अनायास ही महाराज भीमदेव का शरीर अपने बलिष्ठ हाथों से कन्धे पर उठा लिया।

बालुक ने बाधा देकर कहा—"गुरुदेव, यह क्या ? यदि ऐसा ही है तो यह भार मुझे दीजिए।"

"नहीं पुत्र, तुम्हारी भुजाओं पर तलवार का भार है, वही रहे। यह मेरा धर्मानुशासन है, बाधा मत दो। अपनी तलवार ले सावधानी से मेरे पीछे आओ।" फिर गंगा की ओर घूमकर कहा—"गंगा, अब तू ?"

"जहाँ आपके श्रीचरण।"

"गंगा, जा चौला को देख।"

"जिसे देखना मेरा व्रत है उसे ही देखूँगी, इसके लिए मैंने महासेनापति का राज्यानुशासन भी नहीं माना—आपका धर्मानुशासन भी नहीं मानूँगी।"

"तो घड़ी भर यहीं ठहर, मैं अभी आता हूँ। तब चौलुक्य के शरीर की व्यवस्था करेंगे।"

गुरुदेव रुके नहीं। मूर्च्छित महाराज भीमदेव का अंग कन्धे पर लादकर

उस अँधेरी गुहा में बढ़ चले। पीछे नंगी तलवार हाथ में लिये दामोदर महता और बालुकाराय।

वे चलते चले गये। धीरे-धीरे अंधकार कम होने लगा और वे उन्मुक्त आकाश के नीचे आ खड़े हुए। सामने समुद्र हिलोरें ले रहा था। नौका तैयार थी। महाराज भीमदेव का शरीर नौका में रख उन्होंने बालुकाराय और महता को भी नौका पर चढ़ाकर कहा—"पुत्रो, आशीर्वाद देता हूँ। सुखी होओ। यह प्रवहण खड़ा है, जितना शीघ्र हो—गदावा दुर्ग पहुँच जाओ। महाराज की रक्षा करना। जाओ—तुम्हारा कल्याण हो।"

सर्वज्ञ एकबारगी ही पीछे लौटकर तेज़ी से उस अन्ध गुहा में घुस गये। दोनों राजपुरुषों ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी नाव प्रवहण की ओर बह चली।

६५ : आत्म-यज्ञ

कक्ष में आकर सर्वज्ञ ने देखा—गंगा जल्दी-जल्दी चिता बनाने में जुटी है। उसने पास-पास दो चिताएँ बनाई थीं। वह फुर्ती से जलने योग्य जो सामान वहाँ जुटा सकती थी—जुटा रही थी। सर्वज्ञ ने देखा तो कहा—"यह क्या ?"

"चौलुक्य के लिए अग्नि-रथ।"

"और दूसरी ?"

"गंगा के लिए" इतना कह वह हँस दी परन्तु गंग रो दिये। उनका वीत-राग हृदय जैसे बालक की भाँति अधीर हो गया। गंगा ने उनके अत्यन्त निकट आकर उनके चरणों पर अपना सिर रखकर कहा—"आप भी रोते हैं ?"

"गंगे, हिमालय की हिम-धवल चट्टानें भी पिघलती हैं, परन्तु अब तो तुझे जाना ही होगा। आ, मैं तुझे विदा कर दूँ।" उन्होंने उसके मस्तक पर हाथ फेरा।

इसी समय उनके एक अन्तरंग शिष्य ने आकर कहा—"देव, अन्तर्कोट गिर गया, अब अन्तर्कोट पर शत्रु धावा कर रहे हैं। कुछ ही क्षण में वे रत्न-मण्डप तक पहुँच जायेंगे।"

"एक क्षण ठहर पुत्र, तू जा—और कृष्णस्वामी से कह कि रत्न-कोष की समुचित सुरक्षा-व्यवस्था करें। मैं गंगा को मोक्ष देकर अभी आता हूँ।" शिष्य मस्तक नवाकर चला गया। सर्वज्ञ ने कहा—"आ गंगे।" उन्होंने अपने हाथ से उसका केश विन्यास किया। अंग-प्रत्यंग चन्दन-चर्चित किया, फिर हाथ पकड़कर चिता पर बैठाया, कुछ क्षण मौन रह, कम्पित वाणी से कहा—"जा कल्याणी, कैलाशवासिनी हो।"

गंगा ने सर्वज्ञ की चरण-रज मस्तक पर चढ़ाई और आंख बन्दकर ध्यानस्थ हो बैठ गई। सर्वज्ञ ने घी और कपूर के बड़े-बड़े डले चिता पर रख अग्नि-स्थापना कर दी।

दोनों चिताएँ शीघ्र ही धधकने लगीं। धूम्र कक्ष में फैल गया। किन्तु वह दृश्य देखने सर्वज्ञ वहाँ रुके नहीं—तेजी से गर्भगृह की ओर लपक चले।

शत्रु रत्न-मण्डप में घुस आये थे। सबसे आगे अमीर महमूद था। उसकी हरी पगड़ी पर पन्ने का तुर्रा झलक रहा था और लाल डाढ़ी हवा में फहरा रही थी। उसके हाथ में नंगी तलवार थी। उसके एक पार्श्व में एक भारी गुर्ज हाथ में लिये फतहमुहम्मद था और दूसरे पार्श्व में श्वेत श्मश्रुधारी प्रसिद्ध अरबी विद्वान् अलबेरूनी था। उसके हाथ में एक लम्बी तलवार थी।

अमीर ने संकेत से सबको आगे बढ़ने से रोक दिया। तीनों व्यक्ति आगे बढ़े। रत्न-मण्डप के मणि-जटित खम्भों पर अस्तगत सूर्य की रंगीन किरणें झिलमिला रही थीं। उस अप्रतिम मणिमय प्रासाद को देखकर अमीर आश्चर्य से जड़ हो गया। सहमते हुए वह गर्भगृह में घुसा। उसने देखा—घृत के दीपक अपनी पीली प्रभा और सुगन्ध बखेर रहे थे और नितान्त शान्त वातावरण में गंग सर्वज्ञ स्वर्ण-थाल हाथ में लिये देवाधिदेव सोमनाथ की आरती उतार रहे थे।

क्षण भर अमीर भाव-विमोहित-सा मुग्ध खड़ा रहा। कुछ देर बाद उसने सतेज स्वर में कहा—"यहाँ कौन है?"

"मैं और मेरा देवता", गंग ने शान्त स्वर में कहा। बिना ही अमीर की ओर मुँह फेरे उन्होंने कहा—"वत्स महमूद, कुछ क्षण ठहर जा।"

वे अपनी अर्चना सम्पन्न करने लगे मानो कुछ हुआ ही नहीं। महमूद और उसके दोनों साथी इस अप्रतिम देव और उस देव के सेवापुरुष को निर्निमेष नेत्रों से देखते खड़े रहे।

शीघ्र ही सर्वज्ञ ने अर्चन-विधि समाप्त की। भूमि में गिरकर देवता को प्रणाम किया। फिर बिलकुल ज्योतिर्लिङ्ग से सटकर बैठ गये। बैठकर वैसी ही शान्त स्निग्ध वाणी से उन्होंने कहा—"अब तू अपना काम कर महमूद।"

उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। देखते ही-देखते उनका शरीर निस्पन्द हो गया।

अमीर ने साथियों से दृष्टि-विनिमय किया। फिर वह फतहमुहम्मद के हाथ से गुर्ज लेकर आगे बढ़ा।

ज्योतिर्लिङ्ग के निकट जाकर उसने कहा—"मैं, खुदा का बन्दा महमूद वही करूँगा जो मुझे करना चाहिए। ऐ बुजुर्ग, दूर हट जा और बुत-शिकन को कुफ़ तोड़ने दे।"

परन्तु गग सर्वज्ञ ने ज्योतिर्लिङ्ग को और भी अपने अंक में लपेट लिया। उन्होंने आँखें खोलकर करुण दृष्टि से महमूद की ओर देखा, और धीमे स्वर में कहा—"पहले सेवक और पीछे देवता।"

उन्होंने ज्योतिर्लिङ्ग पर अपना हिमधौत सिर रख दिया। अमीर ने गुर्ज का भरपूर वार किया। सर्वज्ञ का भेजा फट गया और उनके गर्म रक्त से ज्योतिर्लिङ्ग लाल हो गया। उनके मुँह से ध्वनि निकली—"ओम्", और प्राण-पखेरू ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर उड़ गये। अमीर ने गुर्ज का दूसरा और फिर तीसरा वार किया। ज्योतिर्लिङ्ग के तीन टुकड़े हो गये।

दूज का क्षीण चन्द्र आकाश में चढ़ रहा था। इधर-उधर तारे टिमटिमा रहे थे।

६६ : मगरिब की नमाज़

रत्न-मण्डप में आकर अमीर ने मगरिब की नमाज़ अदा करने को घुटने टेक दिये। सहस्रों नरमुण्ड जो जहाँ थे भुक गये। हज़रत अलबेरूनी ने अमीर के नाम का खुतबा पढ़ा। उन्होंने कहा—"गाज़ी अमीर महमूद शहन्शाह गज़नी, जिन पर खुदा की असीम कृपा है, और रहेगी, दुनिया में खुदा के प्रतिनिधि हैं।" इसके बाद उन्होंने महालय के कँगूरे पर चढ़कर बाँग लगाई—"ला इला-इल्लिल्लाह-मुहम्मद रसूलिल्लाह।"

सबने 'आमीन' 'आमीन' कहा। अमीर ने जलद गम्भीर स्वर में कहा—"मैं अमीर महमूद—खुदा का बन्दा—वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। और वही करूँगा जो करना चाहिए। खुदा के हुक्म से कुफ्र तोड़ना सबसे बड़ा सवाब है। और मैं खुदा का बंदा—महमूद, धर्म की इस तलवार को कुफ्र तोड़ने के काम में लाता हूँ और आप सब इस सवाब के हिस्सेदार हैं।"

फिर सबने 'आमीन' कहा। ज्योतिर्लिङ्ग के रुद्राभिषेक के लिए जो गंगोत्री का पवित्र गंगाजल चाँदी के घड़ों में गर्भगृह में भरा रखा था, उसी से उसने वज़ू किया और मगरिब की नमाज़ अदा की—उसी रत्न-मण्डप में—जहाँ कभी देव-सान्निध्य में शत सहस्र नेत्रों के सम्मुख रूपसी देवदासियाँ नृत्योल्लास करती थीं। इसके बाद उसने रत्न-मण्डप की पौर में कुर्बानी की। फतहमुहम्मद ने महालय के शिखर पर चढ़ गगनचुम्बी भगवाध्वज भग कर महमूद का हरा झंडा फहरा दिया।

इस प्रकार अपने लाशरीक खुदा को प्रसन्न कर, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता

जला—वह अपने अश्व पर सवार हुआ। उसने महालय और देवपट्टन में अपनी आन फेरी, युद्ध बंद करने का आदेश दिया। आदेश न मानने वालों को कैद करने या कत्ल करने का हुक्म दिया। सब प्रमुख नाकों, आगारों, महालयों पर पहरे-चौकी का प्रबन्ध किया और सिंहद्वार के फाटक उखाड़ उन्हें साथ ले—सब ओर से निश्चित होकर वह तुरही, नफीरी, शहनाई और नक्कारे बजाता हुआ, अहमद का हरा विजयी झंडा फहराता अपनी छावनी में लौटा। जब उसने घोड़े की पीठ छोड़ी—एक पहर रात बीत रही थी।

हजारों घायल, बेघायल राजपूत बंदी कर लिये गये। लाशों के उठाने का उस रात कोई बन्दोबस्त नहीं हुआ। जिस कक्ष में गंगा ने अग्निरथ-अभियान किया था, उसके आस-पास के सब कक्ष जलकर क्षार हो गये थे। रात भर वहाँ आग धधकती रही। किसी ने भी उसे बुझाने की चेष्टा नहीं की।

वृद्ध वीरवर कमा लाखाणी इस समय सैकड़ों घावों से लथपथ अपने प्रवहण में एक ओर खड़े महालय के अंचल की उठती हुई लपटों के प्रकाश में भग्न भगवा-ध्वज को आंसूभरी आँखों से देख रहे थे। प्रवहण में अचेत महाराज भीमदेव को चेत में लाने के लिए दामोदर महता और बालुकाराय भयक प्रयत्न कर रहे थे। संसार अन्धकार में डूबता जा रहा था और इस अन्धकार में एक गहरा काला धब्बा सा वह प्रवहण लहरों पर हिलता-डोलता-सा समुद्रगर्भ में बढ़ता हुआ—कच्छ की खाड़ी में सुरक्षित गदावा दुर्ग की ओर बढ़ रहा था।

६७ : नष्ट प्रभात

रात ही में देवपट्टन में भगदड़ मच गई थी। हिन्दू-योद्धा और पुजारी प्राण ले-लेकर जल-थल की राह भाग चले थे। प्रभात होते ही तुर्कों के दल-बादल नगर, महालय लूटने को 'अल्लाहो अकबर' का नाद करते टूट पड़े। शत्रु के भय से हिन्दू मछुए होड़ी आदि जो जिसके हाथ लगा, उसी पर बैठकर समुद्र में तैरने लगे। पर इस समय समुद्र भी अभागे हिन्दुओं का शत्रु हो गया। उनमें बड़ी-बड़ी पहाड़ की चट्टान के समान लहरें उठने लगीं। अनेक अभागे उन लहरों की चपेट में आकर समुद्र-गर्भ में विलीन हो गये। अनेक लोग शत्रुओं के हाथ बन्दी हुए या कट मरे।

देखते-ही-देखते देवपट्टन धायँ-धायँ जलने लगा। महमूद अपने काले घोड़े पर सवार हो विजयोल्लास से भरा हुआ दल-बल सहित महालय की पौर में घुसा। इस विजय का महमूद को बड़ा गर्व था। हर्ष से उसका हृदय उछल रहा था। महमूद और उसके मन्त्रिगण आश्चर्यचकित होकर महालय की भव्य शोभा निरखने लगे। उस अगम्य देवस्थली में उसके भ्रष्ट चरण पड़-पड़कर देवस्थान मलिन होने लगा। आँखों से कभी न देखी और कानों से कभी न सुनी हुई शोभा और ऐश्वर्य की राशि देख महमूद और मन्त्रिगण विमूढ़ हो गये। उसे अपने गज़नी के राजमहल के ऐश्वर्य का बड़ा गर्व था परन्तु सोमनाथ महालय के ऐश्वर्य को देखकर उसका गर्व खण्डित हो गया। वह आगे बढ़कर गर्भगृह में घुसा। ज्योतिलिङ्ग के तीन टुकड़े बिखरे पड़े थे। गंग का छिन्न शरीर भी उसी भाँति देव-सान्निध्य में पड़ा था। उसका रक्त बहकर सूख गया था। उसने मन्दिर के पुजा-

रियों और अधिकारी को सम्मुख आने की आज्ञा दी। बहुत पुजारी भाग गये थे। जो शेष थे, वे कृष्णस्वामी को आगे कर करबद्ध हो डरते-डरते और काँपते हुए अमीर के सम्मुख आ खड़े हुए।

कृष्णस्वामी ने हाथ जोड़कर कहा—'पृथ्वीनाथ, जितना धन आपको चाहिए हम दण्ड देने को तैयार हैं परन्तु महालय को भंग मत कीजिए। यह हमारा हिन्दुओं का अति प्राचीन देव-स्थान है। हम दीन जन आपसे अब यही भिक्षा माँगते हैं।'

महमूद ने कहा—'ज़र-जवाहर के लालच से इस्लाम के बन्दों का खून बहाने मैं यहाँ नहीं आया हूँ। मैं मूर्तिपूजकों के धर्म का तिरस्कर्ता, मूर्तिभंजक महमूद हूँ, बुतपरस्ती के कुफ्र को दूर करना मेरा धर्म है। मैं मूर्ति बेचता नहीं, मूर्तियों को तोड़कर अल्लाताला खुदा के पैगम्बर मुहम्मद की आन कायम करता हूँ।" इतना कहकर उसने हाथ की रत्नजटित सुनहरी छड़ी से तीन बार उस भग्न ज्योतिर्लिङ्ग पर आघात किया और सब मूर्तियों तथा महालय को तोड़ने-फोड़ने का हुक्म दिया। देखते-ही-देखते उसके हज़ारों बर्बर सैनिक महालय की मूर्तियों, मेहराबों और तोरणों को तोड़ने-फोड़ने और ढाने लगे।

अब महमूद ने कृष्णस्वामी से धन-रत्न-कोष की चाभियाँ तलब कीं। अछता-पछता कर कृष्णस्वामी ने देवकोष महमूद को समर्पण कर दिया। उस देवकोष की सम्पदा को देखकर महमूद की आँखें फैल गईं। भूगर्भ-स्थित चबच्चों में स्वर्ण, रत्न, हीरा, मोती, माणिक आदि भरे थे। उस दौलत का अन्त न था। उस अटूट सम्पदा को देख महमूद हर्ष से अपनी डाढ़ी नोचने लगा। उसने तुरन्त ही सब रत्न-कोष उठाकर मंजूषाओं में भर-भरकर शिविर को रवाना कर दिया। अस्सी मन वज़नी ठोस सोने की जंजीर, जिसमें महाघंट लटकता था, तोड़ डाली। किवाड़ों, चौखटों और छत से चाँदी के पत्तर छुड़ा लिये। कंगूरों के स्वर्णपत्र उखाड़ लिये। मणिमय स्तम्भों पर जड़े हुए रत्न उखाड़ने में उसके हज़ारों बर्बर जुट गये। सोने-चाँदी के सब पात्र ढेर कर उसने ऊँटों में भर लिये।

फिर भी उसे सतोष न हुआ। उसके गोइन्दों ने गुप्त कोष की तलाश में समूचे गर्भगृह को खोद डाला। ज्योतिर्लिङ्ग के मूल स्थान में बहुमूल्य मणि-

माणिक्य का एक महाभण्डार उसे और मिल गया। इससे उत्साहित होकर उसने समूचे महालय के गोख, फर्श, अलिन्दो को खोद-खोद कर गुप्तकोष ढूंढना प्रारम्भ किया। कृष्णस्वामी से उसने बहुत प्रश्न किये। अन्त में उसे बांधने की आज्ञा दी। सैनिक कृष्णस्वामी को बांधने लगे। कृष्णस्वामी गिड़गिड़ाने और प्राण-भिक्षा मांगने लगे। चारो ओर तुमुल कोलाहल मच रहा था। उस कोलाहल में हृदय को विदीर्ण करती हुई एक तीव्र हुकृति ने सभी को चौंका दिया। उसी क्षण पागल सी चीखती-चिल्लाती, न जाने कहां से रमादेवी एक मोटी लकडी हाथ में लिये भीड को चीरती हुई प्रकट हुई। उसके वस्त्र फटे, नेत्र फंले हुए, बाल बिखरे और मुंह विकराल था। उसने सैनिको को पीछे धकेल कर कृष्णस्वामी को अपने आंचल में छिपाते हुए ललकार कर कहा—"कहां है वह मुडीकाट गजनी का अमीर, आये मेरे सामने, देखूं कैसे वह मेरे आदमी को बन्दी करता है।"

सैनिकों ने झपटकर रमाबाई को पकड लिया। धक्कापेल में उसके वस्त्र तार-तार हो गये। वह गिर गई परन्तु सिंहनी के समान गर्जकर उसने उछाल मार कर कई सैनिको को गिरा दिया। सैनिको ने तलवारें खींच ली। सैकड़ो तलवारें रमाबाई पर छा गई।

फतहमुहम्मद अब तक चुपचाप अमीर की बगल में खडा था। अब वह तलवार सूत एकदम रमाबाई के आगे छाती तानकर खडा हो गया। उसने ललकार कर कहा—"खबरदार, जो कोई इस औरत को छुएगा, उसके सिर पर घड नही रहेगा।"

नामदार अमीर महमूद की उपस्थिति में यह घटना असाध्य थी। महमूद अविचल भाव से यह सब देख रहा था। अब उसने आगे बढकर कहा—"इस औरत को छोड दो।"

सिपाहियो ने रमाबाई को छोड दिया। छूटते ही उसने कृष्णस्वामी के बंधन खोल दिये। और फिर वह अपने हाथ की लकडी मजबूती से पकड़कर अमीर की ओर फिरी। उसने अपनी गोल-गोल आंखें घुमाते हुए कहा—"तू ही वह अमीर है?"

"हां औरत, मैं ही अमीर महमूद हूं।"

"तूने सर्वज्ञ को मारा, देवलिंग भग किया ?"

"हाँ, मैं विजयी मूर्तिभंजक महमूद हूँ। लेकिन औरत, तू क्या चाहती है ?"

"मैं तुझसे यह पूछती हूँ कि क्या तुझ से किसी ने यह नहीं कहा कि तू मृत्यु का दूत, जीवन का शत्रु और मनुष्यों में कलंकरूप है।"

"ऐ औरत, मैं तेरी सब बात सुनूँगा, कहती जा।"

"तूने विजय प्राप्त की, पर किसी की भलाई नहीं की।"

"मैं खुदा का बन्दा, खुदा के हुक्म से कुफ्र तोड़ता हूँ।"

"तू भगवान के पुत्रों को मारता है, जिन्होंने तेरा कुछ नहीं बिगाड़ा। उन्हें लूटता और उनके घर-बार जलाता है। तू कंकड़-पत्थरों का लालची है, और आदमी का दुश्मन। तेरा खुदा यदि तेरी इन काली करतूतों से खुश है तो वह खुदा नहीं, शैतान है।"

महमूद की भौंहों में बल पड़ गये किन्तु वह चुपचाप अपने होंठों को दबाता हुआ इस दबंग औरत को देखता रहा, जिसके साहस और शक्ति का अन्त न था। वह इस औरत की बात का मर्म समझ गया। उसने फतहमुहम्मद की ओर देखा। वह उसी भाँति तलवार नंगी किये रमादेवी के आगे छाती तानकर खड़ा था। महमूद ने कहा—"ऐ बहादुर, क्या इस औरत को तू जानता है ?"

"जानता हूँ जहाँपनाह।"

"कौन है यह ?"

"मेरी माँ।"

महमूद बड़ी देर तक उस औरत की ओर ताकता रहा, एक हल्की मुस्कान और करुणा की झलक उसके नेत्रों में आई। उसने जलद गम्भीर स्वर में कहा—"औरत, तलवार के विजेता महमूद के सामने तूने जो सच कहा, वह बादशाहों के लिए इज्जत की चीज है। दुनिया में दो चीजें लोगों को जिन्दगी बख्शती हैं। एक सूरज की किरणें और दूसरा माँ का दूध। तूने जिन्दगी से प्यार करने की ओर मेरा ध्यान दिलाया है। ठीक कहा तूने औरत। और तू माँ है, माँ के बिना महमूद पैदा ही न हो सकता था। फिरदौसी, अलबेरूनी, अरस्तू, शेखसादी, ये सब माँ के बच्चे हैं। ऐ माँ, आगे बढ़—और इस बच्चे के सिर पर हाथ रखकर इसे दुआ बख्श

जिसने तीस वर्ष तक धरती को अपने पैरों से कुचलकर उसे लहू से लाल किया है।"

दो कदम आगे बढ़कर महमूद सिर झुकाकर एक बालक की भाँति रमाबाई के आगे आ खड़ा हुआ।

रमाबाई का रुद्र भाव एकबारगी ही जाता रहा। उसने हाथ की लकड़ी फेंक आगे बढ़कर महमूद के मस्तक पर हाथ रख और आँखों में आँसू भर कर कहा—"कैसे तू जिन्दा आदमी को मार सकता है, उसका घर-बार लूट सकता है, अरे महमूद, उनकी भी तेरी-सी जान है, उन्हें कितना दुःख होता होगा, बोल तो?" रमाबाई की आँखों से झर-झर आँसू बह चले।

महमूद ने सिर ऊँचा किया। उसने कहा—"बहुत लोग मुझसे अपने राज्य और दौलत के लिए लड़े। लेकिन इन्सान के लिए आज तक मुझसे कोई नहीं लड़ा। मैं खुदा का बन्दा, महमूद वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। यह औरत, जो मेरे सामने खड़ी है, उसने मुझे एक नई बात बताई है जिसे मैं नहीं जानता था। इसके हाथ में तलवार नहीं है, तलवार का डर भी इसे नहीं है। यह रोती और गिड़गिड़ाती नहीं। बादशाहों के बादशाह महमूद को फटकारती है, इन्सान के प्यार ने इसे इस कदर मजबूत बनाया है। इसके आँसुओं का मोल तमाम दुनिया के हीरे-मोतियों से नहीं चुकाया जा सकता। इसने महमूद को माँ की तरह नसीहत की है, और अब मैं, महमूद खुदा का बन्दा, वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। दो सौ घुड़सवार, जिनकी सरदारी फतहमुहम्मद करेगा, इज्जत के साथ इस बादशाहों के बादशाह की माँ को इसके घर पहुँचा दें, और उसका हर एक हुक्म बजा लायें। महमूद इस औरत का बेटा है। वह कहता है—वह जितनी दौलत चाहे ले जाय, और जो चाहे वही उसे हुक्म दे।"

लेकिन रमादेवी ने कहा—"महमूद, मुझे कुछ न चाहिए। मैं केवल यही चाहती हूँ कि तू अभी—इस देवपट्टन से चला जा, और अब अधिक विनाश न कर, और याद रख कि तू जैसे खुदा का बन्दा है, वैसे ही सब लोग भी हैं। वे सब तेरे भाई हैं महमूद, उन्हें प्यार कर, तेरी नामवर तलवार उनकी रक्षा के लिए है, उनकी गर्दन काटने के लिए नहीं।"

महमूद ने तलवार ऊँची करके कहा—"महमूद खुदा का बन्दा, इस औरत

का हुक्म मानकर इसी क्षण इस देवपट्टन को छोड़कर कूच का हुक्म देता है।"

महमूद ने तलवार म्यान में की और अपना घोड़ा मँगाया। उसके सब सैनिक चुपचाप अपनी तलवारें नीची किये पीछे-पीछे चले। केवल फतहमुहम्मद अपने दो सौ सवारों के साथ रह गया।

"अब तू देख, तू भी जा"—रमादेवी ने उसे देखकर कहा।

"माँ, क्या तुम मुझसे नाराज़ हो।"

'जो कुछ तूने किया, वह होनहार थी। पर अब तू जा और इन अपने संगी-साथियों को भी ले जा। तेरी आँखों के आगे सर्वज्ञ का हनन हुआ। यह महापाप तेरे ही ऊपर है। पर मैं तुझे शाप नहीं दूँगी। सर्वनाश का क्षण ही आ लगा था।"

कुछ देर फतहमुहम्मद सिर नीचा किये खड़ा रहा। वह शोभना के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता था पर कुछ सोचकर चुप रह गया। फिर उसने कहा—"माँ, और कुछ कहना है?"

"ना, तू जा अब"

फ़तहमुहम्मद चुपचाप चला गया। उसने आँख उठाकर एक बार भी कृष्णस्वामी की ओर नहीं देखा। उसके पीछे उसके दो सौ सवार।

कृष्णस्वामी नीचा सिर किये खड़े थे। अब कृष्णस्वामी और रमाबाई को छोड़कर और कोई वहाँ उपस्थित न था। रमाबाई ने भरे हुए बादलों के स्वर में कहा—'अब इस तरह खड़े रहने से क्या होगा, चलकर पहले सर्वज्ञ का ऊर्ध्व-दैहिक करो, पीछे और कुछ।"

और वे दोनों प्राणी उस नष्ट प्रभात में अपनी ही पग-ध्वनि से चौंकते हुए खण्डहरों, मलबों और भग्नमूर्तियों के सूने ढेरों से उलझते, भय, आतंक और भूख-प्यास से जर्जर भग्न गर्भगृह में घुस रहे थे जहाँ अब केवल सर्वज्ञ का छिन्न भिन्न शरीर भूमि पर पड़ा था। ज्योतिर्लिङ्ग के भग्न-खण्ड धन-रत्न-भण्डार के साथ ही अमीर के आदमी ले गये थे।

६८ : गंदावा दुर्ग

महमूद को देवपट्टन की विजय बहुत महँगी पड़ी। यद्यपि यहाँ से उसे अथाह सम्पदा मिली परन्तु उसका सैनिक बल छिन्न-भिन्न हो गया और अब उसे यह भय होने लगा कि वह इस अतोल सम्पदा को लेकर सही-सलामत गजनी पहुँच सकेगा भी या नहीं। उसकी सेना के प्राय सारे ही हाथी इस युद्ध में नष्ट हो चुके थे, जो बचे थे वे अगभग और कमजोर या घायल थे। उनमें से अच्छे ऊँट और हाथी चुनकर उसने उसपर सोना, रत्न और लूटा हुआ धन-माल लादा। पचास हाथी और दो सौ ऊँटों पर यह सब सम्पदा लादी गई। सबके बीच एक गजराज पर सिंहद्वार के चदन के फाटक और ज्योतिर्लिङ्ग के तीन टुकडे थे। चुने हुए दस हज़ार उत्कृष्ट सवार इस खजाने की रक्षा के लिए देकर और सेनापति मसऊद को उसका नायब बनाकर अनहिल्लपट्टन की ओर सीधा रवाना कर दिया। बदी, घायल, रोगी और अनावश्यक सामग्री भी उसने उसके साथ ही भेज दी।

महासेनानी महमूद को पता लग चुका था कि उसका परम शत्रु भीमदेव घायल अवस्था में गंदावा दुर्ग में जा छिपा है तथा उसके साथ बहुत-से राजपूत भी हैं। निश्चय ही वह पीछे से आक्रमण कर सकता है। भला महमूद जैसा अनुभवी योद्धा कैसे शत्रु को बगल में छोडकर आगे बढ सकता था। वह भीमदेव को साँस लेने का अवसर भी नहीं देना चाहता था। उसका बल क्षीण हो गया था और सहायता मिलने की उसे आशा न थी। अत. वह नहीं चाहता था कि शत्रु सगठित हो या उन्हें शक्ति-सचय का समय मिले। अभी गुजरात में बहुत बल था और लौटना निरापद न था, इसलिए उसने अपने प्रबलतम किन्तु घायल—विपन्न शत्रु भीम-

देव की ओर अपनी दृष्टि की और निर्णय किया कि जैसे भी हो उसे आमूल नष्ट करना ही श्रेयस्कर है। इन सब बातों पर विचार करके उसने चुने हुए तीन सहस्र धनुर्धर देकर फतहमुहम्मद को आगे गंदावा दुर्ग भेज दिया। फतहमुहम्मद यहीं का निवासी तथा सब घर-घाट से परिचित था। उसे जहाँ जितनी नौकाएँ मिलीं, उन्हें लेकर तथा भैंसों के बेड़े बनाकर वह कच्छ की खाड़ी में घुसा और शीघ्र-से-शीघ्र बढ़कर गंदावा दुर्ग के उपकूल पर आ धमका।

अमीर शेष सत्रह हजार सुगठित वीरों को लेकर स्थल-मार्ग से दुर्ग की ओर बढ़ा।

वह किला कच्छ के किनारे पर महासागर के खड्ड में था। किला बहुत मज-बूत और सुरक्षित था। एकाएक उस पर किसी शत्रु का आक्रमण सम्भव नहीं था। दुर्ग का तीन भाग सागर के गर्भ में था। बहुत बार गुर्जरपतियों ने विपत्काल में इस दुर्ग का आश्रय लेकर धन, मान और प्राण बचाये थे।

फतहमुहम्मद की सेना ने सूर्य छिपते-छिपते दुर्ग के जल मार्ग को घेर लिया। इस समय दुर्ग कमालाखाणी की कमान में था। दामोदर महता और बालुकाराय महाराज भीमदेव की रोग-शय्या पर बैठे उन्हें होश में लाने की तथा उनके घाव पूरे करने की चेष्टा कर रहे थे। महाराज भीमदेव यद्यपि अब मूर्च्छित न थे, परन्तु उनकी चेतनाशक्ति जाती रही थी। वे बारम्बार उठ-उठकर प्रलाप करते हुए भाग रहे थे, और किसी को पहिचानते न थे। उनके शरीर में से बहुत सा रक्त निकल गया था। अभी उनके जीवन की आशङ्का बनी थी। राजवैद्य उपचार कर रहे थे तथा मरुकच्छ और खम्भात से चिकित्सक बुलाये गये थे, जिनकी प्रतीक्षा हो रही थी। इसी समय फतहमुहम्मद के नेतृत्व में अमीर की सेना ने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।

सङ्कट-काल समुपस्थित देख दुर्ग के अधिवासियों ने एक छोटी-सी युद्ध-मन्त्रणा की। उस मन्त्रणा-सभा में केवल तीन व्यक्ति थे। घायल और वृद्ध कमा-लाखाणी बालुकाराय और दामोदर महता। कुछ परामर्श हुआ। अंतिम निर्णय के अनुसार दुर्ग कमालाखाणी को सौंप दिया गया। आहत भीमदेव तथा दूसरे घायलों को लेकर महता और बालुकाराय अत्यन्त प्रच्छिन्न रूप से खम्भात को

रवाना हो गये। यह कार्य ऐसे तुर्त फुर्त और सावधानी से हुआ, समझ सका।
कानोकान पता न लगा। लाखाणी ने आग्रहपूर्वक प्राय सब लड़ने या कोई
महासेनापति भीमदेव के साथ सम्भात भेज दिये थे। अब शेष दोनो प्रवहण भ।
सम्भात रवाना कर दिये। दुर्ग में अब छोटी जाति के सौ पचास मनुष्य और सौ
योद्धा बच रहे। भोजन-सामग्री की भी दुर्ग में कमी थी, इस कारण कम-से-कम
मनुष्यो को ही वहाँ रहने की व्यवस्था की गई। उन्हीं सौ योद्धाओ को लेकर
वीरवर कमालाखाणी सब बुर्जों पर चौकी-पहरे की व्यवस्था करके तथा
दुर्ग-द्वार भली-भाँति बन्द करके बैठ गये। उनकी गृद्ध दृष्टि अब शत्रु की गति-
विधि पर थी।

दुर्ग अत्यन्त दृढ और अजेय था। समुद्र से घिरी तीन ओर की ढालू फिसलती हुई चट्टानो पर किसी भी तरह मनुष्य का चढना सम्भव न था। दुर्ग का मुख्य तोरण बहुत ऊँचा था और वहाँ तक पहुँचने के लिए तीन मील टेढी-मेढी पथरीली पहाडी तथा पगडडी पर चलना पडता था, जहाँ कठिनाई से केवल एक आदमी चल सकता था। घोडा-हाथी तो वहाँ जा ही न सकता था। सारा पर्वत कँटीली लता-पुष्पो, गुल्मो एव कटीली झाडियो से भरा था। किले के कगूरो पर सौ धनुर्धर आक्रमणकारियो के विफल प्रयास का तमाशा देख रहे थे।

इस समय समुद्र में ज्वार आ रहा था और अमीर की जल-युद्ध से अनभिज्ञ सेना समुद्र की तूफानी पर्वत-सी तरगों की चपेट में उछल रही थी। उसकी नौकाएं उलट रही थी, या दूर-दूर लहरो पर बिखर गई थी। उसके साथ साहसी और कुशल मल्लाह भी नही थे। फतहमुहम्मद बहुत साहसी योद्धा था, परन्तु यहाँ उसे सफलता नही मिल रही थी। किसी तरह वह लहरो पर काबू नही पा रहा था। तीर तक नावो का पहुँचना सम्भव न था। लहरें उन्हें पीछे फेंक देती थी। अनेक नावें लहरों से उठाई जाकर चट्टानों से टकरा कर चूर-चूर हो रही थी। कुछ साहसी योद्धा नावो पर से ही तीर चला रहे थे पर वे दुर्ग के इस ओर ही प्राचीर से टकरा कर गिर रहे थे। दुर्गस्थ वीर उनका प्रयास देख-देखकर हँस रहे थे।

सारी रात फतहमुहम्मद विफल प्रयास करता रहा। भोर होते-होते अमीर

हिनी लेकर दुर्ग के सामने आ डटा। समुद्र भी शान्त हुआ, और देव की ओर चलता हुआ फ़तहमुहम्मद खीझ-भरा-सा अमीर के सामने जा खड़ा करना।। अमीर ने देखा—उसका सारा सैन्य-बल निरर्थक है। किले के फाटक पर पहुँचना सम्भव नहीं है और घेरा डालकर महीनों—वर्षों में भी किले का कुछ नहीं बिगाड़ा जा सकता। उधर अमीर के लिए एक-एक क्षण भारी हो रहा था। नीचे से कोई तीर किले तक नहीं पहुँच रहा था। एक-एक दो-दो आदमी—जो उन बीहड़ पगडंडियों की राह दुर्ग-द्वार तक पहुँच रहे थे, वह दुर्ग से बरसते हुए तीरों से बिध-बिधकर और लुढ़क-लुढ़क कर अमीर के सम्मुख ढेर हो रहे थे। अमीर की घुड़सवार सेना भी बेकार प्रमाणित हो रही थी क्योंकि वहाँ घोड़ा दौड़ाने का स्थान ही न था। क्रोध और खीझ से पागल होकर अमीर दुर्ग के बाहर बसी छोटे लोगों—खेड़ूतों की बस्ती पर टूट पड़ा। स्त्री, बच्चों और निरीह बूढ़ों तक को उसने काट डाला। अभी एक औरत के सामने सिर झुकाकर इस खुदा के बन्दे ने जो वचन दिया था उसे भूल गया। पर यह हत्याकांड करके भी उसे कुछ लाभ नहीं हुआ। उसे न दुर्ग को छोड़ते बनता था, न आक्रमण करते। वह सोच ही न पा रहा था कि क्या करे। भीमदेव जैसे शत्रु को वह अछूता छोड़ नहीं सकता था, और दुर्ग भंग करना उसके बूते से बाहर की बात थी।

निरुपाय उसने दुर्ग पर घेरा डाल दिया और स्थिर होकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। फिर कुछ सोच-समझ कर उसने फतहमुहम्मद को दूत बनाकर किलेदार के पास सुलह की शर्तें लेकर भेजा। सुलह की शर्तें सिर्फ़ यही थीं कि यदि किलेदार महाराज भीमदेव को उनके सुपुर्द कर दे तो वह किला छोड़ सकता है।

फ़तहमुहम्मद सफ़ेद झंडा फहराता हुआ किले की पौर पर पहुँचा। पौर के बुर्ज पर चढ़कर वृद्ध लाखाणी ने अमीर का सुलह सन्देश सुना। सुनकर हँसा, हँसकर कहा—"अमीर नामदार से हमारा सलाम कहना, और कहना कि अभी नहीं, परन्तु उपयुक्त काल में मैं महाराज को लेकर अमीर की सेवा में हाज़िर होऊँगा। अभी महाराज भीमदेव बीमार हैं। अमीर की अभ्यर्थना के योग्य नहीं।"

सन्देश में कितना व्यंग और कितना तथ्य था, यह अमीर नहीं समझ सका। उसने दुर्ग में घुसने योग्य कोई गुप्त मार्ग हो—तो उसे ढूंढ निकालने, या कोई दरार चट्टानों में बनाने तथा किसी तरह दुर्ग में घुसने की कोई न कोई तदबीर निकालने को चारों ओर अपने जासूस रवाना कर दिये।

६६ : अट्ठासी तलवार

दिन बीतते चले गये, पर लाभ कुछ नहीं हुआ। एक-एक करके सात दिन बीत गये। दुर्ग का अन्न-जल केवल एक ही दिन का शेष रह गया। वृद्ध कमालाखाणी ने वीरों को एकत्रित करके कहा—"भाइयो, खेद है कि समय ने हमारी सहायता न की। हमने कितनी भूल की कि दुर्ग में यथेष्ट अन्न-जल का प्रबन्ध नहीं किया। परन्तु अब भूख-प्यास से तड़पकर मरने से क्या लाभ है? और दो दिन बाद यदि हमने साहस किया तो हमारा बल आधा रह जायगा। भूख प्यास से हम जर्जर हो जायेंगे। इससे उत्तम होगा कि चलो, अपने हिस्से का शेष कार्य आज ही—अभी—पूरा कर दें। शत्रु की सेना पर प्रबल पराक्रम से टूट पड़ें और वीरगति प्राप्त करें। उसने गिन-गिनकर कहा—"सब ८८ वीर हैं। सब स्वस्थ हैं, सबके पास शस्त्र हैं, फिर विलम्ब काहे का—चलो, अपने-अपने प्राणों का मूल्य चुकाएँ। वीरवर सोरठ के राव धर्मक्षेत्र में तिल तिल कट मरे, अब आज हम भी उनकी राह चलें।"

वीरों ने दर्प से हुंकार भरी। सभी ने अपना अंतिम भोजन डटकर किया। जो खाद्य-सामग्री बची उसे नष्ट कर दिया। जल भी सुखा दिया। कुआँ पाट दिया और अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो दुर्ग द्वार खोल दिया। एक-एक वीर बाहर निकला। सबसे आगे वीरवर कमालाखाणी अपनी सफेद दाढ़ी फहराते चले। उनके पीछे अन्य योद्धा।

अमीर ने सोचा—क्या सचमुच वे आत्मसमर्पण कर रहे हैं। उसने सेना को सज्जित होने की आज्ञा दी। घोड़े पर सवार होकर वह सेना के आगे खड़ा हुआ।

राजपूत नीरव, निस्तब्ध नीचे आ रहे थे। उनकी तलवारें नीची थीं। अमीर ने एक भी तीर न छोड़ा। दोनों सेनाएँ केवल एक तीर के फ़ासले पर आमने-सामने खड़ी हो गईं। परन्तु एक तरफ बीस हज़ार सज्जित सेना थी और दूसरी ओर केवल अट्ठासी नर-व्याघ्र।

अमीर ने ललकार कर कहा—"क्या गुजरात का राजा हमारे तावे हुआ?" उधर वीर लाखाणी ने अपनी तलवार छाती से लगाई। घोड़े को ज़रा आगे बढ़ाया और हवा में फहराती अपनी धवल डाढ़ी की छटा दिखाते हुए कहा—"यदि तू ही ग़ज़नी का अमीर है तो हमारे पास अट्ठासी तलवारें हैं, ले एक-एक करके गिन।"

उन्होंने तलवार ऊँची की। घोड़े को एड़ मारी। काठियावाड़ी पानीदार घोड़ा हवा में उछला और सीधा अमीर पर टूट पड़ा। अमीर फुर्ती से बग़ल में दब गया, और लाखाणी की तलवार, जो अमीर के सिर को लक्ष्य कर चुकी थी—उसके घोड़े के मोढ़ पर पड़ी। अट्ठासी तलवारें उन बीस हज़ारों पर बाज़ की भाँति टूट पड़ीं। अमीर अवाक् रह गया। वीर धुरधर कमालाखाणी और उसके अट्ठासी योद्धा इस तरह उस महासैन्य को चीरते चले गये—जैसे खरबूजे को चाकू चीरता है। वे सेना के मध्य-भाग तक पहुँच गये। चारों ओर मुँह करके वृद्ध लाखाणी को केन्द्र में रखकर वे चौमुखी तलवारें चला रहे थे। क्षण-क्षण पर तेज़ी से उनकी संख्या कम होती जा रही थी पर उससे अधिक तेज़ी से वे अपनी राह निकाल रहे थे। सेना के समुद्र को वे अट्ठासी वीर इस प्रकार पार कर रहे थे, जैसे मगरमच्छ पानी को चीरता जा रहा हो।

शत्रु हैरान थे और अमीर विमूढ़ बना इन वीरों के शौर्य को देख रहा था। अन्त में वे शत्रु-दल को भेदने में सफल हुए परन्तु अट्ठासी में से कुल दो योद्धा अब जीवित थे। एक उनमें कमालाखाणी थे। वे रक्त में शराबोर थे। शत्रु-सैन्य से बाहर होते ही दूसरा योद्धा घोड़े से गिर पड़ा। कमालाखाणी ने रास मोड़ी और घोड़े से कूदकर अपने दुर्धर्ष योद्धा का सिर अपनी जाँघों पर रख लिया। योद्धा ने एक बार सूखे होठों पर जीभ फेरी और आँखें पलट दीं। लाखाणी ने वहीं थोड़ी मिट्टी ऊँची कर उसका सिर टेक दिया। वे उठकर खड़े हुए तब तक हज़ारों शत्रुओं ने उन्हें घेर

लिया था। अमीर ने ललकार कर कहा—'खबरदार, इस बुजुर्ग का बाल भी बाँका न होने पाय। योद्धा हट गये और लाखाणी अपनी तलवार हाथ में लिये खड़े रहे। घावों से उनका रक्त बह रहा था।

अमीर घोड़े से कूद पड़ा। उसने कहा—'ऐ बुजुर्ग, तुझ पर आफरीन है। तू कौन है? अपना नाम बताकर महमूद को ममनून कर।"

"मैं कच्छ का धनी कमालाखाणी हूँ, परन्तु अमीर महमूद, अब मैं खड़ा नहीं रह सकता। दो घड़ी पहले—जब मैं तेरे सामने आया था—मेरे पास अट्ठासी तलवारें थीं, परन्तु अब केवल एक है। यह मैं सिर्फ तुझे देना चाहता हूँ। जल्दी कर, मेरी आँखें भी जवाब दे रही हैं।" तलवार उठा वृद्ध लाखाणी ने हवा में तलवार घुमाई पर उनका शरीर झूम गया। अमीर ने लपककर उन्हें अंक में भर लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—"कच्छ के विजयी महाराज, आपकी इस अकेली तलवार ने दिग्विजयी महमूद को जेर किया है, महमूद की क्या ताब कि इसे छुए।"

परन्तु लाखाणी के कान में महमूद के पूरे शब्द नहीं पड़े। अमीर की गोद में उनका सिर लुढ़क गया। उनको गोद में लेकर अमीर महमूद वहीं भूमि पर बैठ गया। एक बार वीरवर ने आँख खोलीं—होंठ हिले और सदा के लिए निस्पन्द हो गये।

अमीर ने आँख उठाकर देखा, उसके योद्धा चुपचाप खड़े यह तमाशा देख रहे थे। अमीर ने हुक्म दिया, "ऐ बहादुरो, घोड़ों पर से उतर पड़ो, हथियार जमीन पर रख दो और बहादुरों के बादशाह इस बुजुर्ग की तलवार के सामने सिर झुकाओ।' बीस हजार बर्बर दुर्दान्त खूनी डाकुओं ने भूमि पर घुटने टेककर अपने-अपने हथियार जमीन पर रख सिर झुका दिये।

अमीर की आँखों से झर-झर आँसू बह चले। उसने दोनों हाथों से वृद्ध व्याघ्र की तलवार लेकर आँखों से लगाई। उसे चूमा और उसे वीरवर के वक्षस्थल पर स्थापित कर अपना सिर भी उस निस्पन्दित वक्ष पर झुका दिया।

७० : रक्त-गन्ध

अमीर ने बहुत खोज की, पर दुर्ग में एक भी जीवित क्षत्रिय न मिला जो वीरवर कमालाक्षाणी की ऊर्ध्वदैहिक क्रिया करता। अमीर ने तब अपने उमराव क्षत्रिय सरदारों को आदरपूर्वक वीर की अन्तिम क्रिया धर्मानुसार करने की आज्ञा दी। वह स्वयं नंगे पैर कुछ दूर तक अर्थी के साथ चला तथा इस वृद्ध वीर के सम्मान में अपनी सारी सेना को तलवार नीचे झुकी रखने का आदेश दिया। लूट-मार करने योग्य वहाँ कुछ भी शेष न बचा था। दुर्ग सूना था, वहाँ न एक प्राणी था, न एक दाना अन्न, न एक बूँद पानी। दुर्ग के तल-भाग में बसी बस्ती प्रथम ही जलाकर क्षार कर डाली गई थी। सब लोग कट पिट चुके थे, जो बच सके थे, वे प्राण लेकर भाग गये थे। लाशें सड़ रही थीं, गीध मँडरा रहे थे, वायु का सायँ-सायँ शब्द और समुद्र की उत्ताल तरंगें भयानक दीख रही थीं। अमीर की सारी सेना त्रस्त, थकित, भूखी, प्यासी और अशान्त थी। वहाँ न उनके घोड़ों को घास और न दाना-चारा था, न सिपाहियों के लिए अन्न-जल।

वीर का सत्कार कर चुकने पर इस व्याघ्र का ध्यान फिर अपने प्रमुख शत्रु भीमदेव की ओर गया। क्या भीमदेव बचकर भाग निकला या इसी युद्ध में मर-कट गया। परन्तु ऐसा होता तो उसका पता अवश्य लग जाता। अमीर ने बहुत-से गोइन्दे उसकी टोह में लगा दिये थे। स्वयं फतहमुहम्मद अपने सवारों सहित खोज में निकला था।

तीसरे पहर फतहमुहम्मद समाचार लाया कि भीमदेव बचकर खम्भात को रवाना हो गया है। अमीर के पाषाण सम कठोर हृदय पर जो मूर्ति अंकित थी

वह भी खम्भात में थी। अब तक अमीर अपने रण-रग में उसे भूला था। अब एकबारगी ही वह मूर्ति उसके रक्त-बिन्दुओं में ऊधम मचाने लगी। उसने मन-ही-मन याद करके उसका नाम दुहराया—चौला—चौला। और वह लम्बी-लम्बी उसासें लेने लगा। उसके नथुने जलने लगे। इसी समय उसे ख्याल हुआ कि उसका शत्रु भीमदेव भी खम्भात में है और उसकी माशूका नाज़नीन भी। फूंक अज्ञात ईर्ष्या से उसका रोम-रोम जल उठा। एक प्रच्छिन्न भावना से अभिभूत होकर उसने अपने मन में कहा—नहीं—नहीं, ये दोनों कभी न मिलने पायेंगे, कभी नहीं। उसे स्मरण हुआ—वह प्रथम दर्शन, भीमदेव का अकस्मात् आकर तलवार उठाना और फिर रण के आने से निरुपाय लौटना। उसने धरती में पैर पटककर कहा—"हूं, जब तक यह तलवार है—उसे दूसरा कोई न छू सकेगा। वह महमूद की दौलत है। उसकी संचित सारी दौलत से भी अधिक। उसकी सत्रह बड़ी-बड़ी दिग्विजयों से भी अधिक मूल्यवान्।"

परन्तु गर्व और गौरव ने किसी के सामने उसे अपने हृदय की इस भूख को प्रकट नहीं करने दिया। वह मन-ही-मन दाव-पेंच खाता रहा। अन्त में उसने फतहमुहम्मद को एकान्त में बुलाकर पूछा—"क्या तू खम्भात की राह-बाट जानता है?"

"जानता हूं।"

"राह में दाना, घास, पानी है?"

"बहुत है।"

"खम्भात देखा है?"

"देखा है हज़रत।"

"वहां के गली-कूचों से वाकिफ है?"

"अच्छी तरह। मैं वहां रह चुका हूं।"

"और वह नाज़नीन।"

"मेरी एक आंख उस पर ही है हुज़ूर।"

"क्या तुझे उसकी कुछ खबर है?"

"वहां जाते ही मिल जायगी।"

"किस तरह ?"

"मेरा आदमी उसके साथ है।"

"वह क्या भरोसे का है ?"

"मेरी बीवी है।"

"तो चल, अभी कूच कर। अपने तीन हज़ार सवार चुन ले और उन्हें तीन टुकड़ियों में बाँटकर मुझसे तीन कोस आगे चल। हर-एक टुकड़ी का आधे कोस का फ़ासला रख।"

"जो हुक्म।"

"और तुझे मैं सिर्फ़ उस नाज़नीन के ऊपर छोड़ता हूँ लड़ाई से दूर रह, सिर्फ़ उसी पर आँख रख।"

"यह तलवार भी हुज़ूर।"

"और तेरी बीवी, यदि सिपहसालार की बीवी बनने का फ़ख़ हासिल किया चाहती है, तो उसी नाज़नीन के साया में यह बात उसे कह देना।"

"कह दिया है हुज़ूर।"

"तू एक दानिशमन्द खुशगवार बहादुर है। मैं तुझसे खुश हूँ।"

फ़तहमुहम्मद ने अमीर का दामन चूमा और सिर झुकाकर तेजी से चल दिया।

और कुछ ही क्षणों के बाद अमीर का लश्कर सम्भान की राह-बाट जोह रहा था, जैसे कोई रक्त-पिपासु, हिंस्र पशु अपने मारे हुए शिकार की रक्त-गन्ध लेता हुआ उसके पीछे जाता है।

७१ : खम्भात

खम्भात गुजरात का वैकुण्ठ कहलाता था। वहाँ की प्राकृतिक शोभा अपूर्व थी। प्रकृति और कला दोनों ही के संयोग ने इस विशाल नगरी को गुजरात का शिरोभूषण बना रखा था। नगर का बहुत बड़ा विस्तार था। महत्त्वपूर्ण समुद्र-तट होने के कारण उसकी व्यापार-महत्ता बहुत बढ़ गई थी। अरब और रोम के व्यापारी जहाज खम्भात ही के द्वार पर भूस्पर्श करते थे। देश-विदेश के वणिक्, व्यापारी यहाँ सदैव बैठे ही रहते थे। समुद्र-तट की तरंगरम वायु, तरंगित समुद्र की सुषमा और जलथल के पक्षियों का कलरव एवं पुष्पों की गन्ध, केला, नारियल, आम आदि वृक्षों की सघन घन छाया, देखते ही बनती थी। सान्ध्य वेला में अस्तगत सूर्य किरणों की लालिमा अकथ शोभा विस्तार कर रही थी। नगर में अनेक उपवन, ताल, बावड़ी और रमणीय स्थान थे। वहाँ के लोग भी अत्यन्त सम्पन्न, सुरुचिपूर्ण, स्वच्छ और सभ्य थे। नगर की समृद्धि इतनी थी कि वहाँ के व्यापारियों की हाट में हीरा, मानिक, मोती और मूँगों के ढेर लगे रहते थे। अरब समुद्र से निकलनेवाले गजमुक्ताओं की उन दिनों खम्भात ही सबसे बड़ी मण्डी थी। इस समय नगर का क्षेत्रफल पन्द्रह गाँव की सीमा में तीस मील तक फैला था।

नगर के प्रान्त में समुद्रतट पर भूरे रंग के पत्थर का एक दुर्ग था। दुर्ग बहुत विशाल और ऊँचा था। उसके चारों ओर की खाई साठ हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी थी, जो सदा समुद्र के जल से भरपूर रहती थी। धनी जनों की हवेलियाँ पत्थर की तथा सर्वसाधारण के मकान दो फीट की लम्बाई की पैंतीस-पैंतीस सेर

की बनी—भट्टी में पकाई हुई समचौरस या लम्बचौरस ईंटों के बने हुए थे। परन्तु इस समय खम्भात के गौरवस्वरूप देवाधिष्ठान अचलेश्वर महादेवालय था, जो अनिमिष, समुद्र के मस्तक पर एक उत्तम शृंग पर भूरे रंग के पत्थर का बना सुशोभित हो रहा था। उसके स्वर्ण-कलश मध्याह्न के सूर्य में जगमग करते दस-दस गांव के लोगों को दीख पड़ते थे। मन्दिर में सैकड़ों ब्राह्मण निरन्तर शिव-स्तोत्र पाठ करते थे, मन्दिर का विशाल मण्डप स्फटिक के खम्भों पर आधारित था जहां जगह जगह वेद, पुराण आदि के वाक्य तथा देवमूर्तियां खुदी हुई थीं। इसे कैलाश-मण्डप कहा जाता था। मन्दिर में प्रतिष्ठित शिवलिंग की प्रतिष्ठा, सोमनाथ के बाद अग्रगण्य थी। लिंग के सम्मुख स्फटिक ही का विशाल नन्दी था। देवता ही नहीं, देवता के पुजारी नृसिंह स्वामी की कीर्ति भी गुजरात में दिगन्त व्याप्त थी। राजा और प्रजा दोनों ही उन्हें एकनिष्ठ ब्रह्मचारी और महापुरुष की भांति पूजते थे। नृसिंह स्वामी गत तीस वर्षों से देव-सेवा कर रहे थे। उनके उन्नत ललाट और प्रसन्न मुद्रा को देखते ही छोटे-बड़े सब मोहित हो जाते थे। वे सभी की श्रद्धा और भक्ति के पात्र थे। इसके अतिरिक्त और भी अनेक भव्य देवालय जहां प्रत्येक प्रभात, मध्यान्ह और सन्ध्याकाल के स्तवन से समस्त खम्भात नगर मुखरित हो उठता था।

खम्भात उद्योग-शिल्प में भी वाणिज्य की भांति ही प्रख्यात था। हरएक वस्तु के पृथक् पृथक् बाजार थे। नगर का राजमार्ग बड़ा विशाल था। नगर दृढ़ प्राचीर से घिरा था जिसमें बड़े-बड़े बुर्ज व बड़े बड़े द्वार थे जहां अम्बारीवाले हाथी अनायास ही निकल सकते थे।

समुद्रतट नगर से कोई पौन मील के अन्तर पर था। वह अतिविशाल और भव्य था। मार्ग के दोनों ओर विशाल वन-उपवन, बावड़ी, धर्मशाला, अतिथिगृह और वाटिकाएं बनी थीं, जहां विविध फल फल लदे हुए थे तथा भांति-भांति के पक्षी कलरव करते थे। वसन्तपोषी कोयल आम्रमंजरी पर बैठी कुहु की ध्वनि करती और आम, चम्पा, तमाल, अशोक वृक्षों की सघन छाया में स्त्री पुरुष स्वच्छन्द विहार करते तथा उन्मुक्त नीरोग समुद्री वायु का सेवन करते थे।

इन दिनों खम्भात में बहुत भीड़ हो गई थी। देवपट्टन के सब ब्राह्मण-परि-

वार, सेठ, उनके परिजन और इधर-उधर के भागे हुए लोग भर गये थे। सैनिक भी बहुत थे। सोमनाथ और गदावा दुर्ग से पतन के समाचार सुन सावतसिंह चौहान को दुर्ग सौंप महाराज वल्लभदेव अपना सदर मुकाम यहाँ से उठाकर बहुत से धनी परिवारों तथा ब्राह्मणों सहित अपनी सैन्य ले आबू को रवाना हो गये थे। इससे सर्वत्र उदासी बेचैनी और चिन्ता की लहर फैल रही थी। कारोबार ढीले हो रहे थे। लोग आशंका से भयभीत थे।

७२ : वियोग-संयोग

खम्भात के दुर्ग का पश्चिमी भाग समुद्र की ओर था। उसी दिशा में एक छोटा-सा महल भूरे पत्थर का अतिप्राचीन बना हुआ था। कहते हैं कि उस महल को वल्लभीपुर के महाराज शिलादित्य ने निर्माण किया था। महल सुन्दर और कलापूर्ण था और उसमें आठवीं-नवमी शताब्दी की मध्य स्थापत्य-कला का प्रदर्शन था। इसी महल में चौला को रखा गया था। शोभना उसकी प्रधान सहचरी के रूप में उपस्थित रहती थी। पाठक भूले न होंगे कि उसे फतहमुहम्मद ने चौला पर जासूसी के लिए नियत किया था। शोभना वास्तव में बड़े ही स्वच्छ हृदय की युवती थी। उसका मन बहुत ही भावुक और कोमल एवं सरल था। चौला का सौन्दर्य, उदारता और कोमल भावुकता से शोभना का मन मेल खा गया और वह सच्चे मन से उसे प्यार करने लगी थी। वह उसकी उदास, आँसुओं से भरी आँखें, बेचैनी से करवटें बदलती हुई रातें आँखों से देख चुकी थी। वह देखती थी कि चौला घण्टों निरानन्द बैठी सुदूर समुद्र की तरंगों के उस ओर देवपट्टन को अनिमेष भाव से देखती रहती है। फिर लम्बी साँस खींच सिक्त आँखें पोंछ लेती है। वह बहुत कम बोलती, बहुत कम खाती, बहुत कम सोती और बहुत कम अपनी आवश्यकताएँ दूसरों को बताती है।

परन्तु शोभना छाया की भाँति उसके साथ रहती। कभी-कभी नाच-गाकर उसे खुश करने की चेष्टा करती, हँसती-हँसाती। उसके सरल व्यवहार और आनन्दी स्वभाव को देख—कभी-कभी चौला मुस्करा देती। कभी कहती—बहन, इतना कष्ट क्यों करती हो। कभी-कभी जब वह बरजोरी शोभना को बरजती

तो वह मुँह फुलाकर रूठ जाती। चौला को उस मनुहार करके मनाना पडता तो वह खिलखिलाकर हँस पडती।

कभी वह विचारती—क्यों देवा ने उस पर दृष्टि रखने को कहा है—क्यों गजनी का अमीर उस पर नजर रखता है। अवश्य ही उसकी नजर अच्छी नहीं है। देवस्वामी को वह प्यार करती थी और उस प्यार की आग में उसे उसका मुसलमान होना भी नहीं खला था। धर्म-शत्रु गजनी के अमीर का अनुवर्ती होना भी उसे ब ा न लगा था परन्तु वह किसी रूप में चौला का अनिष्ट करे—यह नहीं सह सकती थी। उसने मन ही मन चौला की प्रत्येक मूल्य पर संकट-काल में रक्षा करने की ठान ली। सोमनाथ के पतन के समाचार दुर्ग में पहुँच चुके थ। वह सोच रही थी कि क्यों उस सर्वग्रासी अमीर की सेवा देवा करता है। वह निश्चय कर चुकी थी कि यदि इस बार देवा से मुलाकात हुई तो वह कहेगी कि वह उस धर्म-द्रोही का साथ छोड दे और महाराज भीमदेव की सेवा में रहकर आततायी का सामना करे। महाराज भीमदेव के साथ चौला का धर्म-विवाह देव सान्निध्य में हो चुका है—यह बात अभी उसे नहीं मालूम थी। परन्तु महाराज भीमदेव के प्रति चौला के विरह-वैकल्य को वह ठीक-ठीक समझ गई थी। वह भुवन-भोगिनी थी। इससे उसके मन में चौला के प्रति यथेष्ट सहानुभूति थी।

सामन्तसिंह को खम्भात का किलेदार नियत किया गया था। उसने चौला को महारानी की भाँति रहने की सब सम्भव व्यवस्था कर दी थी। वह नित्य सुबह शाम उपस्थित होकर चौला की आवश्यकताओं को पूछ लेता। दासियों तथा शोभना को आवश्यक हिदायतें तथा देवपट्टन के समाचार देता था। देवपट्टन के पतन से वह चिन्तित था, और शोभना की विपत्ति की आशंका से सावधान।

एक दिन जब सन्ध्या-काल में शोभना और चौला समुद्र की उज्ज्वल फेन-राशियों के साथ अस्तगत सूर्य की अरुण किरणों की क्रीडा-विलास करते देखने में मग्न थीं तब व्यस्त भाव से चौहान ने वहाँ पहुँचकर सूचना दी कि महाराज सख्त घायल हुए हैं, एव महाराज की सवारी खम्भात आ रही है। चौला एकबारगी ही उन्मत्त की भाँति बाहर को दौड पड़ी। उसने देखा, सेना की एक छोटी-सी टुकडी दुर्ग में प्रविष्ट हो रही है। सबसे आगे घोड़े पर सवार नंगी तलवार हाथ में लिए

सेनापति वालुकाराय है।

महाराज का मूर्च्छित, घायल शरीर चौला के ही कक्ष में लाकर रखा गया। चौला सब लाज-संकोच भूल महाराज का सिर गोद में ले जार-जार आंसू बहाती और महाराज के सूखे बालों में अपनी कोमल अंगुलियां फेरती रहती। भाव विमोहित हो शोभना भी महाराज के चरणों को गोद में ले बैठी। राजवैद्यों का उपचार जारी था। दुर्ग में हलचल फैल रही थी। सामन्तसिंह दौड़-दौड़कर सब बुर्जों पर सुरक्षा की व्यवस्था कर रहे थे। अब किसी भी क्षण अमीर के खम्भात पर आ धमकने की सम्भावना थी। निराशा और उद्वेग का वातावरण सर्वत्र छा रहा था। धीरे-धीरे रात गम्भीर होने लगी। निस्तब्ध रात्रि में चौला के सान्निध्य में चौला का सुख स्पर्श पाकर महाराज भीमदेव को चेतना हुई। महाराज ने आंख फाड़कर चारों ओर देखा, उनकी दृष्टि चौला के सूखे और मुर्झाये मुंह पर अटक गई। उन्होंने क्षीण स्वर से पूछा—"मैं कहां हूं ?"

परन्तु चौला के मुंह में स्वर अटक गया। वह बोल न सकी। उसकी आंखों से झर-झर आंसू बह निकले।

शोभना ने कहा—"घणी खमा, अन्नदाता खम्भात में हैं।"

"और तुम ?"

शोभना उत्तर न दे सकी। महाराज की दृष्टि चौला पर अटक गई। उसे पहचानकर महाराज ने कहा—"तुम हो चौला ?" उन्होंने हाथ ऊंचा कर अपने बालों में घूमती हुई चौला की अंगुलियां छुईं।

चौला ने आंसू पोंछे।

"ऐसी हो, क्या अशुभ हो चुका ? यही सम्भव था। किन्तु और सब ?"

"महाराज······" चौला की हिचकियां बंध गईं।

"बालुकाराय है ?"

चौला ने धीरे से कहा—"हां, क्या बुलाऊं ?"

"नहीं, और महता दामो ?"

"वह भी है महाराज।"

"क्या मैं यहां कई दिन मूर्च्छित रहा ?"

"महाराज को आज ही बालुकाराय ले आये हैं।"

"देवपट्टन से ?"

"नहीं, गंदावा दुर्ग से।"

"तो गंदावा दुर्ग का भी पतन हो गया ?"

चौला ने सिर झुका लिया। महाराज ने जल माँगा। चौला ने चाँदी की झारी से जल महाराज के मुँह में डाला। कुछ देर महाराज चुप रहे, फिर उन्होंने एक प्रकार से आर्त्तनाद-सा करते हुए कहा--

"तो गुजरात की तलवार टूट चुकी ? कौन-कौन खेत रहे, कौन-कौन बचे ?"

"सब ब्यौरा सेनापति शायद बता सकें, उन्हें बुलाऊँ ?"

"अभी नहीं", उन्होंने फिर शोभना को देखकर कहा--"तुम कौन हो ?"

"मैं शोभना हूँ, देवी की चिरकिंकरी।"

महाराज ने चौला की ओर देखा। चौला ने साभिप्राय दृष्टि से शोभना की ओर देखा, शोभना धीरे से उठकर बाहर चली गई। कक्ष में एकान्त हो गया। महाराज एकटक बहुत देर तक दीपक के धीमे पीले प्रकाश में चौला के पीले मुँह को देखते रहे। फिर हाथ बढ़ाकर आहिस्ता से उसे निकट खींच लिया। पुष्प के ढेर की भाँति चौला महाराज के वक्ष पर गिरकर भारी-भारी साँस लेने लगी। जीवन और मृत्यु के मध्यस्थ उस संयोग वियोग के उद्वेग से उसका वक्ष लुहार की धौंकनी के समान धौंकने लगा। दोनों ही आकुल-व्याकुल हृदय परस्पर निकट धड़क रहे थे, और उनके साक्षी थे दोनों के प्रेम पिपासु सूखे, विरह-विदग्ध सम्पुटित ओष्ठ।

७३ : महामन्त्र

महाराज भीमदेव की रुग्णशैया पर मन्त्रणा-सभा जुडी। सभा में केवल तीन पुरुष थे—बालुकाराय, दामो महता और महाराज भीमदेव।

महाराज भीमदेव ने पूछा⋯⋯

"तो देवपट्टन का पतन हो गया, गुजरात की मर्यादा भग हो गई।"

"गुजरात की मर्यादा भंग नहो होगी महाराज, जब तक वीरवलि भीमदेव खड्गहस्त है", महता दामोदर ने स्थिर स्वर से कहा।

"सर्वज्ञ और गंगा की कुछ सूचना मिली है?"

"नहो महाराज।"

"देवता की रक्षा हुई?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"राव रायघन?"

"वे सम्भवत. खेत रहे।"

"और कमालाक्षाणी।"

"गदावा दुर्ग हमने उन्हें ही सौंपा था। उन्होने हमें सब युद्ध-साधन समेत विदा कर दिया था। दुर्ग में कुल सौ योद्धा भी नहीं थे पर दुर्ग दृढ़ था। कौन जाने उन पर क्या बीती, सूचना अभी नहीं मिली है।"

"दुर्ग में क्या यथेष्ट अन्न-जल था?"

"नहीं।"

'तब तो ....." महाराज के नेत्र सजल हो गये। उन्होंने कहा—' राजवैद्य कहाँ है ?"

"उपस्थित है महाराज !"

"उन्हें अभी बुलाओ।"

"राजवैद्य ने आकर महाराज को जुहार कहा। महाराज ने कहा—"वैद्यराज, मेरे घाव कितनी देर में भर जायेंगे।

'अन्नदाता, अभी एक मास न अश्व की पीठ ले सकते हैं, न तलवार ग्रहण कर सकते हैं।"

'यह तो असम्भव है वैद्यराज !"

"असम्भव तो महाराज के प्राणों का इस क्षत-विक्षत शरीर में शेष रह जाना था।" वैद्यराज ने आँखों में आँसू भरकर कहा।

"वह तो सम्भव हुआ वैद्यराज।' महाराज ने सूखी हँसी हँसकर कहा।

'महाराज के पुण्य प्रताप और देव-सहाय से महाराज।"

"तो वैद्यराज, प्रत्येक मूल्य पर यह भी सम्भव करो कि मैं एक सप्ताह में शस्त्र ग्रहण कर सकूँ।"

"अपराध क्षमा हो अन्नदाता, मैं किसी तरह श्रीगानों के प्राणों पर खतरा नहीं आने दूँगा।"

'परन्तु गुजरात की प्रतिष्ठा का प्रश्न है।"

"गुजरात के धनी के प्राणों का मूल्य उससे बहुत अधिक है अन्नदाता।"

"नहीं वैद्यराज, मैं अधिक काल तक शैय्या पर नहीं रह सकता।"

वैद्यराज ने सिर झुका लिया। महता ने कहा—'महाराज, हम जैसे भी सम्भव होगा आपको स्वास्थ्यलाभ कराने की शीघ्रता करेंगे, परन्तु अभी अगरय की बात है।"

मरेन पारर वैद्यराज चले गये। महाराज ने कहा—"हाँ, परन्तु मेरी तो एक ही बात है कि गजनी का यह दैत्य और उसके सगी-साथियों में से कोई यहाँ से जीवित लौटने न पाये।"

'यही हम निर्णय करता है महाराज, मेरी एक योजना है," महता ने कहा।

"कहो महता", महाराज ने आकुल दृष्टि से महता को देखकर कहा।

"महमूद के लौटने के दो मार्ग हैं—एक आबू होकर राजस्थान को भग करके, दूसरा कच्छ के रन में से होकर।"

"तब ?"

"हमें राजस्थान का मार्ग अवरुद्ध करना होगा और यह मोर्चा आबू-चन्द्रावती की उपत्यका में होगा। विमलदेवशाह साठ सहस्र सगठित योद्धा लिये वहाँ तैयार बैठे हैं। महाराज वल्लभदेव भी सब सैन्य और साधन ले उनसे जा मिले हैं। मैंने देवपट्टन से चलते ही यह व्यवस्था कर दी थी। विमलदेव को सूचना भी भेज दी थी। चन्द्रावती के परमार और अनहिल्लराय नान्दोल से सैन्य समेत आबू को चल पड़े हैं। उनकी आँखें खुल गई हैं। दोनों की सयुक्त सेना चालीस हजार है। परन्तु एक बाधा है।"

"वह क्या ?"

"कुमार दुर्लभदेव। उन्होंने अमीर से गुप्त सधि कर ली है और वे गुर्जराधीश बनने की तैयारी में बैठे हैं। उनके पास पचास सहस्र सज्जित सेना है। युद्ध में वे निश्चय ही अमीर का पक्ष लेंगे।"

"क्या उनके सब सेनापति और योद्धा भी उन्हीं की भाँति शत्रु के दास और देशद्रोही हैं ?"

"नहीं महाराज, वे सब हमारे साथ हैं।"

"तो क्यों न दुर्लभदेव को बन्दी कर लिया जाय ?"

"यह तो अभी ठीक न होगा महाराज, मैंने एक बात सोची है।" महता ने कहा।

"क्या ?"

"अमीर पाटन पहुँचकर उनका अभिषेक करेगा—यह मुझे ज्ञात है। हम ऐसा उपाय करेंगे कि पाटन जाते समय दुर्लभदेव के साथ अधिक सैन्य न हो। यह कुछ भी कठिन नहीं होगा क्योंकि सेनानायकों से सब परामर्श किया जा चुका है। अमीर सम्भवतः जल्दी-से-जल्दी पाटन से पलायन करने की सोचेगा। उसका बल भग हो गया है और उसके सैनिक अशान्त हैं। हम उसे और भयभीत

करेंगे। वह हमारी आबू की तैयारी से बेखबर भी न रहेगा। बेखबर हम रहने भी न देंगे। बस, वह पाटन में अधिक न ठहरेगा। दुर्लभदेव को राज्य दे, लूट का माल ले, गजनी भागेगा। उस समय अरक्षित दुर्लभ को कैद कर लेना कुछ भी कठिन न होगा।"

"किन्तु अमीर ?"

"वह आबू की ओर बढ़कर आत्मघात न करेगा।"

"और यदि करे ?"

"तो महाराज की रकाब में वहाँ डेढ़ लाख तलवारें उसका ऐसा स्वागत करेंगी जिसकी उसने कभी कल्पना भी न की होगी।"

"और यदि वह कच्छ के अथाह रन में घुसे ?"

"तो चौहान सज्जनसिंह वहाँ उसका ऐसा स्वागत करेंगे कि जिसका नाम।"

"क्या सज्जन को हम कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते ?"

"असम्भव है महाराज, फिर उसको आवश्यकता भी नहीं है। वह रणयम्भो माता के स्थान पर चौकी लिये बैठे हैं, जहाँ से आगे तीन सौ मील के भीतर न एक बूँद जल है, न एक झाड़। न घास-फूँस, केवल रेत ही रेत है। रेत के अधड़ हैं। तूफानी वायु के थपेड़े हैं। ये सब इन दैत्यों की जीवित समाधि के लिए उत्सुक हैं।"

"तो अब ?"

"अब खम्भात का कोई भरोसा नहीं है। गजनी का दैत्य आपकी गंध सूँघता हुआ चाहे जब आ धमकेगा। इसलिए आप, चौला रानी तथा बालुकाराय को लेकर अभी, इसी क्षण आबू को कूच कर दें—और मैं सब ब्राह्मणों, सेठियों, स्त्रियों और आवश्यक जनों को भरुकच्छ रवाना करता हूँ। धन, सम्पत्ति और अन्न आदि को बचाने का समय नहीं है, आवश्यक होगा तो हम सब कुछ आग लगाकर भस्म कर डालेंगे।"

"परन्तु यह कदापि न हो सकेगा महता, मैं इन सब ब्राह्मणों और भद्र नाग-रिकों को अरक्षित छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

"किन्तु महाराज......"

"चुप महता—मैं इसी अपनी तलवार की शपथ खाकर कहता हूँ, कि नहीं जाऊँगा। अरे, जीवन क्या बारम्बार मिलता है। क्या भीमदेव अब प्राणों का भार लेकर इधर-उधर भटकता फिरेगा? नहीं-नहीं, यह कभी नहीं होगा। हाँ तुम चौला रानी को सुरक्षित पहुँचाने की व्यवस्था कर दो।"

परन्तु इस बार चौला—जो जालीदार गवाक्ष में बैठी मन्त्रणा सुन रही थी लोक-लिहाज छोड उन्मत्त की भाँति दौडकर महाराज के पैरों से लिपट गई। उसने कहा—"चाहे जो भी हो, पर मैं आपको छोडकर नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी, प्राण रहते नहीं जाऊँगी।"

"किन्तु प्रिये, समय कठिन है, हमें कठिनाई होगी।"

"नहीं होगी महाराज, मैं भी राजा की पुत्री हूँ। जैसे मेरे पाँव नृत्य निपुण हैं वैसे ही मेरे हाथ तलवार चलाने में भी पटु हैं। अब शत्रु क्षत्राणी की तलवार का पानी भी पीकर देखें।"

महाराज भीमदेव ने चौला की ओर देखा। हाथ बढाकर उसका हाथ थाम लिया। फिर बालुकाराय से कहा—"तो बालुक, ऐसी ही व्यवस्था करो। सामन्त सिंह महता से नगर-दुर्ग की रक्षा की व्यवस्था कर लो। नगर सामन्त के हाथ रहे, और दुर्ग तुम्हारी रक्षा में। और महता, तुम जितनी शीघ्र जितने परिवारों को बाहर भेज सको—भेज दो। पर ध्यान रक्खो, कम-से-कम भार लेकर लोग जायँ तथा युद्ध योग्य व्यक्ति और अस्त्र बाहर न निकलने पायें। चौहान से कहो—जी-जान से खम्भात की रक्षा का प्रबन्ध किया जाय। तथा कमालाखाणी और अमीर की गतिविधि जानने के लिए जासूस भेजो।"

७४ : गनगौर

उस दिन गनगौर का पर्व था। इस पर्व पर खम्भात में बड़ा भारी मेला लगता है। गौरी की मूर्ति का समुद्र में विसर्जन होता है। क्षण भर के लिए आबाल-वृद्ध सब चिन्ता भूलकर, उत्तम उत्तम वस्त्राभूषण पहनकर अपने-अपने वाहनों में सज-धजे गनगौर पूजने को घर से निकले थे। घुड़सवार सैनिक सुरक्षा और व्यवस्था कर रहे थे। नगर के चौक में गौरी की प्रतिमा लाकर रखी गई थी। समुद्र-तीर पर प्रतिमा को ले जाने की तैयारी होने लगी। घुड़सवार सैनिक पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। नाना प्रकार के वाद्य बजने लगे। विविध रंग बिरंगी पताकाएँ लिये बालक-बालिकाएँ आनन्द से किलकारी भरने लगे।

अभी सूर्योदय हुए एक प्रहर भी नहीं हुआ था फिर भी सूर्य की किरणें तेज हो गई थी। गौरी की प्रतिमा एक स्वर्णनिर्मित शिविका में रखी गई थी। उसको सेठों के युवक पुत्रों ने उठा लिया और हर्ष से उछलते हुए हृदयों से देवी-प्रतिमा को ले चले। गौरी की प्रतिमा पीले रंग के रेशमी वस्त्रों से अलंकृत थी। अनेक प्रकार के रत्न, मोती और स्वर्णालंकारों से उसका शृंगार किया गया था। शिविका के आगे-आगे नगर के शिष्ट नागरिक और प्रतिष्ठित सेठ-साहूकार चल रहे थे और पीछे के भाग में नगर की कुमारिकाओं को आगे करके सब सुहागिनें विविध अलंकारों से अलंकृत चल रही थी। इनकी केश-राशि नाना प्रकार के फूलों से शृंगारित थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वसंतश्री मूर्तिमती होकर उस दिन खम्भात में शोभा विस्तार कर रही थी। अनेक कुमारियाँ हाथ में चाँदी के डण्डे लिये शिविका के पीछे चल रही थीं। अनेक सोने के डंडेवाले चंदन के पंखों से प्रतिमा की सेवा

करतीं, या चँवर डुलाती चल रही थीं। कुछ कुमारिकाएँ और सुहागिनें अपने वीणा-विनिन्दित स्वर से गौरी का स्तवन करती जा रही थीं।

इस प्रकार गौरी की प्रतिमा का यह समारोह समुद्र-तट पर जा पहुँचा। वहाँ एक ऊँचे मंच पर प्रतिमा का डोला रखा गया। समुद्र में सैंकड़ों छोटी-बड़ी तरणियाँ तैर रही थीं। भव्य समारोह से सब नर-नारी देवी-प्रतिमा का दर्शन कर—गाते-बजाते—प्रतिमा को एक सज्जित तरणी में बैठा कर, और स्वयं भी तरणियों में बैठ-बैठकर जल-विहार करने लगे। स्नान-पूजन के बाद समुद्र की सुनहरी रेती में मेला जमा। बालिकाएँ—ठौर-ठौर गरबा गाने, हँसने, खेलने, उछलने लगीं। लोग अपने-अपने साथ लाये पक्वान्नों का भोग लगाने लगे। सारा ही दिन खम्भात-निवासियों ने समुद्रतट-विहार में लगाया—साध्यवेला में देवी की सवारी धूमधाम से पीछे फिरी। कुलागनाएँ गाती-बजाती और युवकगण विविध खेल-क्रीडा करते पीछे लौटे। आकाश में चन्द्रोदय हुआ। नगर-द्वार पर दीपावली और अग्नि-क्रीडा का भव्य दृश्य था। धीरे-धीरे सारा ही जनजमाव नगर-द्वार पर आकर आनन्द-मग्न हो अग्नि-क्रीडा देखने लगा। नर-नारी अपने-अपने यूथ बाँधकर गाने-बजाने और नृत्य करने लगे। ढोल, दमामे, तुरही, नाव, घण्टा का तुमुल नाद होने लगा।

इतने ही में दैत्य के समान काली-काली मूर्तियाँ न जाने कहाँ से घोड़े दौड़ाती और तलवारें घुमाती इन आनन्दमग्न निरीह नर-नारियों पर टूट पड़ीं। पहले एक—फिर अनेक—फिर अनगिनत। देखते-ही-देखते कुहराम मच गया। अभी कुछ क्षण पूर्व जहाँ का वातावरण स्वच्छन्द, आनन्द, कोलाहल से परिपूर्ण था, वह अब भय, वेदना और हाय-हाय की भयानक चीत्कारों से भर गया। हँसते-बोलते, खेलते-कूदते—आबाल-वृद्ध नर-नारी कटने, मरने, चीखने, बिलखाते और प्राण लेकर जहाँ जिसका सींग समाया, भागने लगे। किसी को किसी की सुध न रही। सैंकड़ों अबोध बालक घोड़ों की टापों से कुचल कर चटनी हो गये। अनेक कुल-बालाओं को इन दैत्यों ने जीवित ही पकड़कर अपने घोड़ों से बाँध लिया। कुछ साहसी जनों ने, जो हाथ लगा उसी से सामना किया तो उन्हें तत्क्षण टुकड़े-टुकड़े होकर मृत्यु की शरण लेनी पड़ी। इसी प्रकार वह आनन्दोत्सव मृत्यु, विनाश और रक्तपात में डूब गया।

७५ : मृत्युञ्जय महमूद

अमीर ने अविलम्ब दुर्ग पर धसारा बोल दिया। उसका परम शत्रु भीमदेव और चाहना की बहुमूल्य वस्तु चौलादेवी उस समय इसी दुर्ग में है—यह सूचना उसे मिल चुकी थी और दोनों प्राप्यों को वह प्रत्येक मूल्य पर प्राप्त करने पर तुल गया था। जिस साहसिक प्रवृत्ति ने इस दुर्दान्त योद्धा को अजेय बनाया था, वह प्रवृत्ति आज उसके हृदय की लिप्सा और वासना से मिलकर अपरिसीम बन गई थी। आज तक अपने जीवन में वह हीरे-मोती की भूख तृप्त करता रहा था परन्तु जब से उसने चौला को देखा था—एक दूसरी ही भूख उसके रक्त में जाग उठी थी। आज रक्त के नद में शराबोर हो चुकने पर, महासंग्राम को जय करने पर, वह भूख अपना भोजन प्राप्त करे—यह क्षण आ लगा था। इसके लिए अमीर अपने हजारों प्राणों को भी विसर्जन कर सकता था। इसलिए उसने एक क्षण को भी व्यर्थ न खोकर अपना प्राप्तव्य लेने या प्राण देने का संकल्प कर लिया। दुर्ग का भंग होना असम्भव था। वह चारों ओर से अत्यन्त दृढ़ और अजेय था। परन्तु महमूद भी दुर्जय योद्धा था। उसने अपने योद्धाओं को ललकार कर कहा—"बहादुरो! इन पत्थरों के उस पार गजनी के अमीर की इज्जत, गैरत और जिन्दगी कैद है, जो कोई सबसे पहले फ़सील पर चढ़कर पहला बुर्ज दखल करेगा—उसे गजनी का अमीर अपनी आधी दौलत देगा।"

अमीर का यह वक्तव्य साधारण न था। दुर्दान्त, दुर्जय तुर्क और बलूची योद्धा प्राणों की होड़ लगाकर सीधी फिसलनेवाली चट्टानों पर चढ़ने लगे। परन्तु अमीर इतने ही से सन्तुष्ट न हुआ। वह स्वयं भी अपनी सब गरिमा भूल, चट्टानों

पर साधारण सिपाहियों की भाँति चढने लगा। कहीं रस्सियाँ पत्थरों में फँसाकर, कहीं आदमियों की पीठ का जीना बनाकर, कहीं बन्दर की भाँति खतरनाक उछाल मारकर, असंख्य योद्धा प्राणों का मोह छोड़ दुर्ग पर लड़ने लगे। दुर्ग-द्वार भी भारी दबाव में पड़ा। ढेर-के-ढेर ज्वलनशील पदार्थों को द्वार पर लाकर जला दिया गया। चन्द्रमा के क्षीयमाण प्रकाश में असंख्य टिड्डियों के दल की भाँति शत्रुओं को दुर्ग पर आक्रमण करते देख बालुकाराय बहुत व्यस्त हो गये। चौहान सामन्तसिंह नगर में घिर गये थे और उनकी कोई सूचना नहीं मिली थी। वे जीवित या मृत इसका भी कोई निश्चय नहीं था। बहुत-से सैनिक उसकी सहायता को दुर्ग से बाहर भेज दिये गये थे। दुर्ग में बहुत कम सैनिक थे। उन्हीं को लेकर बालुकाराय दुर्ग-रक्षा की व्यवस्था करने लगे।

परन्तु क्षण-क्षण पर दुर्ग के पतन की आशंका हो रही थी। प्रश्न दुर्ग के पतन का नहीं था—चौलारानी और महाराज भीमदेव की सुरक्षा का था। महता भी दुर्ग से बाहर थे। उनकी भी कोई सूचना नहीं मिल रही थी। अतः सारा भार इस नाजुक मौके पर अकेले बालुकाराय पर ही था। बालुकाराय भी प्राणों के मूल्य पर दुर्ग-रक्षा की आन ठान चुके थे। सच पूछा जाय, तो आज उनके जीवन का यह सबसे भयानक और कठिन संग्राम था।

सारे ही योद्धाओं को पीछे धकेलकर अमीर और फ़तहमुहम्मद सबसे आगे पहुँच गये। दोनों में पहले कौन बुर्ज को आक्रान्त करता है—इसकी होड़ लग गई। ऊपर से तीर बरस रहे थे। और भारी भारी पत्थर लुढ़काये जा रहे थे परन्तु ये दोनों जीवट के पुरुष किसी भी बाधा को न मानकर उन अगम चट्टानों पर ऊपर-ही-ऊपर चढते जा रहे थे। बुर्ज कुछ हाथ दूर रह गया था। अमीर का वज़नी शरीर सिर्फ उँगलियों की पोर पर लटक रहा था और फ़तहमुहम्मद बन्दर की भाँति पंजों के सहारे दीवार से चिपका था। अमीर का दम फूल रहा था। उसने युवक से हाँफते हुए कहा—

"बहादुर, क्या तुम में अब भी दम है?"

"अब देर क्या है आलीजाह।"

"तो तू हिम्मत कर।"

"आलीजाह गुस्ताखी माफ फर्माइये", उसने इतना कहा, और उछलकर अमीर के कंधे पर जा चढ़ा। अमीर लड़खड़ाया, उसकी उँगलियाँ चट्टान से खिसकने लगीं, परन्तु इसी क्षण फतहमुहम्मद चीते की भाँति उछाल मारकर बुर्ज पर जा पहुँचा। बुर्ज पर पहुँचते ही राजपूत—'मारो-मारो, करके उस पर टूट पड़े। पर उसने एक हाथ से तलवार घुमाते हुए कमर में बंधी रस्सी नीचे लटका दी तथा एक गोख में पैर अड़ाकर पीठ के बल गिर गया। गिरे-गिरे ही वह अपने सिर के चारों ओर तलवार घुमाने लगा।

अमीर की उँगलियाँ चट्टान से खिसक चुकी थीं और यह संभव था कि वह फ़तहमुहम्मद के असह्य भार से डगमगा कर अतल तल में गिरकर चूर-चूर हो जाय पर इसी समय रस्सी उसके हाथ आ गई। उसने लपककर रस्सी पकड़ ली और दूसरे ही क्षण अमीर भी बुर्ज पर था।

बुर्ज पर पहुँचकर उसने तलवार हवा में ऊँची करके 'अल्लाहो अक्बर' का नारा बुलन्द किया। उसने कहा—"फतह, तेरी ही फतह रही"—और उसने फुर्ती से रस्सी एक गोख में बाँध दी। देखते-ही-देखते अनेक तुर्क साहसी योद्धा बुर्ज पर चढ़ आये।

राजपूत वहाँ बहुत कम थे। उनमें दस-पाँच तो इसी क्षण कट मरे, बाद में नृसिंह फूँक उन्होंने दुर्ग में चेतावनी दी तो चारों ओर से 'हर हर महादेव' करते बहुत-से राजपूत उधर दौड़ चले।

७६ : कोमल कृपाण

अब सकट-काल समुपस्थित देख बालुकाराय ने सबसे प्रथम महाराज की सुरक्षा का विचार किया। वह महाराज के कक्ष में गये। महाराज की सेवा में चौलादेवी और शोभना थी। दो एक सेवक भी उपस्थित थे। बालुकाराय ने कहा—"महाराज, शत्रु दुर्ग में घुस आये हैं। हमारे पास सेना बहुत कम है। अब आप अविलम्ब यहाँ से प्रस्थान कीजिए।"

परन्तु महाराज भीमदेव असंयत होकर शय्या से उठ गये और अपने शस्त्र मांगने लगे। इससे उनके अनेक घावों के टाँके टूट गये और उनसे खून बहने लगा।

चौलादेवी ने मस्त भाव से उन्हें शय्या पर लिटाकर कहा—"महाराज, मेरी एक विनती है।"

"कहो प्रिये!"

"इसी क्षण दुर्ग मुझे प्रदान कीजिए।"

"तुमको?"

"हाँ महाराज, विचार मत कीजिए।"

"किन्तु बालुक········"

"महाराज, तुरन्त दुर्ग मुझे दीजिए, या मेरा प्राण जायगा।"

"देवी तुम्हें तुरन्त रक्षा-स्थान में जाना चाहिए।"

किन्तु चौला ने तत्काल महाराज भीमदेव की तलवार उठा ली और कहा—"महाराज, इसी तलवार की आपको शपथ है, दुर्ग मुझे दीजिए। मैंने कहा था—

मेरे चरणों में जैसा नृत्य-कौशल है, हाथों में वैसा ही युद्ध-कौशल भी है। महाराज, मेरा वह कौशल देखें।"

"तो फिर जैसी चौला महारानी की इच्छा।"

चौला तुरन्त बालुकाराय की ओर मुड़ी। उसने कहा—"सेनापति, इसी क्षण महाराज को सुरक्षित दुर्ग से बाहर ले जाओ—और आबू की राह लो। दुर्ग में मुझे एक भी योद्धा की आवश्यकता नहीं है—सभी योद्धा महाराज की रक्षा में जायें।"

महाराज ने असमंजस होकर कहा—"यह क्या? भला मैं तुम्हें यहाँ अरक्षित छोड़कर जाऊँगा।"

"अरक्षित नहीं महाराज, गुजरात के धनी की तलवार मेरे हाथ में है, फिर यह खम्भात की दुर्गाधिष्ठात्री की आज्ञा है, इसका तुरन्त पालन होना चाहिए।"

"नहीं, नहीं, रानी, यह असम्भव है, मैं युद्ध करूँगा। बालुक, मेरा घोड़ा लाओ।" महाराज भीमदेव एकबारगी ही उठ खड़े हुए, परन्तु दूसरे ही क्षण कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर गये। उनके घावों से रक्त बहने लगा। वे मूर्च्छित हो गये।

इसी समय एक सैनिक ने आकर सूचना दी—दुर्ग में बहुत शत्रु घुस आये हैं। वे इधर ही चले आ रहे हैं। रह-रहकर 'अल्लाहो अकबर' का नाद निकट आ रहा था। चौला ने व्याकुल होकर कहा—"सेनापति, प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है। गुजरात के स्वामी की रक्षा कीजिए—वह गुप्त राह है।"

"किन्तु आप?"

"मैं अपनी रक्षा में समर्थ हूँ।"

"फिर भी?"

चौला ने एकबारगी ही क्रोधावेशित होकर कहा—"क्या तुम दुर्गाधिष्ठात्री की आज्ञा नहीं सुन रहे सेनापति?"

"सुन रहा हूँ", बालुक ने आँखों में आँसू भरकर कहा।

"तो तुम इन क्षणों का मूल्य नहीं आँक रहे हो। एक क्षण का विलंब भी घातक है। गुजरात को अनाथ करने की जोखिम तुम उठा रहे हो।"

बालुकाराय ने महाराज का मूच्छित शरीर कन्धे पर उठा लिया और भूमि-गर्भ में प्रवेश करते हुए कहा—"आपको मैं भगवान् सोमनाथ की रक्षा में छोड़ रहा हूँ महारानी।" और वह अन्धकार में विलीन हो गया। चौला ने जितने सैनिक वहाँ थे—सभी को भूगर्भ में उतार दिया और भली भाँति भूगर्भ का द्वार बन्द करके छिपा दिया। फिर शोभना से कहा—"सखि, अब हम तुम दो हैं।"

"हम एक हैं महारानी।"

"रानी नहीं—बहिन।"

"महारानी जी, आप आज्ञा दीजिए।"

"तो बहिन, द्वार बन्द कर ले, और एक तलवार हाथ में ले ले जिससे एक मुहूर्त भर किसी भाँति इस भूगर्भ की रक्षा कर सकें। फिर गुजरात का अधिपति सुरक्षित है। इसके बाद हमारा जो हो-सो हो।"

"जो आज्ञा" कहकर शोभना ने द्वार बन्द कर लिये और नंगी तलवार ले द्वार से सट कर बैठ गई।

७७ : शोभना का सत्य

अभी गुप्तगृह में गये महाराज भीमदेव को कुछ क्षण ही व्यतीत हुए थे कि सोलह हाथ ऊँची दीवार फाँद, हाथ में रक्तभरी नंगी तलवार लिये फतहमुहम्मद आँगन में कूद गया। सामने शोभना को देखकर उसने हाथ की तलवार ऊँची कर कहा—"शोभना मैं आ गया।"

हर्ष से वह फूल रहा था। यद्यपि शोभना को प्रतिक्षण उसके आने की सम्भावना थी, परन्तु इस समय इस रूप में उसे वहाँ देखकर उसकी चीख निकल गई। क्षण-भर वह सकते की हालत में खड़ी रही। फिर दूसरे ही क्षण वह सब परिस्थिति भाँप गई। उसने आँखों ही के संकेत से चौला को भीतर जाकर भीतर से कक्ष का द्वार बन्द करने को कहा—और आप हाथ की तलवार वहीं फेंक बाहर आ द्वार से अड़कर खड़ी हो गई। फतहमुहम्मद ने कहा—

"मैं आ गया शोभना।"

"मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।"

"अब प्रतीक्षा की बेला समाप्त हुई, शोभना। अब तो मिलन-क्षण आ गया, अब मुझसे तुम्हें कौन छीन सकता है।"

"परन्तु ग़ज़नी का वह दैत्य।"

"अमीर, अमीर ने मुझे अपना सेनापति बनाया है शोभना, और आज मैं अमीर से सबसे बड़ा इनाम लूँगा।"

"किन्तु वह धर्म, देश और मनुष्यों का शत्रु है।'

"परन्तु हमारा मित्र है। अब विलम्ब न करो, मेरी चीज मेरे हवाले

करो।"

"कैसी चीज ?"

"जिसकी देखभाल का काम मैंने तुम्हें सौंपा था।"

"चौला रानी।"

"हाँ, वह वही है। मैं उसकी झलक देख चुका हूँ।"

"तुम्हें बड़े लोगों के सम्बन्ध में मर्यादा से बात करनी चाहिए।"

"ओह, वह अभी तो मेरी बन्दिनी है। अलबत्ता—जब अमीर की बेगम बन जायगी, तब मर्यादा से बात करूँगा।' वह हँसा और तलवार हवा में ऊँची की।

"देवा, यह तुम अमीर के दास के समान बोल रहे हो।"

"दास क्यों ? मैं अमीर का सबसे बड़ा सिपहसालार हूँ। आज की यह कठिन मुहिम मैंने सर की है। सोमनाथ मैंने सर किया, और अमीर जिसे सबसे बड़ी दौलत समझता है—वह क्या है जानती हो ?"

"क्या ?"

"चौला ! वह दौलत उसकी गोद में डालकर मैं आज आधी दुनिया की बादशाहत अमीर से लूँगा। शोभना, अब तुम अपने को महारानी से कम न समझना।"

"देवा, तुम तो बड़े बड़े सौदे करने लगे।"

"यह तलवार की बदौलत शोभना, और तेरी इन आँखों के जादू की बदौलत, जिनमें मुझे मारने और जिन्दा करने की ताकत है।"

"लेकिन देवा, देखती हूँ, तुमने सबसे बड़ा सौदा भी कर लिया।"

"कैसा ?"

"तुम अपने को भी बेच चुके।"

"तो इससे क्या, उसकी कीमत कितनी मिली—जानती हो ? शोभना, मेरी प्राणों से भी अधिक प्यारी चीज—और एक बादशाहत।"

"परन्तु देवा, एक दिन न शोभना रहेगी, न यह भीख में मिली बादशाहत। केवल तुम्हारे यह काले कारनामे रह जायँगे।"

"क्या कहा—भीख में ?"

"नहीं, गद्दारी, विश्वासघात, देश और धर्म के द्रोह के सिले में मिली बादशाहत।"

"शोभना, यह तुम क्या कह रही हो, जानती हो—यह सब तुम्हारे ही लिए।"

"इसी से तो, मैं शर्म से मरी जाती हूँ।"

"तुम्हारी स्त्री-बुद्धि है न।"

"स्त्री हूँ, तो मर्द की बुद्धि कहाँ से लाऊँ।"

"ख़ैर, अब देर हो रही है, बाहर मेरे सिपाही खड़े हैं, मेरी चीज़ मेरे हवाले करो।"

"कौन चीज़ ?"

"वही चौला देवी।"

"किस लिए ?"

"उसे मैं अमीर नामदार को भेंट करूँगा।"

"अमीर कहाँ है ?"

"पास ही है, इसी किले में।"

"मेरी बात मानो देवा, तुम इतने बड़े बहादुर हो—मेरी खुशी का एक काम कर दो।"

"शोभना की खुशी के लिए तो मैं अपना दाहिना हाथ भी काटकर दे सकता हूँ। कहो क्या चाहती हो ?"

"उस दैत्य अमीर का सिर काटकर मुझे ला दो।"

फतहमुहम्मद चमक कर दो कदम पीछे हट गया। उसने कहा—"है, यह कैसी बात।"

"क्या नहीं कर सकते ? जिसका पेशा लूट, हत्या, धर्मद्रोह, अत्याचार और अन्याय है, जो लाखों मनुष्यों की तबाही का कारण है, जो मृत्युदूत की भाँति सत्रह बार भारत को तलवार और आग की भेंट कर चुका है, वह इस क्षण तुम्हारे हाथ में है, चंगुल में है, जाओ, अभी उसका सिर काट लाओ—शोभना देवी की यही तुम से आरज़ू है।"

"नहीं, नहीं शोभना, यह नहीं हो सकता, मैं दास, अनाथ, अपमानित, बहि-

कृत देवा, उसकी कृपा से आज इस रुतबे को पहुँचा हूँ, भला मैं उसके साथ धोखा कर सकता हूँ।"

'क्या शोभना के लिए भी नहीं।"

"भगवान के लिए भी नहीं, किसी तरह नहीं। चलो—जल्दी करो, अमीर प्रतीक्षा में है। अब देर हो रही है, चौला को मेरे हवाले करो।"

"तुम किस अधिकार से उन्हें मुझसे मांगते हो ?"

"मैंने तुम्हें उनकी निगरानी पर नियत किया था।"

"सो मैंने उनकी निगरानी की है।"

"वह यही हैं।"

"यहीं हैं।"

"और महाराज भीमदेव।"

"वे नहीं हैं।"

"कहाँ हैं ?"

"मैं नहीं जानती।"

"खैर, उन्हें ढूंढ लिया जायगा। चौला कहाँ है ?"

"भीतर इसी महल में।"

"तो द्वार खोलो—उसे मेरे हवाले करो।"

"तो तुम क्या इस बात पर तुल ही गये हो ?"

"शोभना, हमारे जीवन का हेसनेस अब इसी बात पर निर्भर है।"

"पर याद रखना, तुमने शोभना की बात नहीं रखी।"

"अब इसके बाद, मैं शोभना का ही दास हूँ। शोभना की बात रखना ही मेरा काम होगा।"

"वाह, तुमने तो दासता का धन्धा ही खोल दिया है, अमीर के दास बने, फिर शोभना के बनोगे।"

"शोभना का दास बनने के लिए अमीर का दास बना हूँ—यह बात न भूलना शोभना।"

"अच्छी बात है, न भूलूंगी।"

"तो अब द्वार खोलो।"

शोभना कुछ देर सोच में पड़ गई। उसने मर्मभेदिनी दृष्टि से फतहमुहम्मद को देखा—फिर कहा—"ज़रा सोच लो देव।"

"देर न करो शोभना।"

"तो शोर न करो। चुपचाप मेरे पीछे आओ।"

"लेकिन भीतर और कौन है?"

"अकेली देवी हैं।"

"तब चलो।"

शोभना दीवार की छाया में दीवार से सटकर निःशब्द चलने लगी। फतहमुहम्मद उसके पीछे-पीछे उसी भांति चला। महल के पिछवाड़े पहुंचकर एक छोटे से द्वार में घुसकर उसने कहा—"जूता बाहर उतार दो और निःशब्द भीतर आ जाओ।" फतहमुहम्मद ने ऐसा ही किया। द्वार के भीतर उसे करके शोभना ने भीतर से द्वार बन्द कर लिया। अब वह उसे एक अन्धेरी गली में हाथ पकड़ कर ले चली।

फतहमुहम्मद ने फुसफुसाकर कहा—"कहाँ लिये जा रही हो शोभना।" पर शोभना ने अपनी नर्म-गर्म हथेलियां उसके मुंह पर रख दी। वे एक शून्य अलिन्द में पहुंचे। सामने एक बन्द द्वार था। शोभना ने उसकी दरारों को झांककर देखा। फिर फतहमुहम्मद के पास जाकर कहा—ज़रा अपनी तलवार तो दो—उसने उसे सोचने-विचारने का अवसर नहीं दिया—उसके हाथ से तलवार लेकर उसकी नोक द्वार की दरार में घुसाई, द्वार खुल गया। तलवार हाथ ही में लिये वह द्वार में घुस गई और फतहमुहम्मद को पीछे आने का संकेत किया। क्षण भर वह झिझका और फिर लपककर भीतर घुस गया। भीतर अन्धकार था। घुसने के बाद द्वार अपने आप ही बन्द हो गया। द्वार बन्द होने की आहट पाकर उसने पीछे की ओर देखा—एक भीति की भावना उसके मन में व्याप गई उसने पुकारा—"शोभना।"

परन्तु शोभना ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उस घने अन्धकार में दोनों हाथ फैला-फैलाकर 'शोभना शोभना' चिल्लाने और इधर-उधर दौड़ने लगा।

परन्तु शीघ्र ही दीवार से उसका सिर टकरा गया। उसने उलटकर द्वार खोलने की चेष्टा की परन्तु सफलता नहीं मिली। अब क्रोध से अधैर्य और पागल होकर उसने जोर-जोर से चिल्लाकर कहा—"दगा-दगा, तुमने मुझसे दगा की—शोभना!"

एक छोटा-सा मोखा खुला। उसमें से थोड़ा प्रकाश उस कक्ष में आया। शोभना ने मोखे में झाँककर कहा—

"निस्सन्देह देवा, मैंने तुमसे दगा की, क्योंकि मैं औरत हूँ, मेरे पास और उपाय नहीं था।"

"लेकिन शोभना, मैंने तुम्हें प्यार किया था।"

"प्यार तो मैंने भी तुझे किया था देवा।"

"पर तेरा प्यार मेरे जैसा नहीं था।"

"शायद, प्यार कभी किसी ने तराजू पर तोला नहीं। तेरा कैसा प्यार था—यह तू जान, मैं तो अपने प्यार को जानती हूँ।"

"उसी प्यार का यह नतीजा—विश्वासघात।"

"निस्सन्देह, प्यार तूने भी किया—और मैंने भी। पर प्यार होता है अन्धा। वह यह न देख सका कि तू क्रीत-दासी का दास बेटा है और मैं ब्राह्मण की बेटी हूँ।"

"इससे क्या शोभना, हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते थे।"

"पर दास और ब्राह्मण के रक्त में तो अन्तर है न। दास के रक्त ने प्यार को दासता के दाँव पर लगाया। धर्म, ईमान, मनुष्यता सब पर लात मारकर उसने स्वार्थ-लिप्सा ही को देखा। पर ब्राह्मण के रक्त ने मनुष्यता पर प्यार को न्योछावर कर दिया। आज मेरी आँखें खुल गईं। मैंने तुम्हारा असली रूप देख लिया।"

"क्या देखा?"

"कि तुम मनुष्य नहीं, कुत्ते हो। तुम्हारे प्यार का मूल्य एक जूठी रोटी का टुकड़ा है।"

"शोभना"—फ़तहमुहम्मद क्रोध से उन्मत्त होकर चिल्लाया। उसने कहा—

"शोभना, जैसा मेरा प्यार अन्धा है वैसा ही गुस्सा भी है।"

"बहुत कुत्तों का गुस्से में गुर्राना देखा है मैंने।"

अधीर होकर फतहमुहम्मद ने उछलकर गोख को पकड़ लिया। शोभना चुपचाप खड़ी रही। फतहमुहम्मद की खूनी तलवार उसके हाथ में थी। फतहमुहम्मद ने गोख में सिर डाला। वह उसी राह बाहर आने की चेष्टा करने लगा। शोभना चुपचाप देखती रही। ज्योंही उसकी पूरी गर्दन गोख से बाहर हुई शोभना ने एक भरपूर तलवार का हाथ मारा और फतहमुहम्मद की आधी गर्दन कट गई। वह आहत सांड की भांति चीख उठा। उसका धड़ लटक गया। उसी समय शोभना ने होंठों को दांतों में भींचकर दो-तीन हाथ और मारे, सिर कटकर उसके चरणों में आ गिरा। अब वह रक्तभरी तलवार लेकर तेजी से एक ओर को भाग गई।

७८ : शरणापन्न

प्राणों से प्यारे देवा के खून से लथपथ तलवार से गर्म और ताजे खून की बूंदें टपकाती हुई शोभना उन्मत्त की भांति गिरती-पड़ती दालान-अलिन्द पार करती हुई, उस कक्ष में पहुँची जहाँ अकेली चौला तलवार हाथ में लिये भय, आशंका और उद्वेग से भरी, बेचैनी से एक एक क्षण काट रही थी। किले में बाहर जो मार-काट मची थी और शोर मच रहा था, उसकी जो आवाज़ दीवारों से छन-छनकर आ रही थी, वह उसे अधीर बनाये हुए थी। किस क्षण क्या होगा, नहीं कहा जा सकता था। शोभना को इस प्रकार भयानक वेश में आते देख चौला दौड़कर उसके पास आई। शोभना के बाल बिखर रहे थे, होठ सूख रहे थे, और चेहरा सफ़ेद मुर्दे के समान हो रहा था, आँखें भय से फट रही थीं। शोभना तलवार फेंक चौला के पैरों में गिर फफक-फफककर रोने लगी। चौला देवी ने उसे अंक में भर अनेक भाँति सान्त्वना दी। वह यह तो समझ गई कि कोई अघट घटना घटी है, पर हुआ क्या—यह जानने को बारबार उसे प्रबोध करने लगी। शोभना अर्धमूर्च्छित अवस्था में उसकी गोद में पड़ी बड़बड़ाने लगी। चौला ने झारी से शीतल पानी लेकर उसके कण्ठ में डाला, आँखों पर छींटे दिये, फिर कहा—"कह बहिन, हुआ क्या ?"

शोभना ने होठों ही होठों में फुसफुसाकर कहा—

"मैंने उसे मार डाला देवी, उसका सिर काट दिया, उसी की तलवार से।"

"किसका, किसका ?"

पर शोभना ने सुना नहीं। वह मूर्च्छित हो गई। चौला देवी बहुत व्यग्र हो गई। सहायता के लिए किसे पुकारा जाय। कक्ष में एक भी आदमी न था। परन्तु

समय पर साहस का आप ही उदय हो जाता है। चौला देवी ने किसी तरह शोभना को होश दिलाया। होश में आकर शोभना आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखने लगी, फिर रोते-रोते चौला की गोद में गिर गई। धीरे-धीरे उसने अपने हृदय की गुत्थी खोली। देवा का परिचय, उससे प्रेम-भावना और उसका घर से भागना, मुसलमान होना, छिपकर मिलना, सब कुछ बता दिया। अपने मन की आसक्ति भी न छिपाई। उसे उसी ने चौला देवी पर अमीर की ओर से जासूसी करने पर नियत किया था—यह भी कहा। और अन्त में यह भी कह दिया कि किस प्रकार उसे देवी से प्रेम हुआ, और उसी प्रेम और कर्तव्य पर उसने आज निरुपाय हो अपने प्यारे का सिर काट डाला।

सब सुनकर चौला जड़ हो गई। बहुत देर तक वह निस्पन्द शोभना को वक्ष से लगाये बैठी रही। फिर कहा—"सखि, तूने तो वह किया जिसका उदाहरण नहीं। मेरे लिए तूने अपना ही घात कर डाला।"

"आपके लिए नहीं देवी, अपने प्यार के लिए, जो मेरे मन में देवा के लिए था। और अभी भी जो वैसा ही है। उस दासीपुत्र ने उसी का सौदा कर डाला था, उसे मैंने कलंकित होने से बचा लिया। और अब मैं आपकी शरणापन्न हूँ।" उसने अपने को चौला की गोद में डाल दिया। चौला ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया।

७६ : प्राणों का मूल्य

इसी समय महल के फाटक पर आघात होने लगा जैसे द्वार तोड़ा जा रहा हो। शस्त्रों की झकारें और घायलों की चीत्कारें निकट आने लगी। शोभना ने कहा—"देवी, हमें सावधान हो जाना चाहिए, शत्रु शायद महल पर धावा बोल रहे हैं।"

दोनों स्त्रियों ने तलवारें हाथ में ले ली और उठ खड़ी हुई। शोभना ने कहा—"देवी, समय कठिन है, हमें सहायता मिलना सभव नही है। आप भूगर्भ में चली जाएं और जैसे भी सभव हो सुरग पार कर महाराज के दल से मिलकर आबू पहुँच जायँ। महाराज घायल हैं, वे धीरे-धीरे जायँगे, उन्हें पा लेना आपके लिए कठिन नहीं है, आप शीघ्रता कीजिए।"

परन्तु चौला देवी ने शोभना के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। कहा—"नही सखि, हम साथ ही मरेंगी।"

"परन्तु मरना तो हमारा ध्रुव ध्येय नहीं है देवी।"

"पर मरने का क्षण आ गया तो क्या किया जाय।"

"अवशिष्ट कर्तव्य को पूरा करने की राह रहते बच रहना चाहिए।"

"तो तुम भी मेरे साथ चलो।"

"तब तो दोनों ही की निश्चय मृत्यु होगी। या इससे भी भयकर दशा। हम लोग शीघ्र ही पकड़ ली जायेंगी। आप जानती हैं—वह दैत्य आप पर दृष्टि रखता है। यदि आपका शरीर उस पाजी के हाथ पडा तो क्या होगा।"

"मैं प्राण दे दूँगी।"

"और महाराज ? गुजरात ? भगवान सोमनाथ ?"

"अब उसके लिए मैं क्या करूं।"

'बहिन, यह युद्धकाल है, और हमारी स्थिति सिपाही की है। भावुकता को छोड़िए, आप गुप्त राह जाकर महाराज से मिल जाइये और उन्हें अपने प्यार का बल देकर गुजरात की प्रतिष्ठा, धर्म और देवता की रक्षा कीजिए। जिस तरह भी हो—यह दैत्य जीवित जाने न पाय।"

"और तुम ?"

"मैं देवी का अभिनय करके जितनी देर तक सम्भव होगा, दैत्य को अटकाऊँगी। फिर अधिक से अधिक मूल्य पर प्राण दूँगी। तुम तो जानती ही हो सखि, कि इन प्राणों का स्वामी, वही क्रीता दासी का पुत्र है जिसके प्राणों का मूल्य चुका कर मैंने गुजरात के रक्षक की शक्ति, आपकी रक्षा कर ली। अब अपने प्राणों के मूल्य में गुजरात, उसके देवता और धर्म की रक्षा करूँगी। विश्वास करो बहिन, मेरे प्राण सस्ते नहीं हैं। मुझे मुझ पर छोड़ दो, और तुम इन बहुमूल्य क्षणों को नष्ट न करो।"

"तो सखि, मैं गुजरात को जीवन देने चली।"

"जाओ बहिन, भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे। समय हुआ तो फिर मिलेंगे। न मिले तो भी......।"

"सखि, तुम सदैव मेरे हृदय में रहोगी।" चौला ने उसे छाती से लगाया, तलवार हाथ में ली और गर्भगृह में उतर गई।

गर्भगृह का द्वार भली भाँति बन्द करके शोभना ने अपने वस्त्र बदल डाले। देवी चौला के वस्त्र पहिने, आभरणों से अपने को अलंकृत किया। रानी की-सी गरिमा धारण कर वह एक चौकी पर आगे आने वाले क्षण का सामना करने को बैठ गई।

इसी क्षण फाटक टूट गया और अनेक सैनिक कक्ष में घुस आये। शोभना ने कड़ककर कहा—"खबरदार, एक कदम भी भीतर न रखना। केवल तुम्हारा जो सेनापति हो वह भीतर आये।"

एक प्रौढ़ तुर्क सेनानायक आगे बढ़ा। शोभना रानी के समान चौकी पर बैठी

रही। उसने नायक को घूरकर कहा—"मूर्ख, शस्त्र बाहर रख दे और तब सम्मुख आ।"

नायक ने देखा—यह रानी के समान गुण-गरिमावती स्त्री कदाचित् वही रानी है जिसकी अमीर ने माँग की है। वह स्त्री है, निश्शस्त्र है। उसने अपने शस्त्र खोल कर रख दिये और डरता-डरता आगे बढ़कर शोभना के सम्मुख आ खड़ा हुआ। शोभना ने कहा—"अमीर नामदार का तुम्हें क्या हुक्म है?"

"आलीजाह उस नाज़नीन को अपने रूबरू देखना चाहते हैं जो इस महल में रहती है।"

"तो अमीर नामदार को हमारा हुक्म पहुँचा दो कि वह दो घड़ी बाद यहाँ तशरीफ लायें और इस महल पर तुम सिर्फ पचास जवानों के साथ अपना पहरा रखो। तुम्हारे जवान महल से दो तीर के फासले पर रहें और तुम अकेले ड्योढ़ी पर हाजिर रहो।"

"यह हुक्म किसका है?"

"उनका, जिन्हें अमीर नामदार रूबरू देखना चाहते हैं।"

नायक ने सिर झुकाकर शोभना को प्रणाम किया। और—"अभी हुक्म बजा लाता हूँ" कह कर चला गया।

शोभना आसन से उठकर उस सूने आँगन में टहलने लगी। एक भी प्राणी उसका सहायक न था। वह अकेली ही स्त्री ग़ज़नी के अतिरथ विजेता महमूद से जूझने को तैयार खड़ी थी।

८० : अतिरथ का साम्मुख्य

उस दो घडी में शोभना ने गजनी के अप्रतिरथ महारथी के सम्मुख होने की सब सम्भव तैयारियाँ कर लीं। शारीरिक भी और मानसिक भी। कक्ष में चौला-देवी के लिए यथेष्ट राजसी सामग्री प्रस्तुत की गई थी। शोभना ने वस्त्र, अलंकार और शृंगार की पराकाष्ठा कर दी। उसी पराकाष्ठा में उसे अपने प्यारे देव के घात का हाहाकार छिपाना था। उसी से उस अप्रतिरथ विजेता को परास्त करना था। समय और परिस्थिति ने, प्राणोत्सर्ग की कल्पना ने उसमें असीम साहस का सृजन कर दिया था। उसी साहस ने उसके प्रत्येक जीवन-कण में प्रगल्भ सत्ता की पूर्ण कर दिया। जिस प्रकार शत्रु का हनन करने के लिए तलवार पर शान रखकर तीखी धार की जाती है, उसी प्रकार उसने अपना शृंगार उल्वण बनाया। कक्ष को भी सब सम्भव साधनों से सुसज्जित कर आसन के नीचे—वही प्यारे के रक्त से भरा खड्ग छिपाकर वह महारानी की सज्जा में बैठ गई, उस सिंहनी की भाँति जो हिरण की ताक में बैठी हो। इस समय भय, चिन्ता और शोक का उसके मन में लेश भी न था। केवल सत्साहस से उसका प्रत्येक रक्त-बिन्दु परिपूर्ण था।

...र्य को प्यार की शाश्वत भूख रहती है। वास्तव में रस की दृष्टि से देखा
(भा... वीर और शृंगार एक ही स्थान पर मचान खाता है। वह केन्द्र है, 'पौरुष'।
... गई। ...पर्य पौरुष था। वह जिस कुल और वातावरण में जन्मा और बड़ा था,
इसी क्षण प्यार की पीर का कोई महत्त्व ही न था। जहाँ स्त्री-शरीर पुरुष...
...ड़ककर कहा— ...ते है, जहाँ केवल दुराचार ही दुराचार है, वहाँ प्यार की पीड़ा
सेनापति हो यह भीन... ...नी है। परन्तु चौला के प्रति प्रथम दर्शन ही में अमीर मह-
...तक प्रौढ़ तुर्क सेनानी

मूद के मन में प्यार का उदय हुआ था। चौला उसे प्राप्य न थी इससे उस प्यार ने उसके सम्पूर्ण शौर्य को आहत किया था। और जो दुर्दान्त मूर्तिभंजक और दुर्धर्ष विजेता सोलह बार सम्पूर्ण भारत को आग और तलवार की भेंट कर चुका था, इस वार्धक्य मे चौला के प्यार मे तडपता हुआ सोमतीर्थ पहुँचा था। परन्तु उसकी इस माँग में प्यार कितना था, इसका शायद उसे ज्ञान न था। प्यार का रहस्य वह कदाचित् जानता भी न था। अभी तक उसके मन में पशुत्व ही जीवित था, उस पशुत्व को स्त्री शरीर ही की भूख थी। उसे आधीन करके ही चिरकृतार्थ होना वह समझ रहा था, स्त्री मन की तो उसने कभी कल्पना भी न की थी। इसीलिए वह अपनी रक्तरंजित तलवार की धार ही से प्यार की इस राह को साफ करता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा था।

शोभना का सन्देश पाकर उसके प्राण हरे हो गये। अज्ञात ही में उसके मन में प्रेम के सात्विक भावो का उदय हुआ। वह अपने भीतर एक कम्प, एक वैकल्प अनुभव करने लगा, जीवन में पहली ही बार वह समझा कि कुछ ऐसी वस्तु भी ससार में है जिसके सम्मुख उस जैसा दुर्दान्त विजेता भी दीन भिक्षुक बन जाता है।

फिर भी वह प्रसन्न था। उसने तुरन्त आज्ञा दी कि युद्ध मार-काट, लूट तुरन्त बन्द कर दी जाय और चौला की सब आज्ञाएँ पालन की जायें। वह यह कल्पना भी न कर सका कि चौला देवी के स्थान पर शोभना देवी उसके साथ खेल खेल रही है।

नियत समय पर अमीर ने महल के अन्तरग में एकाकी प्रवेश किया। उसने अपने विश्वस्त गुलाम अब्बास को भी ड्योढ़ी पर छोड़ दिया। भीतर प्रागण में सन्नाटा था। एक भी व्यक्ति वहाँ न था। वह सहमता हुआ धीरे धीरे आगे बढा। दालान में पहुँचकर वह खड़ा हो गया। उसने ताली बजाई।

भीतर से जवाब दिया शोभना ने—"यदि आप गजनी के यशस्वी अमीर है, तो आप भीतर आ सकते है। खेद है कि इस समय मेरे पास कोई दास, दासी आपकी अभ्यर्थना के लिए नही है। केवल मैं अकेली हूँ।"

कोमल कण्ठ से अत्यन्त स्निग्ध वाक्य सुनकर अमीर की हृत्तन्त्री बज उठी।

उसने कहा—'आप ही यदि मन्दिर की महारानी हैं जिनका दर्शन मुझे एक बार हो चुका है, तो मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं ग़ज़नी का अमीर खुदा का बन्दा और आपका ग़ुलाम महमूद यहाँ हाज़िर हूँ।"

"लेकिन मैंने सुना था कि ग़ज़नी का यशस्वी अमीर बादशाहों का बादशाह है, तब यह ग़ुलाम महमूद कौन है?"

"वही, जो बादशाहों का बादशाह है, आपका ग़ुलाम है।"

"यह जानकर भी कि मैं एक तुच्छ दासी, देवदासी हूँ।"

"लेकिन महमूद की मलिका हैं।"

"मेरा ख्याल है कि अमीर महमूद तो मलिका के भी ग़ुलाम नहीं हैं।"

"सच है, लेकिन आपका ग़ुलाम हूँ।"

"सच! इसीलिए अमीर नामदार इस खूनी तलवार से राह बनाता यहाँ तक आ पहुँचा है?"

"मुझे अफ़सोस है मलिका, पर अब मैं यह तलवार तुम्हारे कदमों के सदके करता हूँ।"

यह कहकर महमूद ने तलवार कमर से खोलकर शोभना जिस जाली के भीतर बैठी बात कर रही थी, उसके निकट भूमि पर रख दी। शोभना का रानी के समान देदीप्यमान मुख तेज से परिपूर्ण हो उठा। उसने कहा—

"अमीर नामदार को सारी जिन्दगी की बरकत इसी तलवार की धार पर है, अमीर को उचित नहीं कि इस कीमती तलवार को एक अदना औरत के कदमों में रखने की बेवकूफ़ी करे।"

"इसी से, मैं महमूद अमीर, खुदा का बन्दा, वही कहूँगा, जो मुझे कहना चाहिए। मैंने यह तलवार आपके कदमों के सदके की है।"

"किस लिए?"

"इसलिए कि अमीर महमूद खुदा का बन्दा आपको प्यार करता है।"

"लेकिन नामदार अमीर जिसे प्यार करते हैं, वह यदि उन्हें प्यार न करे तो शायद अमीर महमूद, खुदा का बन्दा, उसे इसी तलवार से टुकड़े-टुकड़े करके उसका गोश्त कुत्तों को खिला देगा।"

"नहीं, मैं अमीर महमूद, खुदा का बन्दा, वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। वह, जिसे मैं प्यार करता हूँ, यदि मुझे प्यार न करे तो मैं अमीर खुदा का बन्दा, इसी क्षण इसी तलवार से अपने टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।"

"ओह, प्यार की इतनी कीमत! और वह सब जर-जवाहर जो हुजूर ने अपनी जिन्दगी में खून की नदी बहाकर जमा किये हैं?"

"आज महमूद, खुदा के बन्दे की नजर में वे सब कंकड़-पत्थर के ढेर हैं।"

"बहुत खूब। लेकिन हजरत, यह क्या धमकी नहीं है?"

"धमकी कैसी?"

"कि वह आदमी, जिसे खुदा का बन्दा अमीर प्यार करता है, वह भी उसे प्यार करे, वरना वह अपने को हलाक कर डालेगा। क्या नामदार अमीर यह नहीं जानते कि प्यार न धमकी से, न कीमत से, न माँगने से मिलता है, वह तो अर्पित किया जाता है।"

"किस तरह?"

"जिस तरह हम देवता को फूल अर्पित करते हैं, और जिस तरह यशस्वी अमीर अपना प्यार अर्पण कर रहे हैं।"

"खुदा का शुक्र है, तुमने उसे समझा।"

"समझा भी, और देखा भी, सुना भी। अमीर नामदार इस नाचीज को पाने लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी, बड़ी-से-बड़ी कीमत देने को तैयार हैं।"

"यह सच है मलिका।"

"लेकिन यह खुदा के बन्दे अमीर महमूद के लिए शर्म की बात है।"

"ओह, यह कैसी बात।"

"सुलतान, मैं तो यह सुनती आ रही थी कि खुदा का बन्दा महमूद बादशाहों का बादशाह है, दीनोदुनिया का मालिक है, वह दुनिया को नियामतें बख्शता है। वह दाता है। लेकिन आज मैं अपनी आँखों के सामने उसे एक दीन, हीन, भूखे भिखारी की भाँति पाती हूँ, क्या यह शर्म की बात नहीं है?"

"ओफ, लेकिन नाज़नीन, मैं सिर्फ तुम्हारे दर का भिखारी हूँ।"

"लेकिन मैं देवता की दासी हूँ, मेरा रुतबा दुनिया की औरतों से अलग है। मैं भिखारी को प्यार नहीं दे सकती। मैंने जब अपने देवता को प्यार दिया तो मेरे देवता ने उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। जैसे मेरे जैसी करोड़ों नारियों के प्यारों से वे सम्पन्न थे। मैंने अपना प्यार उन्हें अर्पण किया, मैं धन्य हुई। अब क्या मैं एक भिखारी को प्यार दूँ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

"इतनी ज़ालिम न बनो मलिका।"

"खुदा के बन्दे महमूद को नाउम्मीद होने की ज़रूरत नहीं, तलवार उठा लीजिए और बमदद औरत का सिर धड़ से अलग कर दीजिए। और यदि आप एक ग़रीब औरत को मारकर अपनी यशस्विनी तलवार को कलंकित करना नहीं चाहते, तो जल्लादों को बुलवाइए, वे अपना काम करें। और दुनिया देखे कि खुदा के बन्दे अमीर महमूद के प्यार को ठुकराने की सज़ा क्या है।"

महमूद के मुँह से जवाब नहीं निकला। वह घुटनों के बल झरोखे के सामने भूमि पर बैठ गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर ज़ार-ज़ार रोने लगा। शोभना का हृदय पसीजा। वह आसन छोड़कर खड़ी हुई। उसने कहा—"उठिए, शहनशाह, मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।"

अमीर ने मुँह उठाया, गर्म आँसुओं से उसकी डाढ़ी भीग रही थी। आहत पशु की भाँति उसने झरोखे से उस लावण्य-सुधा को देखकर अस्पष्ट ध्वनि की।

"सुलतान ग़ज़नी को ऐसा कातर नहीं होना चाहिए।"

इस पर महमूद ने लड़खड़ाती भाषा में कहा—"प्यार की इस चोट से मैं अब तक बेख़बर था। आज देखता हूँ, जैसे मैंने अपनी सारी ज़िन्दगी ही बर्बाद की। अब अगर तुम्हारा प्यार निहाल न करेगा तो खुदा का बन्दा महमूद ज़िन्दा नहीं

रह सकता है।"

"लेकिन खुदा के बन्दे ने महमूद ने कभी मेरा प्यार नहीं चाहा, मुझे चाहा। वह भी फतह करके, तलवार और जोरोजुल्म से। अब जितना जोरोजुल्म किया जा सकता था—हो चुका। गुजरात की हरी-भरी भूमि खून से लाल हो चुकी। गुजरात के प्रभु सोमनाथ का दरबार भंग हो गया। न जाने कितने हौसले वाले प्राणों का संहार हुआ। न जाने कितनी कुल-वधुएँ विधवा हुईं। खुदा के बन्दे अमीर महमूद ने जो आग गुजरात के घर, गांव, नगरों में लगाई है, उसे बुझाने को आज गुजरात की लाखों अबलाएँ जार जार आँसू बहा रही हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उन आँसुओं को—उस आग को—बुझाने में कितने दिन लगेंगे। अब हुजूर से इस अभागिनी दासी का यही निवेदन है कि प्यार के सौदे की बात तो रहने दीजिए। आप देखते ही हैं कि मैं अकेली हूँ, मेरे पास दास-दासी कोई नहीं। रक्षक भी कोई नहीं। गुजरात के वीर आपकी तलवार की धार का पानी पी लेते रहे और गुजरात का देवता भी आपने भंग किया। अब गुजरात की एक अबला का रक्षक कौन है? मैं अबला स्त्री हूँ, तुच्छ दासी हूँ। परन्तु खुदा के बन्दे अमीर गजनी की भाँति कातर होना पसन्द नहीं करती। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि प्यार के कारोबार की बात अभी रहने दें। आपने मेरे प्यार को न सही, मुझे तो प्राप्त कर ही लिया। मुझे बन्दिनी कीजिए और फिर जैसी हुजूर की मर्जी हो इस घृष्टा बन्दिनी के साथ व्यवहार कीजिए।"

अमीर ने भर्राए हुए कण्ठ से कहा—"ऐ नाजनीन, तूने महमूद की तरह प्यार का घाव नहीं खाया, इसीसे ऐसा कहती है। लेकिन मैं, खुदा का बन्दा महमूद, वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। मैं हुक्म देता हूँ कि इस नाजनीन के साथ एक मलिका की भाँति सलूक किया जाय और वह समझ ले कि गजनी का सुलतान उसके प्रत्येक हुक्म को बजा लाने के लिए उसकी रकाब के साथ है।"

अमीर लौटा पर तुरन्त ही घूमकर उसने कहा—"एक औरत आपकी खिदमत में थी......"

"जी, थी। लेकिन आपके पधारने से पहले आपका एक तरुण सेनापति उसे लेकर कहीं चला गया।"

"कहीं चला गया!" अमीर की त्योरियों में बल पड़ गये। उसने आप ही-आप भुनभुनाकर कहा—फतहमुहम्मद कहाँ गया? फिर अब्बास से कहा कि वह पाँच सौ सवारों के दस्ते के साथ मलिका के हमराह रहे और जल्द कुछ हिन्दू-लौंडियों का इंतजाम कर दे और मलिका का हर हुक्म तुरन्त बजा लाया जाय।

अमीर महमद चला गया। उसकी तलवार वहीं पड़ी रही।

८१ : प्रियतम के पास

शोभना ने दुर्दान्त महमूद को परास्त कर दिया था और अब वह सकरुण भाव से उसकी आहत वेदना की चिन्तना में मग्न थी। इसी समय ख्वाजा अब्बास ने आकर ज़मीन चूमकर उसे प्रणाम किया और हाथ बाँधकर अर्ज की—"हुजूर का गुलाम अब्बास खिदमत में हाजिर है, लौंडियाँ जल्द हाजिर हो रही हैं और जो हुक्म हो बजा लाया जाय।"

शोभना एकाएक ध्यान से चमक पड़ी। सावधान होकर उसने कहा—"किसी लौंडी की मुझे जरूरत नहीं है, तुम खुद ड्योढ़ी पर हाजिर रहो और जब तक मैं न बुलाऊँ—मेरे आराम में खलल न दो। मैं बहुत थक गई हूँ और अब आराम करना चाहती हूँ।"

अब्बास हाथ बाँधे पीछे हट गया। शोभना ने महल के दालान को भीतर से बन्द कर लिया और वह अब पागल की भाँति दालानों और अलिन्दों को पार करती हुई सीधी वहाँ पहुँची जहाँ अभागे फतहमुहम्मद की लाश पड़ी हुई थी। वह दौड़कर लाश से लिपट गई। आर्तनाद करते हुए वह विलाप करने लगी—"हे प्राणनाथ ! प्रियतम ! अब मैं तुम्हारे पास आई हूँ। बोलो, बोलो, अपनी शोभना से तुम क्या कहते हो, उसे तुम्हारी क्या आज्ञा है। अरे, मैंने तुम्हारी कितनी प्रतीक्षा की है, कितनी रातें जागते बिताई हैं, तड़पती रही हूँ तुम्हारी याद में। अब, अरे निष्ठुर, तुम मिले तो बोलते भी नहीं। वे सब प्यार की बातें एक बार फिर कहो—जो तुमने बहुत बार कही हैं। वे सब वादे पूरे करो। हाय, कितने सुन्दर थे तुम। यह क्या हो गया। किसने तुम्हारी यह गत

कर दी। कौन मेरी सौन—मेरी जन्म-वैरिन निकल आई। किसने तुम्हारा मुंह मेरी ओर से फेर दिया। अरे, मैं तुम्हारी शोभना हूँ। शोभना तुम्हारी शोभना। अरे देवा, तुम तो कभी भी ऐसे निष्ठुर नहीं थे। कितने भी रूठे रहते थे, पर मुझे देखते ही हँस पड़ते थे, आज क्या हो गया तुम्हें। हँसते क्यों नहीं? इतने क्यों रूठे हो? बोलो, बोलो, अजी बोलो। हाय-हाय बोलो देवा, मैं पुकार रही हूँ, तुम्हारी शोभना। ओ प्रियतम!!!

शोभना मूर्च्छित हो गई। मूर्च्छित होकर लाश से लिपटी पड़ी रही। बहुत देर बाद उसे होश हुआ। उसने आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखा। लाश को उठा कर वह दालान में ले गई। वहाँ फतहमुहम्मद का कटा सिर पड़ा था। उसे उठा-कर उसने घूर-घूर कर देखना शुरू किया। फिर एक उन्माद का आवेश उसे हुआ—बड़बड़ाते हुए उसने जैसे फुसफुसाकर कहा—"वही हो, वही हो, वही आँखें हैं, पर नजर वह नहीं। वही होंठ हैं—पर रंग वह नहीं, वही तुम हो पर—पर उसने ज़ोर से सिर को छाती से लगाया। फिर सिर को धड़ से जोड़कर उसे घूर-घूर कर देखने लगी।

सूर्य पश्चिम से नीचे को झुक रहा था। धूप पीली पड़ रही थी। वह उठी, सिर को झरने पर ले जाकर धोया। सूखा खून आँचल से पोंछा। फिर उसे लाकर धड़ पर जमा कर रख दिया। वह बड़ी देर तक उसे देखती रही। अब उसके आँसू सूख गये थे। कुछ विचार उसके मस्तिष्क में आये। उसने सोचा—अब इस जीवन से क्या काम। क्यों न अभी इस जीवन को समाप्त कर दूं पर तुरन्त ही उसने सोचा—यह तो ठीक नहीं। महल में खोज होगी, यहाँ हम दोनों की लोथें मिलेंगी। भेद खुल जायगा और चौला देवी की तलाश होगी। सम्भवतः वह पकड़ ली जाय, फिर तो मेरी सारी ही साधना व्यर्थ होगी। नहीं, नहीं, इस लाश को छिपाना होगा और अन्ततः मुझे वही अभिनय करना होगा। उसने इधर-उधर देखा। वह उठकर झाड़ी के पास गई। वहाँ की मिट्टी कुछ गीली थी। तलवार की नोक से उसने बहुत-सी मिट्टी खोद ली। खोदकर गढ़ा किया। फिर उसने अपनी बहुमूल्य साड़ी उतारकर लाश से लपेट दी। लाश को उठाकर उसने कन्धे पर रखा और लाकर गढ़े में उतार दिया। दोनों नन्हीं मुट्ठियों में मिट्टी लेकर कहा—मेरे प्रिय-

तम ! तुमने अपना काम किया और मैंने अपना। तुमने धर्म-ईमान के प्यार के नाम पर सौदा किया, और मैंने प्यार का धर्म और ईमान के नाम पर। अन्तत तुमने अपनी राह पकडी और मैंने अपनी। मिलन हुआ और उसी क्षण विदाई भी हो गई। मिलन के ही क्षणिक क्षण में हो गई मेरी विदाई। अच्छा प्रियतम ! विदा, फिर विदा। खूब मिले और खूब चले। वाह ! उसने अपनी दोनो मुट्ठियों की मिट्टी धीरे-धीरे गढे में डाली। इसी समय दो आँसू ढरक गये। पर उसने अधिक आँसू न बहने दिये। जल्दी-जल्दी उसने गढा भर दिया। यह तलवार भी उसने लाश के साथ ही दफ़ना दी। फिर उसने रक्त के सब दाग़ पोंछ डाले और सावधानी से चारो ओर देखती हुई, वह उसी कक्ष में लौट आई। भूख, प्यास, थकान, नीद, दु ख, दर्द और पीडा से वह अर्ध-मूर्च्छित-सी भूमि पर पड रही।

८२ : पाटन की ओर

फतहमुहम्मद का अपनी प्रेयसी को लेकर इस प्रकार एकाएक गायब हो जाना अमीर महमूद की समझ ही में न आया। शोभना के कौशल की उसने कल्पना भी न की थी। अमीर फतहमुहम्मद पर बहुत खुश था। उसी की सहायता से उसे यह महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई थी। अब, इस समय जब कि उसे बड़े-से-बड़े इनाम की आशा थी, वह क्यों और कैसे वहाँ से गायब हो गया। बहुत-सी कल्पनाएँ अमीर ने की, गोइन्दे छोड़े, परन्तु फतहमुहम्मद का सुराग न लगना था, न लगा।

अब व्यर्थ खम्भात में समय नष्ट न कर उसने सब लश्कर लेकर पाटन की ओर कूच किया। उसे लूटे हुए उस अटूट धन की बहुत चिंता थी, जिसे वह सेनापति मसऊद और अपने उस्ताद अलबेरूनी की देख-रेख में पाटन भेज चुका था। वह अपनी मूल सेना से भी देर तक पृथक् रहना नहीं चाहता था। वहाँ यद्यपि उसे विजय मिली थी और उसकी समझ से उसकी प्राणों से प्रिय चौला देवी भी उसके हाथ आई थी, परन्तु उसने पहली बार ही अपनी सत्रह विजय-यात्राओं में निरीह नागरिकों का जमकर मुकाबिला करने का सत्साहस देखा था। इससे वह भयभीत हो रहा था। उसकी प्रधान मुहिम फतह हो चुकी थी। उसके प्रत्येक सिपाही की जीनों में सोना-चाँदी, और जर-जवाहरात भर चुके थे। अब किसी का मन लड़ने में नहीं, बल्कि अपने घर लौटकर मौज-मजा करने में था। अपने बर्बर सिपाहियों की मनोवृत्ति वह खूब समझता था, तथा इन भेड़ियों को पालने का ढंग भी वह जानता था। इससे उसने लौटने में देर करना ठीक नहीं समझा।

शोभना ने जिस शान और शालीनता से महमूद से वार्तालाप की थी, उससे उसने उसकी हृतन्त्री के तारों को झंकृत कर दिया था। जीवन में पहली ही बार उसने समझा कि किसी औरत पर काबू पाना और चीज है, पर उसका प्यार पाना बिल्कुल जुदा चीज है। महमूद पढ़ा-लिखा अधिक न था पर कवित्व के मर्म को जानता था। भावुकता उसमें थी। जीवन में पहली बार उसने एक औरत के सामने आत्मार्पण करने के स्वाद का अनुभव किया था। उसका मन प्यार की पीड़ा से कोमल और भावुक हो रहा था। इस समय फतहमुहम्मद को निकट पाने के लिए वह बेचैन हो उठा था। वही उसका इस समय सबसे बड़ा समर्थ सलाहकार और सेनानायक था। दूसरा समय होता तो वह उसके इस प्रकार ग़ायब होने पर अनेक सन्देह करता, परन्तु इस समय वह अधिक सोच-विचार नहीं कर सकता था।

उसने ख्वाजा अब्बास अहमद को बुलाकर अपनी चहेती मलिका की सवारी के सम्बन्ध में सब आवश्यक आदेश दिये, और कैदियों के काफ़िले को आगे कर कूच बोल दिया। लश्कर में सबसे आगे बाजा-गाजा, धौंसा और निशान का हाथी था। उसके पीछे ऊँटनियों पर तुर्क तीरदाज थे। इसके पीछे अब्बास अपने पाँच सौ सवारों के बीच शोभना रानी को ले जा रहा था। शोभना की सवारी एक दिग्गज हाथी पर थी जिस पर सुनहरी अम्बारी कसी थी।

शोभना की सवारी के पीछे हाथियों पर खज़ाना था और उसके पीछे अमीर अपने बलूची सवारों से घिरा ऊँचे काले घोड़े पर सवार होकर चल रहा था। सबसे पीछे रसद, डेरे-तम्बू, राशन और बावर्ची, तोशाखाना, साईस आदि थे। अमीर का यह लश्कर मीलों लम्बा था और राह में जो खेत, गाँव, बस्ती आती थी, सब उजड़ जाती थी। गाँव के निवासी गाँव छोड़-छोड़कर भाग जाते थे। बहुधा बर्बर सैनिक अकारण ही जिसे पाते मार डालते, लूट लेते, आग लगा देते। कहीं किसी की कोई सुनवाई नहीं थी।

८३ : सामन्त चौहान

पाठकों को ज्ञात है कि सामन्त चौहान को अन्तिम समय में खम्भात का नगर सौंपा गया था और गनगौर के मेले पर जब आक्रमण हुआ तो वह अपनी सेना की एक टुकड़ी लेकर वहाँ लड़ने गया। उसके साथ बहुत कम सिपाही थे तथा मेले में अनगिनत स्त्री, बच्चे और निरीह नागरिक एकत्र थे। अमीर के बर्बर पशु भेड़ियों की भाँति उन पर टूट पड़े थे। यह कोई युद्ध न था, निर्दय हत्याकाण्ड था। इस समय सामन्त ने वेग से शत्रुओं पर धावा बोल दिया। उसने बड़ा कठिन युद्ध किया और उसका फल यह हुआ कि वह घावों से जर्जर होकर भूमि पर गिर गया। उसके ऊपर भी शत्रुओं एवं मित्रों की लोथें पड़ गईं। सामन्त की किसी ने सुध नहीं ली। वह वहीं अर्धमृत अवस्था में लोथों के नीचे दबा पड़ा रहा। रात्रि आई और गई। दिन निकला तब सामन्त को होश आया परन्तु उसमें उठने की सामर्थ्य नहीं थी। उसने किसी प्रकार अपने ऊपर पड़े हुए मुर्दों को हटाया और सिर ऊँचा किया। प्यास से उसका कण्ठ सूख रहा था पर जल वहाँ कहाँ था। थोड़ी ही देर में वह फिर मूर्च्छित हो गया। बहुत देर वह मूर्च्छित पड़ा रहा। और इस बार जब उसकी मूर्च्छा जागी तो दो पहर दिन चढ़ चुका था। किले में मार-काट का शोर मच रहा था। स्पष्ट था कि शत्रु ने किला दखल कर लिया है। वह नहीं जानता था कि घायल महाराज, चौलादेवी और शोभना का क्या परिणाम हुआ। चौलादेवी और महाराज भीमदेव के लिए उसके प्राण छटपटा उठे पर बहुत चेष्टा करने पर भी वह उठकर खड़ा न हो सका। सिर पर प्रखर सूर्य तप रहा था। चारों ओर लाशें सड़ रही थीं। चील और गृद्ध मण्डरा रहे थे।

एक भी जीवित प्राणी न था। भूख और प्यास से उसके प्राण कण्ठगत ही रहे थे और सिर दर्द से फटा जा रहा था। घावों का रक्त अंग पर सूख गया था। घाव गन्दे होकर कसक रहे थे। उसने पूरा जोर लगाकर अपना कन्धा उकसाया। उसने दूर एक स्त्री को लोथों के बीच फिरती पाया। कई बार पुकारने की चेष्टा करने पर उसके कण्ठ से आवाज निकली। स्त्री ने सुनकर मुँह उठाकर उधर देखा। वह आई। एक वृद्धा स्त्री थी, रोते-रोते आँखें सूज गई थीं। उसने सहारा देकर सामन्त को उठाकर खड़ा किया। सामन्त ने कहा—

"माँ, किसे ढूँढ रही हो?"

"मेरा बेटा, तेरे ही जैसा था वीर।"

"तो माँ, मुझे एक घूँट पानी कहीं से पिला दे, तो मैं भी तेरे पुत्र को ढूँढने में मदद करूँ।"

वृद्धा का छोटा-सा फूँस का घर पास ही था। वह ब्राह्मणी थी उसका पुत्र महालय का पुजारी था। गनगौर का मेला देखने गया था। घर लाकर वृद्धा ने सामन्त को पानी पिलाया। फिर थोड़ा दूध भी दिया। उसके अंग साफ़ किये। घावों पर पट्टी बाँधी।

इससे आश्वस्त होकर सामन्त ने कहा—"माँ, चलो तुम्हारे लाल को ढूँढें, एकाध लाठी या बाँस का टुकड़ा हो तो मुझे दे दो।"

"नहीं बेटा, तू बहुत कमजोर है, यहीं आराम कर—मैं जाती हूँ।"

"नहीं माँ, मैं साथ चलता हूँ, आज न जाने कितनी माँ बिना पुत्र की हुईं, तेरा पुत्र मिल जाय तो मेरा जीना भी फिर सार्थक हो।"

दोनों ने फिर लोथों को उलटना-पलटना प्रारम्भ किया। इस काम में सन्ध्या हो गई परन्तु ब्राह्मणी का बेटा न मिलना था, न मिला। वृद्धा ने ठण्डी साँस भरकर कहा—"ब्राह्मणी हूँ, बेटा, ब्राह्मण का धन सन्तोष है। अब संतोष ही करूँगी। चल घर चलें।"

सामन्त थकावट से चूर-चूर हो रहा था। अब और घूमना शक्य न था। वह बूढ़ी ब्राह्मणी की लाठी का सहारा ले फिर उसकी कुटिया में लौट आया। बूढ़ी ने कहा—"तू तनिक लेट पुत्र, देखूँ—गाय हाथ लग जाय तो दूध दुह कर लाऊँ।"

वह व्यस्त भाव से बाहर की ओर चली। सामन्त बेदम होकर भूमि में पड़ रहा। उसे गहरी नींद ने धर दबाया।

जब वृद्धा ने उसे जगाकर लोटा भर दूध दिया तो उसे पीने से उसे बहुत बल मिला। उसने कहा—"माँ, आपने जीवन-दान दिया। क्षत्रिय का बालक हूँ, पर तेरा ही पुत्र हूँ। मेरा नाम सामन्त है। समय पर मैं फिर मिलूँगा। अभी मैं चला।"

पर ब्राह्मणी ने उसे बहुत बाधा दी। इस रात्रि में जाने देना स्वीकार नहीं किया। परन्तु सामन्त ने कहा—"माँ, रुक नहीं सकता, एक बार किले में अवश्य जाऊँगा।"

और वह लड़खड़ाते कदम रखता वहाँ से चला। दुर्ग निकट आने लगा। वहाँ किसी आदमी का कुछ चिह्न भी न था। पद पद पर वह हाँफ रहा था, पर रुक नहीं सकता था। फाटक दुर्ग का टूटा हुआ था। वह किसी तरह पार करके भीतर पहुँचा। चारों ओर उसने देखा। किसी जीवित व्यक्ति का वहाँ कोई चिह्न न मिला। वह जितनी जल्दी सम्भव हो सकता था, पैरों को घसीटता हुआ महल की पौर पर बढ़ा। पौर का दर्वाजा भी टूटा पड़ा था। उसे देखते ही उसका मन भय और आतंक से काँप गया। हे भगवान्! महाराज भीमदेव और चौलादेवी क्या उस दैत्य के भोग हो चुके? वह आर्त्तनाद-सा करता हुआ एक कक्ष से दूसरे कक्ष में अँधेरे में अन्धे की भाँति हाथ फैलाये—देवी, देवी—महाराज, महाराज—चिल्लाता हुआ उन्मत्त होकर दौड़ने लगा। उसे एक ठोकर लगी और वह दीवार से टकराकर गिरकर मूर्च्छित हो गया।

रात भर वह उस शून्य दुर्ग में मूर्च्छित पड़ा रहा। जब मूर्च्छा भंग हुई, तब प्रभात का आलोक गवाक्ष में झाँक रहा था। वह फिर अधीर होकर उठा। एक-एक कक्ष-गवाक्ष उसने देखे। आवास लूटा नहीं गया था। चौला देवी के बहुत-से वस्त्र, सामग्री वहीं थे। वह सबको उलट-पलटकर देखने और हाहाकार करने लगा। अब उसे इस बात का तनिक भी सन्देह न रहा कि महाराज भीमदेव और चौला देवी उस दैत्य के भोग हुए।

परन्तु इसी समय उसकी दृष्टि दीवार पर कोयले से लिखे एक लेख पर पड़ी।

लेख शोभना का लिखा था। जल्दी-जल्दी उसने लिखा था—महाराज सुरक्षित भाबू की राह पर हैं। बालुका साथ है। देवी एकाकी भूमार्ग से गई हैं। उनका अनुगमन और रक्षा होनी चाहिए।

शोभना।

सामन्त की बाछें खिल गईं। जैसे जन्म-दरिद्री को निधि मिल गई हो। उसने इस बात पर विचार भी नहीं किया कि इस लेख को लिखने वाली शोभना कहाँ रही, उसकी क्या दशा बनी होगी। वह तेजी से भूगर्भ मार्ग की ओर जाकर उसमें घुस गया। उस मार्ग से वह परिचित था। दुर्ग में आते ही उसे मार्ग का पता लग गया था, वह दूरदर्शिता के विचार से उसमें दूर तक हो आया था। अब वह भूख, प्यास, थकान सब भूलकर इस अन्धकारपूर्ण मार्ग पर भरसक दौड़ लगाने लगा। वह बहुत बार ठोकर लगने से गिरा। बहुत बार उठकर भागा। बहुत बार सिर दीवार से टकराया पर जैसे उसे इन सब बातों की सुध ही न थी। वह भागा जा रहा था। अन्त में उस अन्ध गुफा का अन्त हुआ। प्रकाश-कण आया और जब वह नदी-तीर के एक पार्वत्य प्रदेश में बाहर निकला, तो सूर्य मध्याकाश में प्रखर तेज बखेर रहा था। उसने दौड़कर कलकल बहती नदी के निर्मल जल पर अपने प्यासे होठ लगा दिये।

८४ : कैदियों का काफला

खम्भात, प्रभास और सौराष्ट्र से एक लाख बीस हजार कैदियों के काफले को साथ लेकर महमूद पाटन की ओर लौटा था। इस काफले में सबसे आगे साहसिक और ऐसे कैदी थे जिन्होंने जमकर अमीर की सेना का मुकाबला किया था या वे जो कोई खास विरोध करते हुए पकड़े गये थे, या जिन्होंने अमीर के बहुत से आदमियों को मार डाला था और उनके विरुद्ध खास रिपोर्ट दर्ज थी। इन सबकी कमर में एक लम्बी रस्सी बँधी हुई थी, और उस रस्सी से ये जुड़े हुए थे। इनके पीछे हाथ बँधे साधारण सिपाही, नागरिक, धुने, जुलाहे, ऐरे-गैरे सब बेमेल कैदी थे, जो बहुत-से हथियारबन्द सिपाहियों से घिरे चल रहे थे। इनके पीछे रोगी, घायल और स्त्री कैदी थे जो बाँधे हुए तो न थे पर हथियारबन्द पैदल और घुड़सवार सिपाहियों से घिरे चल रहे थे।

सबके पीछे बड़े-बड़े प्रसिद्ध सेनापति, सरदार, धनी, सेठ, साहूकार और गिरासदार व्यक्ति थे। ऐसे दो-दो या तीन-तीन कैदी एक-एक सवार के सुपुर्द थे। वे उनकी कमर में रस्सी बाँध, उसको मजबूती से घोड़े की काठी में अटका, नंगी तलवार उनके सिर पर घुमाते हुए बढ़े चले जा रहे थे।

मीलों तक लम्बाई में इन अभागे कैदियों की कतार बनी हुई थी। उनमें बहुत से जार-जार रोते, आँसू बहाते, छाती कूटते, गिरते-पड़ते साथियों के साथ घिसटते बढ़े चले जा रहे थे। रोगी और घायलों की दशा और भी खराब थी। उनमें बहुत से चलने-फिरने के योग्य भी न थे पर फिर भी उन्हें सवारों के साथ घिसटना पड़ता था। उनके घावों को मरहम-पट्टी भी नहीं की गई थी। बहुतों के घाव सड़ गये

थे। बहुतो के घावो से लहू बह रहा था। परन्तु वहाँ कोई किसी का मिजाजपुर्सा न था।

स्त्रियो की दशा और भी दर्दनाक थी। इनमें अनेक गर्भिणी, आसन्नप्रसवा एव प्रसूता थीं। बहुत सी स्त्रियो की गोद में बच्चो का बोझ था, जो भूख, प्यास और गर्द-गुबार से व्याकुल होकर रो-पीट रहे थे। उनकी अभागिनी माताएँ भी रोकर उनका साथ दे रही थी। बहुत-सी कुलवधूएँ, नववधूएँ और कुमारिकाएँ ऐसी थी, जिन्होने घर की दहलीज़ से बाहर कभी पैर भी न रक्खा था—पर-पुरुष को कभी सूरत भी न देखी थी। परन्तु दैव-दुर्विपाक से उन्हे इन दुर्दान्त निर्दय डाकुओ के साथ चलना पड रहा था। उनके पैर लोहूलुहान हो गये थे और चलने की शक्ति न रही थी, परन्तु बिना चले कोई चारा न था।

कोई घायल, रोगी या स्त्री कैदी यदि चलते-चलते गिर जाता, तो उसके लिए रुकने की किसी को आवश्यकता न थी। लाखो मनुष्य और घोडे उन्हे कुचलते-रौंदते उनके ऊपर से गुज़र जाते थे और मृत्यु वहीं उन्हे उस वेदना से छुटकारा दे देती थी।

जो कोई चलने में ढील करता, अटकता, उस पर ऊपर से चाबुक बरसते थे। जो भागने की चेष्टा करता उसका तुरन्त सिर काट लिया जाता था।

आसमान धूल से भर गया था। आगे वाले कैदियो की धूल पीछे वालो के सिर पर पडती थी।

दस मील चलने के बाद लश्कर का पडाव पडता। तब इन अभागे कैदियों को भी भोजन तथा विश्राम मिलता। विश्राम को न बिस्तरा, न बिछौना, न छाया। चारो ही सुविधा के स्थान सिपाही घेर लेते—इन भाग्यहीनो को खुले धूप या खुले आकाश के नीचे नगी ज़मीन पर कंकड पत्थरो पर पड रहना पडता था।

भोजन की दशा बहुत खराब थी। बहुत कम लोगो को भोजन मिलता था, जो मिलता वह भी कदन्न। बहुत से बिना ही भोजन के रह जाते। जो भोजन मिलता वह अति निकृष्ट होता था। यदि पास-पडौस में कोई गाँव होता तो इन कैदियों को रस्सियो से बाँधकर वहाँ सिपाही ले जाते—जहाँ वे गाँव वालो से भीख माँगते। गाँववाले तो इस दल बल से डरकर बहुधा भाग जाते थे। कुछ दृढ श्रद्धालु

सिपाहियों का भय त्यागकर, अपने आँसुओं से अभिषिक्त अन्न जैसे बनता—इन्हें दे देते थे। कोई-कोई फटा-पुराना वस्त्र देकर अबलाओं की लाज ढकते थे।

बहुत कैदी राह में मर जाते। बहुत-सी माताओं की गोद के बालक सिसकते, प्राण त्यागते रह जाते। उन्हें उसी हालत में छोड़कर आगे चल देना पड़ता। चलते-चलते अनेक स्त्रियों को प्रसव-वेदना उठती, प्रसव हो जाता, पर उनके लिए कोई रुकता न था। या तो उन हतभागिनियों को वहीं असहाय छोड़ सब चल देते, या वह रस्सियों से बँधी, हाय-हाय कर घिसटती हुई गिर पड़तीं, और फिर घोड़ों, हाथियों, पदातिकों से रूँधा जाकर वहीं ढेर हो जाती थीं।

भोजन के बाँटने के समय और भी हृदयद्रावक दृश्य होता। विपत्ति और प्राणों के भार ने उन सबको मनुष्य से भेड़िया बना दिया था। भोजन बँटने के समय वे हंटरों और डंडों की मार की तनिक भी परवा नहीं कर एक-बारगी ही टूट पड़ते। सब में खूब गाली-गलौज और धक्का-मुक्की होती। वे आपस में एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये थे।

पड़ाव पर पहुँचते ही सब कोई अच्छी जगह पर आराम करने का कब्जा करने के लिए झपटते—इस समय भी उनमें लड़ाई होती। इससे भी अधिक दर्दनाक दृश्य तब होता जब कि वे रोटियों और मुट्ठी-भर चावलों पर—जो उन्हें खाने को मिलता था—जुए का दाव लगाते। जो जीतते वे झपटकर साथी का हिस्सा छीन पशु की भाँति बेसब्री से खा जाते और उनका साथी भूखा-प्यासा टुकुर-टुकुर उनकी ओर देखता रह जाता।

घोर, हाहाकार, क्रन्दन और अव्यवस्था का अन्त न था। राह में और पड़ाव में भी बहुत कैदी मर जाते थे। उन्हें यों ही छोड़ शेष कैदियों को संग लेकर सिपाही चल देते थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे मानवता पृथ्वी से उठ गई और सारा संसार नरक की आग में जल रहा है।

विशिष्ट कैदियों को सबसे पृथक ठहराया जाता था। पड़ाव पर पहुँचते ही उनका यह काम होता कि स्थान को झाड़-बुहारकर साफ़ करें। फिर उन्हें आगे रवाना कर दिया जाता था। वे बहुधा अपना भोजन रोगियों, स्त्रियों और घायलों को दे देते थे तथा स्वयं अनाहार रह जाते थे। स्त्रियों पर अत्याचार रोकने में वे

कभी-कभी जान पर खेलकर सिपाहियों से लड पडते थे परन्तु सिपाहियों को दया छू तक नही गई थी। मनुष्य के जीवन का उनके लिए कोई मूल्य न था। वे कठोरता और क्रूरता की साक्षात् मूर्ति थे।

इस प्रकार ग्यारह दिन कूच करने के बाद जो कैदी जीवित पाटन पहुँचे उनकी दशा मुनको से भी बदतर थी। जिस घर को बाँसो और बल्लियों से घेरकर जेल बनाया गया था वह यद्यपि बहुत बडा था परन्तु इतने कैदियो के रहने के योग्य न था। कमरे अन्धेरे, सील और गन्दगी से भरे थे। मुद्दत से उनकी सफ़ाई नही हुई थी। जहाँ तक दृष्टि काम करती थी, वहाँ तक आदमी ही आदमी दीख पडते थे। कैदियो के पास ओढने-बिछाने का कोई वस्त्र न था। वे वैसी ही नगी और गीली भूमि पर रोग, भूख और थकान से अधमरे-से होकर आ पडे थे। प्रत्येक अपनी मृत्यु चाह रहा था। हाहाकार, कराहना और रोने की आवाजो के मारे कानो के पर्दे फटे जाते थे। स्त्री-पुरुषो की वहाँ कोई मर्यादा न थी। वे सब नगी जमीन पर ऐसे पडे थे जैसे किसी ने मनुष्यो का फर्श बिछा दिया हो। पैर तो क्या, तिल धरने की कही जगह न थी। यदि कोई टट्टी-पिशाब को जाना चाहता तो उसे मनुष्यो की छाती या पीठ पर पाँव रखकर जाना होता था। ऐसा करने पर प्रतिरोध करने की किसी में ताब न रह गई थी। इस प्रकार पैरो से कुचले जाने पर वे केवल तिलमिलाकर कराह उठते थे।

लाखों मनुष्यो के मलमूत्र-त्याग के लिए कोई व्यवस्था ही न थी। जहाँ जिसे सुविधा होती—बैठ जाता। लज्जा और सभ्यता का कोई प्रश्न ही न था। रोगी और अपाहिज जो अपने स्थान से हिल भी न सकते थे, वही पडे-पडे मलमूत्र त्यागकर गन्दगी बढा रहे थे जिससे भयानक असह्य दुर्गन्ध और मृत्यु से भी अधिक दुखदायी हाहाकार की ध्वनि उस वातावरण में भरी हुई थी। रात से अधिक दिन और दिन से अधिक रात वहाँ जीवन के लिए असह्य हो रही थी। प्रत्येक को अपने प्राण भारी थे। माताओ ने पुत्रों को फेंक दिया था। पतियों ने पत्नियों से मुँह फेर लिया था और प्रत्येक व्यक्ति यह चाह रहा था कि उसका साथी उसका गला घोटकर उस पर अनुग्रह करे।

मध्याह्न में एक बार उन्हें नगर में भिक्षा माँगने को बाहर निकाला जाता

और वे लम्बी लम्बी रस्सियों से बंधे हुए, घुड़सवार बलोचियों से घिरे हुए नगर की गली गली और हाट-बाजार में भीख मांगने निकलते। इन कैदियों में लखपति, करोड़पति, सेठ, साहूकार, विद्वान, कवि, पंडित और व्यापारी, जागीरदार, उमराव, सिपाही सभी थे। बहुतों के सगे-सम्बन्धी रिश्तेदार पाटन में थे। वे अपने सम्बन्धियों को रस्सी से बंधा हुआ देख ज़ार ज़ार आंसू बहाते, दौड़-दौड़कर उन्हें भोजन-वस्त्र देते, तसल्ली देते। दैत्य के समान सिपाही किसी कैदी को नागरिकों से बात करता देखते ही मार-पीट करने लगते। तनिक-तनिक सी बात के लिए, अपने सम्बन्धियों को कोई वस्तु देने के लिए नागरिकों को बड़ी-बड़ी रिश्वतें इन बर्बर सिपाहियों को देनी पड़तीं। उन्हें यह भी भय था कि जैसे निरपराध ये नागरिक आज इस दुर्दशा में पड़े हैं वैसे ही कल हम भी पड़ सकते हैं। हमारी रक्षा करने वाला पृथ्वी पर कौन है!

८५ : दर्वारगढ में

ग्यारह दिन की मंजिल पूरी करके अमीर अपने लावलश्कर सहित अनहिलपट्टन आ पहुँचा जहाँ उसका सेनापति मसऊद, गुरु अल्बेरूनी और वज़ीर अब्बास सब उपस्थित थे। पाटन के नगरपाल चण्डशर्मा ने नगर-द्वार पर उसकी अभ्यर्थना की और आदर सत्कार से उसे दर्वारगढ में ले आया। दर्वारगढ में आकर अमीर ने एक दरबार किया और नगर में अपने नाम की आन फेरकर ढंढोरा फिराया कि प्रजा की जान-माल का हिन्दू राज्य की भाँति रक्षण होगा—सब लोग हाट-बाजार खोलें—और अपने अपने काम रोजगार में लगें।

यद्यपि यह ढंढोरा चण्डशर्मा के उद्योग का परिणाम था और इससे नगरजनों की घबराहट कुछ कम हुई परन्तु अमीर के बर्बर सैनिकों ने बाजार में अंधेरगर्दी मचा दी। वे चाहे जिसकी जो वस्तु उठा ले जाते थे, मोल का पैसा नहीं देते थे। गृहस्थियों के घरों से गाय, बकरी, भेड़ खोल ले जाते और काट-पीट कर हंडिया चढ़ाते। कोई बहू-बेटी अपना द्वार नहीं खोल सकती थी। लोगों ने अपना धन-रत्न भुँहरों में दबाकर छिपा दिया था। बहुत कम दुकानें खुलतीं—बहुत कम कारोबार होता था। चण्डशर्मा उधर अमीर का मिजाज संतुलित रखते, इधर नगर-जनों को शान्त रखते। उनकी नीति नगर को कम से कम हानि उठाकर अमीर को पाटन से बिना लड़े-भिड़े निकाल बाहर करने की थी।

अमीर अब लड़ने के मूड में न था। उसकी सेना थक गई थी और बल बिखर गया था। अपनी मुहिम वह पूरी कर चुका था और अब वह केवल अपनी थकान उतार रहा था। फिर प्यार के घाव से भी वह पीड़ित था।

जिस शोभना को वह चौलादेवी समझे हुआ था, वह अभी तक अपना भेद छिपाये हुए थी। उसको डेरा राजमहलों में ही दिया गया था, और दर्जनों दासियाँ उसकी सेवा के लिए नियत की गई थी। वह उससे मिलने को छटपटा रहा था। पर शोभना ने कहला भेजा था—"आप यदि तलवार हाथ में लेकर आते हैं, तो आप अपने और मेरे मालिक हैं—जब चाहें आइए—परन्तु यदि मेरी धर्म-मर्यादा कायम रखना चाहते हैं तो मैं देवानुष्ठान कर रही हूँ। मेरी इच्छा है, जब तक भारत-भूमि पर आप हैं, मेरे निकट न आइए। आपके मुल्क में मैं आपका दिल से स्वागत करूँगी।" महमूद गर्म खून का युवक न था, प्रौढ पुरुष था। शोभना का अनुरोध उसने सादर स्वीकार कर लिया। फिर भी वह प्रतिदिन दो बार सुबह-शाम अपना खास गुलाम उसके पास भेजकर उसकी ख़ैराफियत मँगा लेता था।

चण्डशर्मा अत्यन्त प्रच्छिन्न भाव से आबू से अपना सम्बन्ध स्थापित किये हुए थे। सिद्धपुर में दुर्लभदेव की एक-एक गतिविधि की देख-भाल कर उसका रत्ती-रत्ती हाल विमलदेवशाह को भेज रहे थे। उन्हें यहाँ अमीर के आते ही पता लग चुका था कि सोमनाथ की देवदासी चौलादेवी अमीर के साथ है, और अमीर ने उन्हें एक राजरानी की भाँति पाटन के राजमहलों में रख छोड़ा है। यद्यपि से उन्हें चौलादेवी का विस्तृत हाल ज्ञात नहीं था और यह भी वे नहीं जानते थे कि महाराज भीमदेव के साथ उसका गुप्त विवाह हो गया है, परन्तु गुप्तचरों से उन्हें इतना ज्ञात हो गया था कि चौलादेवी खम्भात में थी, और वहाँ के दुर्ग से अमीर ने उन्हें प्राप्त किया है। महाराज भीमदेव सकुशल आबू पहुँच चुके थे, परन्तु उन्होंने भी चौलादेवी के सम्बन्ध में चण्डशर्मा को कुछ न लिखा था, इसलिए अधिक तो नहीं, पर आंशिक रूप से वे चौलादेवी के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासा अवश्य रखते थे और उन्होंने अपनी एक गुप्त आँख निश्चित रूप से उस नक़ली चौलादेवी पर स्थापित कर रखी थी। जो हिन्दू-दासियाँ यहाँ शोभना की सेवा में रखी गई थी, वे सब चण्डशर्मा द्वारा ही भेजी गई थी। अमीर चण्डशर्मा को अपना अनुगत कर्मचारी समझकर, पाटन में अपनी सब आवश्यकताओं को चण्डशर्मा के द्वारा ही पूर्ण कराता था और इसी कारण एक दर्जन से भी अधिक दासियाँ चण्डशर्मा को चौलारानी के पास पहुँचानी पड़ी

थी, परन्तु शोभना ने इन दासियों के सम्मुख भी अपना भेद खोला नहीं था और वे नहीं जानती थीं कि उनकी स्वामिनी कौन है। वे यही जान पाई थीं कि वह सोमनाथ महालय की नर्तकी है, जो अमीर की प्रतिष्ठित बंदिनी है। चण्डशर्मा भी इतनी ही बात जान पाये थे। अलबत्ता उन्होंने उसका नाम भी जान लिया था और अपने गुप्त सन्देश में यह सन्देश भी आबू भेज दिया था कि अमीर के साथ चौला नाम की सोम महालय की एक नर्तकी भी बन्दिनी है, जिसे उसने रानी की भाँति वर्धारगढ़ के जनाने राजमहल में ठाठबाठ से रखा हुआ है।

इस प्रकार पाटन में अमीर की सवारी को आये केवल तीन ही दिन व्यतीत हुए थे कि इतने काल में पाटन नई-नई हलचलों से भर गया। चण्डशर्मा बहुत व्यस्त हो उठे थे। उन पर दुहरा भार था। वही पाटन की कूटनीति के एकमात्र सचालक थे। उनका बहुत समय अमीर की सेवा में व्यतीत होता था। उन्होंने अमीर के सब सुख-साधन जुटाकर उसे प्रसन्न कर लिया था, जिस कारण वह नगर-व्यवस्था सम्बन्धी सारी ही बातें चण्डशर्मा ही की अनुमति से करता था। एक प्रकार से वह चण्डशर्मा पर निर्भर था।

दो दण्ड रात्रि जा चुकी थी। चण्डशर्मा गढ़ से अमीर को आखिरी सलाम करके लौटे थे। उन्होंने देखा—एक सवार उनके पीछे घोड़ा दौड़ाता चला आ रहा है। उन्होंने अपना घोड़ा रोक दिया, पास आने पर देखा कि वह एक तुर्क सवार है। चण्डशर्मा ने कहा—

"तुम क्या चाहते हो ?"

"मुझे अमीर नामदार ने हुक्म दिया है कि मैं आपके हमराह रहकर हिफाज़त से आपको आपके घर पहुँचा दूँ, इसी से खिदमत में हाज़िर हो रहा हूँ।"

"मुझे डर क्या है, मुझे तो तुम्हारी कुछ भी जरूरत नहीं है।"

"बहुत जरूरत है, आप दुहरी चाल चल रहे हैं और खतरे से बेखबर हैं।"

चण्डशर्मा सिपाही के मर्मभेदी वाक्य सुनकर घबराये। उन्होंने कहा—

"दुहरी चाल से तुम्हारा क्या मतलब है ?"

"आप घर चलिए, वहीं कहूँगा।"

"यहीं कहो। चण्डशर्मा ने म्यान से तलवार निकाल ली।"

पर तुर्क सरदार ने हँसकर कहा—"इसकी क्या आवश्यकता है शर्मा जी, चलिए, घर चलिए, मुझे आपसे कुछ खानगी बातचीत करनी है।"

शर्माजी अपनी उत्तेजना पर लज्जित हुए। तलवार म्यान में रखकर बोले—"देखता हूँ, तुम कोरे सिपाही ही नहीं हो।"

"सच पूछिए तो मैं भी दुरंगी चाल का शौकीन हूँ।" इतना कह सवार ने एकदम अपना घोड़ा शर्मा जी के घोड़े से सटा दिया। फिर सिर का कुल्लेदार साफा हटाकर खिलखिला कर हँस पड़ा। चण्डशर्मा ने चमत्कृत होकर कहा—"अरे महता, तुम यहाँ ?"

"चुप रहिए, और बातचीत घर में होगी।"

और वे दोनों तेज़ चाल चलकर घर पहुँचे। चण्डशर्मा ने घर का द्वार बन्द करना चाहा। महता ने कहा—"तुर्की सवार को घर में घुसाकर द्वार बन्द करना ठीक नहीं है। मेरा घोड़ा पकड़ने को किसी को बुलाइए, वही द्वार की देख-भाल कर लेगा। इस बीच हम बात कर लेंगे।"

चण्डशर्मा ने ऐसा ही किया। दामो महता ने संक्षेप में सारा हाल सोमनाथ के पतन, तथा गंदावा दुर्ग और खम्भात का सुनाया। चण्डशर्मा ने सुनकर एक बूँद आँसू गिराकर कहा—"अब इस स्वाँग का क्या अभिप्राय है ?"

"बन्दियों की रक्षा। इस समय बन्दियों की मुक्ति ही सब से महत्व की बात है। एक लाख से ऊपर निरीह नर-नारी नारकीय वेदना भोग रहे हैं।" उन्होंने अपनी तलवार की कहानी चण्डशर्मा को सुनाकर कहा—"इसकी बदौलत मैं नाना भेष धारण करके बाहर-भीतर सर्वत्र जा सकता हूँ और अमीर से सबसे बड़ा अनुग्रह भी कर सकता हूँ परन्तु मेरा आत्मसम्मान इस में बाधक है। मैंने कभी उससे अनुरोध किया भी नहीं, करूँगा भी नहीं। अपने बुद्धि-बल पर ही इस दैत्य का सर्वनाश करने की चेष्टा करूँगा।"

"तो महता, अब हम तुम एक और एक ग्यारह हैं। चिन्ता न करो। इस गजनी के दैत्य का गुजरात से निस्तार नहीं है। यहाँ वह चूहेदानी में चूहे की भाँति फँसा हुआ है।"

"परन्तु चौला रानी ?" महता ने शोकपूर्ण स्वर में कहा—"उसका क्या होगा ?"

"कौन, वह देवदासी ?"

"आप नहीं जानते—चौला रानी की दुर्भाग्य कथा।" फिर संक्षेप में महता ने सब कथा कहकर कहा—"वह गुजरात की महारानी है। अमीर के हाथ उसका पड़ना बड़ा भारी दुर्भाग्य है, शर्मा जी।"

"पर मुझे जो सूचना मिली है, उनके आधार पर वह अपनी वर्तमान स्थिति में बहुत खुश है। क्या उसने महाराज भीमदेव को एकबारगी ही भुला दिया ?"

"कैसे विश्वास करूँ ! चौला रानी की भावुक प्रेम-भावना मैंने देखी है।"

"महाराज के लिए उसका वैकल्य देखा है। मैं जानता हूँ, महाराज जब सुनेंगे—सहन न कर सकेंगे। पर यह हो क्या गया ?" महता ने बेचैनी से कहा।

परन्तु शोभना रानी के समर्थ चक्र का वे दोनों गुजरात के कूटनीतिज्ञ चक्कर काटकर भी पार न पा सके। चण्डशर्मा ने सखेद वाणी से कहा—"अब मैं इस सम्बन्ध में और भी छानबीन करूँगा महता, वहाँ सभी दासियाँ मेरी विश्वासभाजन हैं। चौला रानी को प्रत्येक मूल्य पर अमीर के पंजे से निकालना होगा और यदि वह धर्मभ्रष्ट हुई है तो उसे दण्ड पाना होगा। यह गुजरात की रानी की मर्यादा का प्रश्न है, इसे यों ही नहीं जाने दिया जायगा।"

"निस्संदेह !" महता ने कहा। फिर दोनों ने आवश्यक परामर्श किया और महता उसी वेश में बाहर आकर धीरे-धीरे अमीर की छावनी की ओर चल दिये।

८६ : नगर-ढंढोरा

अनहिल्लपट्टन में ढंढोरा फिर गया कि कल एक प्रहर दिन चढ़े, गुनहगार कैदियों को मानिक चौक में कत्ल किया जायगा। बाकी सब को गुलाम की भाँति नीलाम कर दिया जायगा।

यह भयंकर ढंढोरा सुनकर अनहिल्लपट्टन में हाहाकार मच गया। लोग खाना-पीना भूल इस महाविपत्ति की बात सोचने लगे। निरुपाय सब नगर-निवासी नगरसेठ मानिकचन्दशाह की ड्योढ़ियों में पहुँचे और पुकार लगाई कि राजा हमें छोड़ गया, हम बिना राजा की प्रजा हैं। प्राचीन काल से नगरसेठ इस देश का दूसरा राजा होता चला आया है, जब-जब प्रजा पर विपत्ति आती है, वह उसका प्रतिनिधि होकर राजा के पास जा पुकार करता है और प्रजा के दुख-दर्द की दाद देता है।

नगरसेठ मानिकचन्दशाह के पास चण्डशर्मा का गुप्त संदेश पहिले ही पहुँच चुका था। उसने सब महाजनों और नगर के प्रमुख अधिकारियों को एकत्रित करके कहा—'यह बड़ी अनहोनी बात है कि हिन्दुओं की राजधानी में एक विदेशी राजा इस प्रकार निरीह निर्दोष जनों को बिना विघ्न-बाधा के हनन करे। कैसे हम हिन्दू यह सब बैठे देखें? फिर आज उनके लिए है, कल हमारी बारी है। भाइयो, जन्म-जन्म से हमने धन संचय किया है। धन ही के कारण हमारी महानता है। इस समय चाहे हमारा सर्वस्व लुट जाय, लाख-करोड़ रुपया खर्च करना पड़े, परन्तु कसाई के हाथ से इन गरीब मनुष्यों के प्राणों की रक्षा तो करनी ही होगी। हमारे राजा यदि कर्मण्य होते तो हमारी यह दुर्दशा न होती। बिना स्वामी के आज यह

गुजरात की स्वर्णसम राजधानी सूनी और शोभाहीन हो रही है। बिना राजा के प्रजा की रक्षा कौन करे।"

सभा में कुछ लोग बोल उठे—"हमें अपने प्राणों की परवाह न कर महमूद की सेना पर टूट पड़ना चाहिए। जहाँ तक प्राण हैं हम कैदियों पर आँच न आने

मानिकचन्दशाह ने कहा—"आपका यह जोश-उबाल व्यर्थ है, आप ठाकुर हैं, आपको तलवार का आसरा है। पर जब राजा ही प्रजा को अरक्षित छोड़कर भाग निकला, तो आपकी दो-चार तलवारें हजारों राक्षसों का क्या बिगाड़ सकती हैं। तलवार में पानी होता तो भला कहीं सोमनाथपट्टन भग होता? इन बातों को छोड़िए, जैसा समय है उसके अनुसार काम कीजिए। महमूद लोभी है, इसी से काम बन जाएगा। झुकने के समय झुकना और अकड़ने के समय अकड़ना राजनीति है। हमारी शक्ति नष्ट हो गई है, अत अब हमें साम-दाम से इन राक्षसों से काम निकालना है। वह मनमाना दण्ड लेगा। यही न, सो रुपया हमारे हाथ का मैल है, आबरू गई सो गई। इसलिए, हमें सुलतान का मुँह रुपयों से भरना होगा। दूसरा कोई चारा नहीं है। यह देखो, चालीसगाँव के महाजन सब बन्दियों को छुड़ाने के लिए तन-मन-धन से तैयार हैं।"

नगरसेठ की इस बात में सब ने सहमति दिखाई। नगर-सेठ मानिकचन्दशाह अपने साथ पाटन के सब नगर महाजनों को तथा चालीसगाँव के महाजनों को संग ले सुलतान के पास गया।

सुलतान के वज़ीर अब्दुल अब्बास ने महाजनों का स्वागत किया और आने का कारण पूछा।

मानिकचन्दशाह सेठ ने आने का अभिप्राय वजीर को कह सुनाया। सुनकर वजीर सुलतान के पास गया। अब्दुल अब्बास एक बुद्धिमान् और विद्वान् वजीर था। उसने सुलतान से कहा—"हुजूर, शहर के महाजन सेठ ड्योढ़ी पर यह अर्ज करने हाजिर हुए हैं कि सब कैदियों को रिहाई मिले।

सुलतान ने कहा—"यह कैसे हो सकता है। जिन कैदियों ने इरादतन मुसलमानों को मारा है, उन्हें क़त्ल कर दो, बाकी सब को ऊँची बोली में नीलाम कर

दो। यह तो हुक्म हो चुका है।"

"जरूर हो चुका है खुदावन्द, और इससे कुछ रुपया खज़ाने में आ जायगा। मगर हुजूर, रुपये से नेकनामी बड़ी चीज है। ये महाजन एक अच्छी रकम देने को यदि राज़ी हों तो रुपया भी मिल जाय और हुजूर खुदावन्द की नेकनामी भी सलामत रहेगी।"

"तब उन महाजनों को हाज़िर करो"—सुलतान ने हुक्म दिया। महाजनों ने सुलतान के सम्मुख आ सलाम किया। फिर मानिकचन्दशाह ने तनिक आगे बढ़कर कहा—"हुजूर, आप विजयी बादशाह हैं, आपकी ताकत का अन्त नहीं। हम महाजन लोग आपसे अर्ज करने आये हैं, मानना न मानना हुजूर के हाथ में है, हम लोग तो मालिक के सामने अर्ज ही कर सकते हैं।"

सुलतान ने कहा—"तुम्हारी अर्ज क्या है महाजनो ?"

मानिकचन्दशाह ने सिर झुकाकर कहा—"खुदावन्द, आप अच्छी तरह जानते हैं कि इन अभागे क़ैदियों का कोई कसूर नहीं है। यदि इनमें से किसी ने अपने बचाव के लिए कोई हरकत की है तो वह इन्साफ की दृष्टि से क्षमा के योग्य है। फिर इनमें गरीब, बेबस औरतें, लड़कियाँ, नगर-निवासी लोग हैं जिन्होंने तो आपका सामना किया नहीं। फिर, उन्होंने बहुत बेआबरूई और कष्ट उठाये हैं। ये लोग सब गरीब प्रजाजन हैं, वे न शूरवीर हैं, न सिपाही। इसलिए नेकनाम सुलतान, आप उन्हें माफ करके छोड़ दीजिए।"

अमीर ने कहा—"महाजनो, ये गुनहगार क़ैदी काफ़िर हैं, इन्हें मारने में सवाब होता है, फिर इन्होंने हमारी फौज का सामना किया है। हमारे आदमियों को ईज़ा पहुँचाई है। इसलिए हमने शरह की रू से इन्हें क़त्ल करने और बेच डालने का हुक्म दिया है।"

सेठ ने नम्रता से कहा—"आलीजाह, मालिक यदि रैयत को मारे तो फिर उसका बचाने वाला कौन है ? आपके एक वचन से हज़ारों के प्राण बचेंगे—यह भी बड़ा भारी सवाब है।"

"लेकिन बिना जुर्माना क़ैदी नहीं छोड़े जा सकते।"

"खुदावन्द, गरीब क़ैदी कहाँ से जुर्माना अदा करेंगे ? उनके पास खाने-पीने का

भी ठिकाना नहीं। वे तो पहले ही लुटे-पिटे बैठे हैं। फिर हुजूर, उनका अपराध भी तो कुछ नहीं है। आपका इरादा यदि दण्ड लेने ही का है—और दिये बिना छुटकारा नहीं है तो कृपा कर नाम-मात्र का दण्ड लेकर उन्हें छोड दीजिए।"

अब्दुल अब्बास ने चण्डशर्मा का इशारा पाकर कहा—"महाजनो, तुम व्यर्थ में वर्बाद न करो, सवा लाख सोने की मुहर हुजूर सुलतान की खिदमत में पेश करो तो गुनहगारों को माफ़ी मिल सकती है।"

नगर-सेठ ने बहुत अनुनय विनय किया पर सुलतान ने एक न सुनी। विवश महाजनों ने मुहरों की थैलियाँ सुलतान के सामने रख दी। मुहरों को गिनकर अब्दुल अब्बास ने माफ़ी का परवाना लिखकर उस पर सुलतान की मुहर लगवाकर नगर-सेठ के हाथ में दे दिया।

महाजनों ने हाथ उठा-उठाकर सुलतान को बहुत-बहुत धन्यवाद, आशीर्वाद दिया और वे अब एक क्षण का भी समय नष्ट न कर दौड़ते हुए मानिकचौक की ओर चले, जहाँ अभागे कैदियों के भाग्य का फ़ैसला होने वाला था।

८७ : मानिकचौक में

अनहिल्लपट्टन के मानिकचौक में आदमियों के ठठ जुटे पड़े थे। चारों ओर से लोग दौड़े चले आ रहे थे। आज अभागे कैदियों को कत्ल और भेड़-बकरी की भांति नीलाम किया जाना था। कैदियों को मज़बूत रस्सियों से बाँध, पठान सिपाहियों ने घेर रखा था। जिन कैदियों का सिर काटा जाने वाला था, वे सबसे पृथक् पीठ पीछे हाथ बांधे दो-दो की कतार में खड़े थे।

कैदियों की दुर्दशा देख-देखकर सहस्रावधि नागरिकों की आंखों से चौधार आंसू बह रहे थे। इस समय कैदियों की दशा वर्णनातीत थी। इनमें सैकड़ों सरदार, सेठिया, सैकड़ा स्त्रियां और किशोर अवस्था की युवक-युवतियां थीं। इनमें बहुत-सी छाती कूट-कूटकर रो रही थीं। अठवाड़ों से ये अन्ध कारागार में बन्द थे। महीनों से इन्हें भर-पेट भोजन और नींद-भर सोना नहीं मिला था। नहाने-धोने की तो बात ही क्या है। वे जीते जी नरक का दु:ख भोग रहे थे। पुरुषों की दाढ़ी बढ़कर और मैल मिट्टी लगकर सूरत भूत के समान बन गई थी। महीनों से उन्होंने वस्त्र नहीं बदले थे। उनके सगे-सम्बन्धी जो दूर से उनके साथ ही साथ उन्हें छुड़ाने की खटपट में बड़े दु:ख सहकर गिरते-पड़ते आये थे—इस भीड़ में भटकते, रोते और जिस-तिस की खुशामद करते फिर रहे थे। बहुत पत्नियां पति को, बहुत माताएं पुत्र को, बहुत पुत्र पिता-माता को, बहुत भाई भाई को ढूंढते फिर रहे थे। पृथ्वी पर उनको सुनने वाला—उस संकट से उन्हें उभारने वाला कोई न था। उनका क्रन्दन सुन-सुनकर बड़े-बड़े दृढ़ चित्त वालों का कलेजा दहल जाता था।

जिन कैदियों को प्राण-दण्ड मिलने वाला था, उनकी दशा और भी खराब हो रही थी। अकारण इतने निर्दोष स्त्री-पुरुषों के इस प्रकार हनन होने की कल्पना से उस दिन गुजरात की राजधानी आँसुओं से नहा रही थी। बाजार-बाज़ार सब बन्द थे। एक भी घर में चूल्हा नहीं जला था। प्रत्यक्ष मृत्यु को मूर्तिमान देखकर प्राण-दण्ड पाने वाले कैदी थर-थर काँप रहे थे। वे जानते थे—कोई घड़ी के ही मेहमान हैं। यम के समान जल्लाद सुर्ख पोशाक पहने भारी तेगा हाथ में लिए हुक्म के इन्तज़ार में खड़े थे। कुछ कैदी धीरज धर कर भगवान का स्मरण कर आँखें बन्द करके बैठ गये थे।

प्राण-दण्ड का समय हो गया। सरदार ने आगे बढ़कर सुलतान का हुक्म उच्च स्वर से सुनाया —

"बदबख्त कैदियो, तुमने शाहेजलाल सुलतान महमूद के मुकाबिले तलवार उठाई और जिहाद के सिपाहियों का मुकाबिला किया। तुम काफ़िर हो और सुलतान के हुक्म से तुम्हारा सिर काटा जाता है, जिससे तुम अपनी करनी का फल भोगो और ताक़यामत दोज़ख की आग में जलो।"

यह मृत्यु-घोषणा सुनकर अनेक कैदी ज़ोर-ज़ोर से 'राम-राम', 'शिव-शिव' पुकारने लगे। अनेक हँसने और अनेक रोने लगे।

अब भी नगर-निवासियों की आशा उन सेठों की ओर थी, जो सुलतान के पास बन्दियों को छुड़ाने गये थे।

दो-दो कैदी पाँत में बैठाये गये और दो-दो जल्लाद तलवार नंगी करके उनके सिर पर खड़े हुए। नगर-निवासी काँपते हुए इस भयानक दृश्य को आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। बहुत-से चिल्ला-चिल्लाकर इधर-उधर भागने लगे। देर हो रही थी, पर एक तुर्की सरदार ललकार कर अधिकारी को रोक रहा था। उसके हाथ में सुलतान की तलवार थी। वह कह रहा था—"अभी ठहरो, अमीर नामदार का आखिरी हुक्म आने दो।" कहने की आवश्यकता नहीं, यह तुर्क सिपाही छद्मवेषी दामोदर महता थे।

इतने ही में सेठों की टोली दौड़ती हुई आती दीख पड़ी। नगर-सेठ ने दोनों हाथ उठाकर पुकारकर कहा—"ठहरो, ठहरो, भाइयो, तनिक ठहरो।"

जैसे सूख पर वर्षा गिरती है सब न प्राशा और सन्देह से देखा। जल्लादो की तलवारें रुक गइ। नगरसेठ न सब बन्दियों की माफ़ी का परवाना झपटकर अधिकारी के हाथ में दे दिया। अधिकारी न सुलतान का परवाना पढ़ा। कुछ देर उसे उलट-पलट कर देखा फिर उसन उच्च स्वर से पुकार कर कहा—

गुनहगारो खुदा का शुक्र मनाओ आदिल इसाफ सुलतान न मिहरबानी करके तुम सबको छोड दिया। खबरदार आज के बाद कभी शाहेजलाल सुलतान के सामन हथियार न उठाना।'

एक अतर्कित अकल्पित आनन्द की किलकारियाँ हवा में भर गइ जिनके साथ सुख के रुदन की सिसकारियाँ भी थी। बात की बात में कैदियों के बन्धन खुल गय। बिछड़े हुए पिता पुत्र पति पत्नी मिले। यम की डाढ से छुटकारा मिला।

लोग हाथ उठा उठाकर पागल की भाँति हँसने और रोन लग। कैदी गुलाम गौरी और मौत के पजे से इस प्रकार छूटन पर भी जैसे विश्वास न कर सके। बहुत से पागलों की भाँति नाचने-कूदन लग।

अनहिल्लपट्टन उस दिन बहुत व्यस्त रहा। घर घर म कैदियों की सत्कार सेवा में मिष्टान्न पकवान वस्त्र बँटते रहे। कैदियों न स्नान कर क्षौर करवाय वस्त्र पहने। नगरसेठ मानिकचन्दशाह न सब सेठो की ओर से अन्न वस्त्र धन देकर उन्हें अपन अपन घर भजा।

केवल तीन एसे कदी थ जो कैद से छुट्टी पाकर भी घर नहीं गय। अपन तन बदन की सुध-बुध भूलकर दीन स्त्री-पुरुष कैदियों की सेवा शुश्रूषा और व्यवस्था में हाथ बटाते रहे। ये तीनो कैदी कँचनलता देवचन्द और पूनमचन्द थ। कँचनलता और देवचन्द खम्भात के नगरसेठ के पुत्री और पुत्र थ। और पूनमचन्द पाटन के कोटयाधिपति मोतीचन्द का पुत्र और कँचनलता का पति था। वृद्ध मोतीचन्द शाह उस भीड भाड में पुत्र को ढूँढते फिरते थ। अन्त में पिता पुत्र मिल गय। तीनो न सेठ के चरणो म मस्तक झुका दिया। और सेठ न उन्हे छाती से लगाकर मन का सताप दूर किया।

८८ : चौला रानी

नव किसलय कोमल, कमल किशोरी रूप कौमुदी की मूर्त प्रतिमा चौला रानी आज अपने कोमल लाल चरण ऊबड़-खाबड़ भूमि पर रखती, ठोकरें खाती, अंधकार में राह टटोलती, भाग्य-दोष से उस अन्धेरे भूगर्भ मार्ग में से निराशा के गर्त में डूबती-उतरती चली जा रही थी। आज न उसका कोई रक्षक था न सहायक। नंगी तलवार उसकी कोमल कलाई पर भार थी और उत्फुल्ल अरविन्द के समान उसके नेत्र रोते-रोते फूल गये थे। काले घुंघराले बाल जिन में कभी मोती गूंथे जाते थे, धूल में भरकर उलझ गये थे। और नीलमणि की कंठी से कभी का सुशोभित कंठ धूल और गन्दगी से मलिन हो रहा था। बिम्बाधर रूखे, मुख-चन्द्र राहुग्रस्त-सा और सुषमा का आगार उसका नवल गात्र सूखे झाड़-सा प्रतीत हो रहा था।

वह साहस करके आगे बढ़ती चली गई और जब वह सुरंग के पार पहुंची तो उसने देखा कि उस वीरान जंगल में आदमी की परछाईं भी नहीं थी। वह सुरक्षा की अभिलाषिणी थी। वहां पशु और उनसे भी अधिक दुर्दान्त नर-पशुओं के आक्रमण से वह शंकित थी। वह चाहती थी कि शीघ्र उसे महाराज के सान्निध्य में पहुंचने की कोई राह मिल जाय। वह सीधी नदी के किनारे-किनारे चलती चली गई। भूख, प्यास और थकान से वह बेदम हो रही थी। सामने ही निर्मल नीर नदी में वह रहा था पर उसने उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा। वह सीधी बढ़ती चली गई।

परन्तु उसे बहुत अधिक न चलना पड़ा। सामने अमराई के उस पार एक

छोटा-सा गाँव था। चौला रानी धीरे-धीरे आँचल में लाज समेटे गाँव की ओर चली। उसने देखा—गाँव के छोर पर ही एक जीर्ण शिवालय है, उसी के पास पुजारी का टूटा-सा घर है। वह चुपचाप घर की देहरी पर जा खड़ी हुई। वृद्ध पुजारी ने भीतर से निकल कर कहा—

"कौन हो तुम ?"

"एक असहाय दुखिया स्त्री हूँ, आप देवता के पुजारी हैं, ब्राह्मण हैं, क्या आप आश्रय देंगे ?"

"ब्राह्मणी हो ?"

'न, क्षत्रिय ?"

ब्राह्मण सोच में पड़ गया। चौला ने कहा—"आप को कष्ट नहीं दूंगी। देव-सेवा का मुझे अभ्यास है। मैं देव-सेवा करूँगी, भोजन के लिए भी धन मेरे पास है, आप पर कोई भार नहीं होगा।" उसने पाँच स्वर्ण-मुद्राएँ आँचल से निकाल कर पुजारी के सम्मुख उसके चरणों में रख दीं। पुजारी ने क्षण भर विचार किया, एक बार उसके पीले, सूखे मुँह को देखा, फिर स्वर्ण-मुद्रा हाथ में उठाकर कहा—"इन्हें आँचल में बाँध लो बेटी। और किसी से कहना मत कि तुम्हारे पास सोना है। घर में अकेली ब्राह्मणी है। जवान बेटा अभी सोमतीर्थ में देवार्पण हो गया, इससे उसका मिजाज जरा खराब हो गया है। बकझक बहुत करती है सो उसका कुछ ख्याल मत करना। आओ, भीतर आ जाओ। तुम कहाँ से आ रही हो ?"

"खम्भात से पिता जी।"

"वहाँ भी क्या म्लेच्छ पहुँच गया ?"

"वहाँ सब कुछ हो चुका है पिता जी।"

"तुम्हारे घर में क्या कोई है ?'

"कह नहीं सकती। अभी तो आपकी ही शरण हूँ।"

"तो बेटी, ब्राह्मण के घर जो कुछ रूखा-सूखा देवान्न है, खा कर रह।"

'किन्तु माता को नहीं देख रही हूँ।'

'बाहर गई है। आती होगी। तेरा मुँह सूख रहा है, भूखी है, थोड़ा दूध घर में है, देता हूँ, पी।"

इतना कहकर वृद्ध ब्राह्मण व्यस्त भाव से घर में घुस गये। चौला का निषेध उन्होंने नहीं माना। थोड़ा दूध लाकर पिला दिया।

इसी समय गर्जन-तर्जन करती ब्राह्मणी आ गई। यजमानो के घर से वह थोड़ा चावल माँग लाई थी। चौला को आँगन में बैठी देख ब्राह्मण से उसने तीखी होकर कहा—"यह मेरी सौत कौन आ गई?"

चौला ने उठकर आँचल गले में डालकर ब्राह्मणी के चरण छू कर कहा—

"आपकी पुत्री हूँ दुखिया स्त्री। आपकी शरण आई हूँ माता जी।"

"तो दूर रह, छू मत। कुवेला नहाना पड़ेगा। निपूता न जाने कहाँ से किस जात-कुजात को बटोर लाता है।" उसने घूर कर ब्राह्मण को देखा। ब्राह्मण उत्तर न देकर खड़ाऊँ खड़खड़ाते बाहर चले गये। उन्होंने सोचा—दोनो स्त्रियाँ स्वयं ही अपना सन्तुलन ठीक कर लेंगी। कुछ देर बाद ब्राह्मणी ने कहा—"कौन जात हो?"

"क्षत्रिय।"

"कहाँ से आई हो?"

"खम्भात से।"

"अकेली?"

"म्लेच्छ ने खम्भात में कहर मचाया है माताजी, प्राण लेकर आपकी शरण में आई हूँ।"

ब्राह्मणी कुछ नर्म हुई। वह बड़बड़ाती हुई चावल बीनने लगी। चौला ने कहा—

"चावल मैं बीनती हूँ, आप चूल्हा सुलगाइए।"

"पानी भी तो नहीं है। मैं ही तो भर लाऊँगी। बूढ़ा तो कुछ करेगा नहीं।"

"पानी मैं लाती हूँ माँ जी, कुआँ कहाँ है?"

"वहाँ अमराई में है। वह घड़ा है।"

चौला घड़ा बगल में दबाकर जल भरने चली। ऐसे काम की वह अनभ्यस्त थी परन्तु चातुर्य और परिश्रम तथा शील एवं मृदु वचनो से उसने वृद्धा पर मोहिनी डाल ली।

भात तैयार होने पर ब्राह्मणी ने कहा—"तू खा, भूखी होगी।"

"पहिले देवता को भोग लगेगा, पीछे पिता जी और आप भोजन करेंगे, फिर आपका प्रसाद मैं लूंगी।"

ब्राह्मणी सन्तुष्ट हो गई। चौला ने घर की झाड़-बुहार से लेकर देव-सेवा तक के सब काम अपने हाथों में ले लिये। वह उस घर की एक सदस्या बन गई।

ब्राह्मण दम्पति उसे बेटी समझने लगे।

परन्तु चौला रानी वहाँ आयु काटने को तो आई न थी। उसे जितना शीघ्र सम्भव हो महाराज भीमदेव की सेवा में आबू पहुँचना था। वह अपने मन का अभि-प्राय कैसे ब्राह्मण पर प्रकट करे, यह निर्णय नहीं कर पाती थी। वह अपना परिचय देना भी ठीक नहीं समझती थी। ब्राह्मण उसकी शालीनता को देखकर सन्देह करता था कि यह अवश्य कोई बड़े कुल की स्त्री है, परन्तु ब्राह्मणी के डर से वह उस पर किसी भाँति कृपा नहीं कर सकता था। ब्राह्मणी यद्यपि अपेक्षाकृत उस पर सदय थी परन्तु अपने स्वभाव के अनुसार वह सदैव खीझती रहती थी।

दिन बीत रहे थे और पाटन के समाचार विकृत होकर उसके पास आ रहे थे। उन समाचारों का सार यही था कि पाटन में इस्लामी राज्य कायम हो गया है। अमीर ने सब सेठ-साहूकारों को कत्ल कर दिया है, और गुजरात के राजा वल्लभदेव और भीमदेव भाग गये हैं। ये सब समाचार सुन-सुनकर चौला रानी बहुत घबराती, कभी छिपकर रोती। कभी उसका रोना ब्राह्मण पर प्रकट होता, कभी नहीं।

परन्तु एक दिन ब्राह्मण ने उससे बात की। उसने कहा—"लक्ष्मी बेटी, तू अपने मन की बात मुझ से कह, और यह भी बता कि तू कौन है और मैं तेरी क्या सहायता कर सकता हूँ।"

चौला ने कहा—"यदि आप किसी भाँति मुझे आबू पहुँचा दें तो बड़ी कृपा हो। खर्च मेरे पास है।"

"आबू में कौन है?"

"मेरे पतिदेव हैं"

"इतने दिन बाहर रहने पर वे तुझे रखेंगे?"

"रखेंगे।"

"उनका नाम क्या है बेटी ?"

"वह, वहीं चलकर बताऊँगी।" ब्राह्मण सोच में पड़ गया। उसने कहा—"बहुत कठिन है बेटी, राह में पाटन है। वहाँ म्लेच्छ का राज्य है—सुना है वहाँ बहू-बेटी की आन नहीं है। म्लेच्छ जिसे पाते हैं, पकड़कर ले जाते हैं। मैं दुर्बल ब्राह्मण तेरी रक्षा नहीं कर सकता।"

परन्तु चौला साहस कर चुकी थी। उसने कहा—"पिता जी, मैं भेस बदल कर पुरुष-वेष में आपके साथ जाऊँगी। ब्राह्मण को कोई नहीं सतायेगा। फिर मेरे पास तलवार है, आप चिन्ता न करें। ये दस मुहरें हैं, इन्हें माता जी को दे दीजिए—वे सन्तुष्ट हो जाएँगी। मेरे पास खर्च के ल‍िए और भी मुहरें हैं।"

अन्ततः ब्राह्मण राजी हो गया। सोना पाकर ब्राह्मणी भी राजी हो गई और एक दिन खूब भोर में, सूर्योदय से प्रथम ही चौला ब्राह्मण-कुमार का वेष बना, वस्त्रों में तलवार छिपा, यथासम्भव अपने रूप को अपरूप कर वृद्ध ब्राह्मण को संग लेकर घर से निकल पड़ी।

राह-बाट में जो मिलता, वही पाटन की भयानक बातें सुनाता। दोनों भिक्षा माँगते, खाते, कभी चना-चबेना खाते, कभी टिक्कड़ सेंकते, गाँव पर गाँव पार करते, पाँव प्यादे पाटन की ओर बढ़ने लगे।

ब्राह्मण ने कहा—"पाटन में मेरे एक सम्बन्धी हैं, वे राजवर्गी पुरुष हैं। वे तुझे सहायता देंगे। मैं तुझे वहाँ तक ले चलता हूँ। फिर आगे जैसी वह राय दें वैसे ही करना। इसी में तेरा भला होगा।"

चौला ने स्वीकार किया। वह पाटन की ओर ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, उसे प्रतीत होता था कि वह बाघ के मुँह में जा रही है परन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा।

अन्त में वह ठीक उस दिन पाटन में पहुँची, जिस दिन बन्दी मुक्त किये गये थे और पाटन में हर्ष की लहर लहरा रही थी। उस दिन चौकी-पहरे का भी विशेष प्रबन्ध न था। वृद्ध ब्राह्मण और उसके युवा पुत्र की ओर किसी ने लक्ष्य नहीं किया। गोधूलि-वेला में वे दोनों लोटा, लकुटिया और सत्तू की पोटली कन्धे पर रख चण्डशर्मा के द्वार पर जा खड़े हुए।

बहुत काल बाद चण्डशर्मा अपने पुराने सम्बन्धी को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों का स्वागत-सत्कार किया। परन्तु वे छद्मवेशी ब्राह्मण-कुमार को बारम्बार ध्यान से देखने लगे। उन्होंने नेत्रों ही में पूछा—"यही क्या आपका पुत्र है?"

ब्राह्मण ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"मेरा पुत्र तो सोमतीर्थ में म्लेच्छ का भोग हुआ! यह युवक तो अपना परिचय स्वयं देगा। इसी से इसको आपके पास लेकर आया हूँ। अभी इसके आहार विश्राम की व्यवस्था कर दीजिए।"

स्वस्थ होने पर चौला ने अपना इस प्रकार परिचय दिया—"मैं खम्भात में चौला रानी की परिचारिका थी। चौला रानी से मेरा खम्भात की भगदड़ में साथ छूट गया। अब मुझ विपद् की मारी को इस ब्राह्मण देवता ने आश्रय दिया है।"

यह समाचार सुनकर चण्डशर्मा को आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी। उन्होंने कहा—"तो क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी सखी चौला रानी अपना सब कर्तव्य भूल म्लेच्छ के साथ आई है और राजरानी की भाँति रहती है।"

चौला शोभना के जीवित होने का संकेत पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा—"क्या आप मुझे उनके पास किसी तरह पहुँचा सकते हैं।"

"यह क्या मुश्किल है। उसकी सेवा में जो दासियाँ नियुक्त हैं, सभी मैंने नियुक्त की हैं। मैं तुम्हें उन दासियों के साथ भेज सकता हूँ।"

दूसरे दिन भोर ही में चौला जल की भरी झारी कन्धे पर रख दासी के वेश में शोभना के पास दर्बारगढ़ के रंगमहल में जा पहुँची। देवी चौला रानी को अपने सम्मुख पाकर शोभना आनन्द-विह्वल हो गई। उसने सब दासियों को हटा दिया और चौला रानी से लिपट गई। प्रथम दोनों ने अपनी-अपनी व्यथा सुनाई। चौला की सब कहानी सुनकर शोभना ने कहा—"सखि, अब तुम अविलंब यहाँ से भाग चली जाओ और महाराज को बल दो जिससे गुर्जर-भूमि का उद्धार हो।"

"परन्तु तुम?"

"मेरा मरना-जीना सब समान है। इससे—जब इतना विलम्ब हो गया है, तब थोड़ा और सही। इस दुर्दान्त पशु को मैंने पालतू बना लिया है। यद्यपि मेरी भेंट इससे खम्भात ही में हुई है, और वह फिर मेरे सम्मुख नहीं आया, पर सखि, मैंने अभी उसे न छोड़ने का ही निश्चय किया है। इसका सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि वह तुम्हारी ओर से बिल्कुल निश्चिन्त है। और यही समझता है कि तुम ही उस पर कृपा की दृष्टि रखकर इसका दिया राज भोग रही हो।"

"परन्तु सखि, यह खतरनाक खेल कब तक चलेगा?"

"जब लोग प्राणों की होली खेल रहे हैं तो यह भी उसी का एक भाग समझो। अब इस नाटक को अन्त तक चलने दो और देखो, अन्त में क्या परिणाम होता है।"

और भी बहुत-सी बातें हुईं और फिर अपना-अपना कर्तव्य स्थिर कर दोनों सखियाँ विदा हुईं।

इधर चौला रानी के दर्बारगढ़ जाने के बाद ही छद्मवेशी दामो महता चण्डशर्मा के पास आये। चण्डशर्मा ने चौला की सखी के पाटन में आने के सब समाचार उनसे कहे। सुनकर शोभना से मिलने और चौला देवी के मन की बात जानने की उत्सुकता से महता अधीर हो गये। वे वहीं रुककर शोभना के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

परन्तु देखते ही क्षण-भर में महता ने चौला रानी को पहचान लिया। महता आनन्द से नाच उठे। उन्होंने आगे बढ़कर नम्रतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। चण्डशर्मा को यह सुनकर कि चौला रानी यही हैं, बड़ा आश्चर्य हुआ। शोभना ने अमीर को अच्छे नाटक में फँसाया है, यह सुनकर यह पाटन का चाणक्य बहुत हँसा। उसने भूरि-भूरि शोभना की प्रशंसा की। फिर दोनों कूटनीतिज्ञों ने मिलकर यही निर्णय किया कि जो कुछ हो रहा है, वही ठीक है। अभी चौलादेवी चण्डशर्मा के घर में गुप्त वास करें और शोभना देवी अपना अभिनय करती रहे।

उसी क्षण महता ने आबू को गुप्त संदेश भेज दिया कि चौलादेवी के सम्बन्ध में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

८६ : पाटन से प्रस्थान

वसन्त की मनोरम ऋतु गुजरात पर छा गई। रम्य गुर्जर-भूमि विविध लता-पुष्पों से भर गई। पुष्पों की भीनी महक से वातावरण सुरभित हो गया। आम के वृक्ष मौर से लद गये। उन पर कोयल कूकने लगी। गुजरात की भूमि एक मनोहर वाटिका की शोभा धारण कर उठी। सघन वनस्थली में गिरिशृङ्ग से निकलती हुई स्वच्छ जल की पहाड़ी नदियाँ और निर्झर टेढ़ी-सीधी भूमि पर सर्पाकार बहते अति शोभायमान प्रतीत होने लगी। विविध रंगों के पक्षियों के चह-चहाने से ध्वनित-सी गुर्जर-भूमि स्वर्ग की सुषमा दिखाने लगी। गत विपत्ति को भूल लोग विविध रंग के वस्त्राभूषण धारण कर फाग का आनन्द लेने लगे।

अनहिल्लपट्टन के दर्बारगढ में सुलतान महमूद नित्य सायं-प्रातः दो बार दर्बार करने लगा। दर्बार में छोटे-बड़े राव रंक प्रत्येक को आने की छूट थी। दर्बार में महमूद स्वर्ण सिंहासन पर तड़क-भड़क से अपने वज़ीरों और विद्वानों से घिरा हुआ बैठता और विविध रास रंग और राजकाज की बात चलाता।

चैत्र और वैशाख बीत गया। एक दिन महमूद के दर्बार में चर्चा चली। प्रसिद्ध विद्वान् अलबेरूनी ने कहा—"खुदावन्द, यह मुल्क गुजरात तो बहिश्त-सा लगता है, यह हिन्द का बाग मशहूर है। गुजरात में कच्चा सोना उगता है। ऐसा यह लोग कहते हैं। यहाँ के लोग खुशहाल और बुद्धिमान् हैं। वे बड़े ठाठ और मौज-शौक से रहते हैं। यह एक अजब बात है कि खुदा ने मूर्तिपूजक काफ़िरों को ऐसा सरसब्ज़ और ज़रखेज़ मुल्क दिया। क्यों न इसे इस्लामी सल्तनत का पायेतख्त बनाया जाय।"

वजीर अब्दुल हसन ने कहा—"यही क्यो ? क्या हुजूर ने गोलकुण्डा की बाबत नहीं सुना, जिसे जवाहरभरा मुल्क कहते है, जहाँ की जमीन में कंकड-पत्थर की जगह हीरे भरे हुए है । गोलकुण्डा में मीलो की लम्बाई तक हीरो की खानें फैली हुई हैं । जमीन के पेट में इस कदर जवाहर भरा है कि एक पीढी में निकाला नहीं जा सकता ।"

अल्बेरूनी ने कहा—"फिर सिंहलद्वीप है, जो यहाँ से कुछही फ़ासले पर है। उस पर ब-ग्रासानी दखल किया जा सकता है। वहाँ के दरिया में दुनिया भर से अच्छे और बेशुमार मोती निकलते हैं ।"

महमूद ने अपने विद्वान् मन्त्रियो से यह वार्तालाप सुनकर मन में अनेक बातो का विचार किया। उसके मुँह में लालच का पानी भर आया ।

अल्बेरूनी ने सुलतान का रुख देखकर फिर कहा—"अगर गुजरात को पाये-तख्त बनाकर एक जहाजी काफ़िला किसी बहादुर जाँनिसार की मातहती में सिंहल भेजा जाय, साथ ही गोलकुण्डा पर फौजकशी की जाय तो हुजूर दुनिया के सबसे बड़े बादशाहों के रुतबे को पहुँच सकते है। साथ ही अनगिनत दीनदारों का भला हो सकता है। इसके इलावा मुल्क से कुफ्र दूर हो दीनेइलाही का जहूर होगा ।"

वजीर ने कहा—"खुदावन्द, इस मुल्क में वक्त पर बरसात होती है, वक्त पर धान पकता है। गर्मी में ज्यादा गर्मी नही और सर्दी में ज्यादा सर्दी नहीं, मनपसन्द मेवा, फल और तरकारी उगती है। दुनिया में ऐसा मुल्क और कौन-सा है ?"

परन्तु महमूद के सेनापति इस राय के विरोधी थे। वे राजनीति की गम्भीरता से अज्ञात थे, वे सिपाहियो की बेचैनी से भी परिचित थे, जो अपने बाल-बच्चो से दूर विदेश में आकर अब घर लौटने को उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने कहा—

"शाहेवक्त, आलिमो की राय के बीच सिपाही को बोलना मुनासिब नहीं। मगर हुजूर, अपने मुल्क को सूना छोडकर दौलत के लालच में परदेश में बस जाना खतरे से खाली नहीं है। मुल्क में अपनी सल्तनत है, अपना अमल है। वहाँ अपना

कबीला है, बिरादर हैं। उनसे दूर रहकर दुश्मनों के इस मुल्क में जहाँ कदम-कदम पर रुकावटें हैं, फँसना गुलाम को ठीक नही जँचता। बिलफर्ज, हुजूर गोलकुण्डा या सिंहल पर फौजकशी करें तो बिला शक-ओ-शुबाह यह तय है कि एक बेडा हथियारबन्द जहाज की सिरेबन्दी करने में ही हुजूर का सारा खजाना खतम हो जायगा। हुजूर को यह भी न भूलना चाहिए कि अजमेर और सोमनाथ की जग में हमारे काफी सिपाही मारे गये हैं और सिपाही इतने दिन घर से दूर रहने से बेदिल और उतावले हो रहे हैं। हम न उन्हे तस्कीन दे सकते हैं, न उस कमी को पूरा कर सकते हैं, जो इन लड़ाइयो में हमारी हुई है। उधर दुश्मन चारो ओर से पेशबन्दियाँ कर रहे हैं। हुजूर यह न समझें कि भीमदेव चुप बैठा है, वह तमाम मुल्क में जग की आग सुलगा रहा है, और सब राजाओ को इकट्ठा कर रहा है, ताकि हमारी वापसी की राह रोक ली जाय और हमें घेर कर जेर कर लिया जाय। ऐसी हालत में आप इन दुश्मनो से बेखबर होकर नई फौजकशी करें और खुदा-न-ख्वास्ता हमें नाकामयाबी हो तो जो नाम और शोहरत हमने पाई है, धूल में मिल जायगी। साथ ही अपने मुल्क को हम में से एक भी आदमी जिन्दा न लौट पायगा। इसलिए खुदावन्द, मेरी अरज तो यह है कि जितना जल्द मुमकिन हो, हमें सब सोना, हीरा, मोती, जर, जवाहर लेकर अपने मुल्क को भाग चलना चाहिए।"

अपने बहादुर सिपहसालार की यह कीमती सलाह सुनकर सुलतान सोच में पड गया। फतहमुहम्मद के अकस्मात् गायब हो जाने और मसऊद के रहस्यपूर्ण ढग से मारे जाने के चित्र उसकी आँखो के आगे से निकल गये।

दिन बीतते गये और चातुर्मास आ लगा। किसान खेत जोतने लगे परन्तु आषाढ और श्रावण सूखे निकल गये, एक बूँद जल नही गिरा। लोग घबरा गये। दुष्काल की छाया उनके मुख पर स्पष्ट होने लगी। अन्न महँगा हो गया। गरीब भूखों मरने लगे। श्रीमन्तो ने सदाव्रत खोल दिये परन्तु एक माह बाद तो दुष्काल चारो ओर मुँह फाडकर मनुष्यों का ग्रास करने लगा। समस्त गुजरात में अकाल फैल गया। सुलतान ने अपनी फौज के लिए बहुत-सा अन्न अपने कब्जे में कर लिया। देखते-ही-देखते हजारों ही मनुष्य 'हा अन्न, हा अन्न', करते मरने लगे। गाँव-देहात में लूट-खसोट मच गई। लोग खाद्य-अखाद्य सब खा-खाकर पटापट

मरने लगे। बालक भूख के मारे माता-पिता के सामने रोते-रोते बेहोश होकर मर गये। बहुत माता-पिता पत्थर का कलेजा कर अपने बच्चों को असहाय छोड़कर भाग गये।

वर्षा के लिए विविध उपाय काम में लाये जाने लगे। शिव-मन्दिरों में धूम-धाम से घटा बजाकर आराधना प्रारम्भ हो गई। ब्राह्मण-भोज होने लगे। जगह-जगह कीर्तन किये जाने लगे। ब्राह्मणों ने यज्ञ, अनुष्ठान, व्रत-उपवास किये परन्तु वर्षा न होनी थी, न हुई। श्रावण की भाँति भाद्रपद भी सूखा गया। जंगल की घास भी सूख गई।

भक्ष्याभक्ष्य खाने से नगर-गाँव में हैजा फूट निकला। लोग पटापट मरने लगे। हैजे की छूत महमूद की सेना में भी पहुँची। सैकड़ों सैनिक नित्य मरने लगे। सेना में घबराहट और विद्रोह के चिह्न फैल गये।

लोगों में आम तौर पर यह बात फैल गई कि यह सब भगवान् सोमेश्वर का कोप है। लोग जगह-जगह कहने लगे कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी ने काली-कपाली आदि भैरवियों को भेजा है। वे नर-रक्त से खप्पर भर-भरकर भगवती त्रिपुर-सुन्दरी को तथा नर-मुण्डमाल भगवान् सोमेश्वर को अर्पण कर रहे हैं। काली-कपाली और जोगनियों के कोप-शान्ति के भी अनेक उपाय किये जाने लगे। घर-घर खीर-बाकड़ा के नैवेद्य होने लगे। चौक, बाज़ार में स्त्रियाँ उतारा उतारकर रखने लगीं। द्वारों पर नीम के पत्तों के तोरण बाँधे जाने लगे, देवमन्दिरों में धूप-दीप, होम, हवन होने लगे। नगर के चारों ओर दूध की धार दी गई परन्तु महा-मारी का विकराल रूप तो और भी विकराल होता गया।

नगर के भंगियों ने भंगी-टोले में महाकाली को प्रसन्न करने के लिए अलग टोटका किया। एक काला कुत्ता मारकर भौंयरा में लटका दिया। फिर सब लोग नंग-धड़ंग हो शराब पी-पीकर नाचने-गाने लगे। भूपा लोग सिन्दूर माथे पर लपेट मन्त्र-पाठ करके उर्द बखेरने लगे। धूम-धड़ाके की भी खूब भरमार हुई परन्तु महामारी ने सबसे अधिक भंगियों को समेटा। उन्होंने उर्द का पुतला मन्त्रपूत कर दुर्लभ सरोवर में डाल दिया था, इससे हजारों लोग क्रुद्ध हो-होकर और लाठियाँ ले-लेकर भंगियों पर कहर बरसाने लगे।

इन सब कारणों से तथा फौज की बढती हुई विद्रोह-भावना से भयभीत होकर महमूद ने जल्द से जल्द गज़नी लौटने का विचार किया। उसने एक ग्राम दर्बार की घोषणा की। दर्बार में सब नगर-महाजनों ग्रौर प्रधान पुरुषों को भी बुलाया गया। सब के सम्मुख सुलतान ने यह प्रश्न रक्खा कि गुजरात का राज्य किसे सौंपा जाय। महमूद ने स्पष्ट रीति से यह घोषित कर दिया कि वह चामुण्डराय के किसी भी वंशज को राज्य सौंपने को राजी है, बशर्ते कि वह राज्याधिकारी सुलतान को अपना अधिपति स्वीकार करे और नियमित रूप से खिराज गज़नी भेजता रहे।

दर्बार में दुर्लभदेव ग्रौर बल्लभदेव दोनों ही के प्रतिनिधि उपस्थित थे। महाराज चामुण्डराय तो राजपाट का सब मोह त्याग श्वेत तीर्थ में जा परलोक-चिन्तन में मग्न थे। दुर्लभदेव सिद्धपुर में भगवा वस्त्र पहिन सन्यासी बने बैठे थे। बल्लभदेव और भीमदेव प्रच्छिन्न भाव से अब अर्बुद-नान्दोल ग्रौर ग्रास-पास के राजाग्रों की सैन्य एकत्र कर महमूद की राह रोके ग्रर्बुद की घाटियों में घाक-घौबन्द बैठे थे।

दुर्लभदेव के चरों ने सुलतान के मन्त्रियों ग्रौर सलाहकारों को घूस देकर अपने पक्ष में कर लिया था। उन्होंने कहा—

"राज्य के अधिकारी ग्रौर राज्य करने योग्य केवल दुर्लभदेव हैं। वे सुलतान के मित्र हैं ग्रौर खुशी से सुलतान नामदार को जितना सुलतान कहेंगे खिराज देंगे ग्रौर ग्रन्त तक ग्राप ही की ग्राज्ञा के ग्रधीन रहेंगे।" उन्होंने उन कौल-करारों की भी याददहानी कराई, जो सुलतान ग्रौर दुर्लभदेव के बीच हो चुके थे। परन्तु बल्लभदेव के हिमायतियों ने कहा—

"बल्लभदेव पाटवी कुँवर हैं, गद्दी पर उन्हीं का हक है, प्रजा इनसे सन्तुष्ट है। वे विवेकी, न्यायी ग्रौर वीर पुरुष हैं। वही गुजरात के राजा होने चाहिएँ।"

वजीर ने कहा—"लेकिन उसने सोमनाथ की लड़ाई में हमारा सामना किया, ग्रभी तक वह भीम के साथ मिलकर सुलतान के खिलाफ फौजकशी कर रहा है। वह माफी माँगने सुलतान की खिदमत में हाजिर नहीं हुग्रा। राज्य पर अपना हक उसने प्रकट किया नहीं, इसलिए यह गद्दी उसे नहीं सौंपी जा सकती।"

सुलतान ने सब तर्क सुनकर हुक्म दिया—"दोनों में आज से जो सात दिन के भीतर आकर हमारे हुजूर में सलाम करेगा, ज्यादा से ज्यादा खिराज देगा, और जो शर्तें तय हो उनका पालन करने का वायदा करेगा उसी को गद्दी सौंप दी जायगी। नहीं तो सात दिन बाद गुजरात में इस्लामी राज्य की स्थापना हो जायगी।"

इतना कहकर सुलतान ने दर्बार खत्म किया। दोनों ही पक्षों के समर्थक अपनी अपनी खटपट में दौड़ने लगे। दोनों राज्याधिकारियों को शाही खरीते भेज दिये गये। महाराज बल्लभदेव ने उत्तर दिया—

"मैं क्षत्रिय हूँ, गुजरात की गद्दी पर मेरा अधिकार है, देश और धर्म के परम शत्रु गजनी के महमूद से भीख माँगकर नहीं, उसके सिर पर अपनी तलवार मार कर राज्य लूँगा।"

दुर्लभदेव ने सुना तो झटपट फकीरी बाना उतारकर राजकीय ठाठ से आकर उसने सुलतान की हाजरी बजाई नजर गुजारी और अपनी कमर से तलवार खोल घोड़े के मुँह में दे हाथ बाँध खड़ा हो गया।

उसके इस आचरण से सुलतान सन्तुष्ट हो गया। उसने अपने हाथ से तलवार उसकी कमर में बाँधी। आदर से बैठाया। सब शर्तें तय हो गईं। सुलतान ने उसे गुजरात का राजाधिराज स्वीकार कर लिया।

दूसरे ही दिन अनहिल्लपट्टन में धूमधाम से दुर्लभदेव का राज्याभिषेक हुआ। गुजरात में उसके नाम की दुहाई फर दी गई। चण्डशर्मा महामन्त्री के पद पर अभिषिक्त हुए।

परन्तु प्रजा ने कोई उत्सव नहीं मनाया। रूखा-सूखा राज्याभिषेक करा, होम, हवन, पूजा-पाठ की रीति पूरी कर, स्वर्ण दक्षिणा ले ब्राह्मण अपने घर गये। महमूद ने मनचाहा नजराना ले, लूटा हुआ माल-खजाना दो सौ हाथियों पर लाद, लाव-लश्कर के साथ पाटन से प्रस्थान किया।

६० : कन्यकोट की ओर

जब महमूद ने यह सुना कि पाटन से नलकोट तक, और आबू से झालोर तक राजपूतों की एक लाख तलवारें महमूद के स्वागत के लिए उतावली हो रही हैं तो उसका चेहरा भय से पीला पड़ गया। इतनी बड़ी सेना का सामना करने का साहस अब महमूद में न था। उसकी सेना में अनेक प्रकार के वहम और सन्देह घर कर गये थे। महामारी और दुर्भिक्ष से सिपाही बिल्कुल निस्तेज और हतोत्साह हो गये थे। वे अब वैसे भूखे भेड़िये न थे, जैसे गजनी के पहाड़ी इलाकों से शिकार की टोह में निकले थे। इस बार उनकी जीनों में सोना, मोती और हीरा, मुहर ठसाठस भरा पड़ा था और अब उनका मन युद्ध में नहीं, अपने घर जाकर मौज-मजा करने में लगा था। घर छोड़े उन्हें बहुत दिन हो चुके थे—वे अब पीछे लौटने को उत्सुक थे। अब वे युद्ध का खतरा नहीं उठाना चाहते थे।

परन्तु घर तो अभी बहुत दूर था और तलवार की धार पर पैर रखकर ही वे लौट सकते थे। अमीर के पास भी अनोल खजाना था। उसकी रक्षा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो उठा। उसके लिए वह अधीर होने लगा। शोभना के प्रेम ने उसे विचलित कर दिया था और अब वह दुर्दान्त योद्धा नहीं—आकुल-व्याकुल मिलन-आतुर प्रेमी था। जितने भी क्षण बीतते थे, उसके लिए भारी थे। वह जल्द-से-जल्द भारत की सीमा को पार कर प्रेयसी का प्रेम-प्रसाद पा धन्य हुआ चाहता था।

इतनी बड़ी सेना से लोहा लेना आत्मघात ही था इसलिए उसने राजपूतों की तलवारों से बचने के लिए सिन्ध की राह जाना श्रेयस्कर समझा और कन्यकोट

की ओर बाग मोडी। भम्भर पहुँचकर उसने अपने विश्वस्त ममलूक योद्धाओं की सरक्षता म खज़ाने के हाथियों को इस्लामकोट की ओर आगे रवाना कर दिया और आप सारा लावलश्कर लिये धीरे-धीरे सिन्ध में घुसा। छद्मवेशी दामो महता इसी ताक में थे। इसी क्षण तड़ित वेग से उनकी सांडनियाँ चारों दिशाओं को छूटीं।

अभी अमीर कन्यकोट पहुँच भी नहीं पाया था कि उसको सूचना मिली कि भीनमाल से अमरकोट तक राजपूतों की तलवारें छा रही हैं। अजमेर के नये चौहान राजा महाराजा वीसलदेव अपने चचा दुण्ढिराज के साथ पीलु के मैदान में उसकी राह रोके साठ हज़ार योद्धाओं के साथ महमूद के रक्त से अपने पिता धर्मगजदेव का तर्पण करने सन्नद्ध खड़े हैं। सुनकर अमीर डाढी नोचने लगा और उसका सिर घूम गया। आज उसे सोमतीर्थ का विजेता फतहमुहम्मद और तरुण मसऊद याद आ रहे थे। उसने देखा—मेरा सारा ही खज़ाना शत्रु की डाढ में चला गया। एक ओर से महाराज वीसलदेव और दूसरी ओर से साम्हरपति दुण्ढिराज धीरे-धीरे अमीर के माल-खज़ाना लादे हुए गज-सैन्य को दबोचने इस्लामकोट की ओर बढ रहे थे। इस प्रकार अमीर और उसके खज़ाने के बीच एक दीवार खडी होगई। इसी समय उसे यह दु खद समाचार मिला कि महाराज भीमदेव अमीर की पीठ पर दबाव डालते हुए भीनमाल से आगे बढ रहे हैं। अब तो अमीर को चारों ओर से मृत्यु मुँह बाये उसे समूचा निगल जाने को बिकराल रूप धारण किये निकट आती दीख पडी। अब यही नही कि इतने यत्न से लूटा हुआ उसका सारा माल-खज़ाना छिन जाने का भय था, उसका तो सर्वनाश ही समुपस्थित था। वह पागल की भाँति अपने खीमे में बफरे बाघ की भाँति घूम रहा था। उसके वज़ीर, सेनापति सब निरुपाय थे। अब उसके सामने एक ही राह थी कि वह कच्छ के अगम महारन में घुसने की जोखिम उठाये। परन्तु इस अगम रन को वह पार कैसे करेगा। उसके पास साधन कहाँ हैं। ऊँट कहाँ हैं? पानी कहाँ है? पथ-प्रदर्शक कहाँ है? वह किसका विश्वास करे, किसका आसरा ताके? कहाँ जाय? आज तो खुदा के बन्दे महमूद को खुदा भी राह नही दिखा रहा था। उसके सेनापतियों ने लडने से साफ़ इन्कार कर दिया था। निरुपाय अपने सब

धन-रत्न से निराश हो, वह पीछे भम्भर की ओर मुड़ा। कच्छ के महारन में घुसने के सिवाय उसका किसी तरह निस्तार न था।

बाग मोड़ने के समय उसने शोभना से कहलाया—"खुदा का बन्दा महमूद दौराने‌गर्दिश में है, वह आपको आज़ाद करता है, आपका जहाँ जी चाहे चली जायें। अब्बास अपने पाँच सौ सवारों के साथ आपकी रकाब के साथ है।"

परन्तु शोभना ने जवाब दिया—"यह रिहाई नहीं, बेबसी है। मैं मंजूर नहीं कर सकती। आपकी इस मुसीबत में मेरा भी हिस्सा है। अमीर नामदार जब अपने उरूज और इनबे पर हों और इस बन्दिनी को रिहाई देना चाहें तो उस समय देखा जायगा।"

शोभना के इस जवाब से महमूद इस विपत्ति में भी बाग-बाग़ हो गया।

९१ : भायातों की टक्कर

कच्छ में बहुत से भायात ठाकुर गिरासिये जागीरदार थे। ये सब छोटे छोटे राजा थे और अपनी-अपनी रियासत का प्रबन्ध स्वयं करते थे। केवल गुर्जरेश्वर को कर देते और दरबार में आवश्यकता होने पर हाजिरी बजाते थे। वे सभी सोमतीर्थ पर जूझ थे। उनमें अनेक वहीं खेत रहे, जो बचे वे, और जो खेत रहे उनके उत्तराधिकारी, इन सबने मिलकर खम्भात के उदाहरण से सावधान होकर अपना संयुक्त संगठन किया। सबने अपनी-अपनी सेना एक ही जगह एकत्र की, और उसका अधिपति माडवी के ठाकुर को बना दिया। जब अमीर पाटन के दर्बारगढ़ में बैठ गया और गुजरात में अपनी आन उसने फेर दी तो इन भायातों ने उसकी आन नहीं मानी, न ये अमीर के दर्बार में गये। इन्होंने भीमदेव को सूचना भेज दी कि इस बार यदि अमीर ने कच्छ की ओर मुंह किया तो उसका तलवार से स्वागत किया जायगा। वे ध्यान से अमीर की गतिविधि को देखने लगे। अब, जब अमीर ने भम्भर की ओर बाग मोड़ी तो भायातों की सैन्य चाक-चौबन्द हो भागे बढ़ी और उसने मदेसर में आकर उसका मुहाना रोक दिया।

अब तो महमूद को लड़ने के सिवा कोई चारा न रह गया था। उसके लिए तीन मार्ग थे, या तो वह भायातों की सेना से सम्मुख युद्ध करने का खतरा उठाये, या वह कच्छ के छोटे रन में घुसे और उसे पार कर काठियावाड़ में जा निकले या वह महारन में जाय। छोटे रन में घुसने का कोई अर्थ ही न था। वह उसके मार्ग से विपरीत दिशा में था। महारन के विकराल गाल में जाने के अतिरिक्त उसे दूसरी राह न थी, परन्तु भायातों की तलवारों का बिना उल्लंघन किये वह इधर-उधर

नहीं बढ़ सकता था। निरुपाय उसने सेना को व्यूहबद्ध किया और अविलम्ब भायातों पर धावा बोल दिया। उसने अपने तीन हज़ार धनुर्धर और इतने ही बलूची घुड़सवारों को दाहिने बाएँ आक्रमण करने की आज्ञा दी तथा दस हज़ार पदातिकों को उसने सम्मुख मार करने को अग्रसर किया। पर इस बार भाग्य उसके साथ न था। भायातों ने लड़ते-लड़ते और बिखरते हुए पीछे हटना प्रारम्भ किया अमीर ने इस कौशल पर ध्यान नहीं दिया। वह झटपट युद्ध का परिणाम देखना चाहता था। उसके बलूची सवार भायाती सैन्य को दबाते ही चले गये। दाहिनी ओर का मोर्चा हटते-हटते मीलों तक पहाड़ी उपत्यकाओं में फैल गया और अब वहाँ दो-दो चार चार योद्धा छुट-पुट लड़ने लगे। वे परस्पर सबन्धित न रहे। अन्त में अमीर की यह सेना वहीं घिर गई। बाईं ओर की सेना को दबाव डालकर छोटे रन में पेल दिया गया। पदातिकों पर निर्दय तलवार की मार पड़ी। वह सेना छिन्न-भिन्न हो गई और बोखला कर महारन में घुस पड़ी। सेना की यह दुर्दशा देख अमीर ने शोभना देवी को दो हज़ार सुरक्षित सवारों की रक्षा में खादर की ओर बढ़ने की आज्ञा दे, शेष समूची सेना ले भायातों पर धसारा किया। परन्तु शीघ्र ही उसे अपनी इस जल्दबाज़ी का परिणाम भी दीख गया। अवसर पाकर बगल के पहाड़ी प्रदेशों से निकल-निकल कर ठाकुरों ने अमीर की पीठ पर मार करनी प्रारम्भ कर दी। यह एक अनोखा और बेतुका युद्ध हो रहा था। सम्मुख सेना बिना लड़े-भिड़े भाग रही थी और अमीर उसे अपनी झोंक में खदेड़े लिये जा रहा था। परन्तु न जाने कहाँ से अनगिनत योद्धा छोटे-छोटे काठियावाड़ी घोड़ों पर निकल-निकल कर अमीर की पीठ पर घाव कर रहे थे। इस प्रकार से भायातों की सैन्य उसे मजौर तक धकेलती चली गई। यहाँ उसकी सेना अनेक दलों में बिखर गई और घिर गई। अब मजौर में स्थित नई सेना ने धसारा करके चारों ओर अमीर की सेना को घेरकर समेटना प्रारम्भ कर दिया। साक्षात् यम की डाढ़ में जाने की अपेक्षा अमीर ने शौर्य दिखाकर जूझ मरना ठीक समझा। उसने अपने साहसी योद्धाओं को ललकारा, परन्तु परिणाम यही हुआ कि केवल एक हज़ार सवारों के दल के साथ, वह भायातों की सैन्य-पंक्ति को भेदकर तीर की भाँति माण्डवी तक चला गया।

अब वह निश्चय ही पथभ्रष्ट था। अपनी राह से सैकड़ो कोस दूर, अपनी सेना से दूर और अपने मन्तव्य गन्तव्य से दूर। अब उसके बचने की एक ही आशा थी कि कोई छोटा-मोटा किला उसके हाथ लग जाय तो वह उसमें पनाह ले और फिर अपनी बिखरी हुई सेना का सगठन करे। माडवी पर उसने दृष्टि डाली पर माडवी सर करना उसके बूते की बात न थी। उसके साथ केवल एक हजार योद्धा थे। उसने निरुपाय हो मुद्रा की राह पर अश्व छोडा। आशा और निराशा के बीच उसका हृदय झूल रहा था। उसने सुना था कि मुद्रा में ठाकुर नही है महाजनो का पचायती राज्य है। वहाँ का किला समुद्र-तट पर खूब दृढ है। इसी से वह तेजी के साथ मुद्रा की ओर चला।

९२ : मुंद्रा में

अभी अच्छी तरह सूर्योदय नहीं हुआ था, रात भर पहरे-चौकी पर सजग पहरेदार ऊँघ रहे थे कि इसी समय एक तरुण धूलभरे वस्त्रों और बदहवास चेहरे से पाँव-पैदल मुंद्रा के राजमार्ग पर दौड़ा आता दृष्टिगोचर हुआ।

द्वार पर आकर उसने उद्वेगभरे स्वर में पहरेदार से कहा—"भाई, थानेदार की देहरी किधर है ?"

पहरेदार ने ध्यान से आगन्तुक की ओर देखा। आगन्तुक के पास घोड़ा, ऊँट या कोई हथियार भी न था। उसने अधिक प्रश्न नहीं किया। सामने एक ऊँची अट्टालिका की ओर उंगली उठा दी। आगन्तुक बिना एक क्षण रुके उसी ओर को बढ़ चला।

मुंद्रा का थानेदार अपनी देहरी के आगे एक पाटे पर बैठा दातुन कर रहा था। आगन्तुक ने उसके आगे पहुँच कर कहा—

"मुंद्रा के थानेदार से मुझे काम है।"

"कह, भाया, मैं ही थानेदार हूँ। क्या काम है ?"

"गज़नी का अमीर मुंद्रा की ओर दबादब आ रहा है।"

थानेदार चौंका, उसने कहा—"भ्रम तो नहीं हुआ ?"

"कैसा भ्रम, अपनी आँखों से देखकर आ रहा हूँ। भायातों की सेना से उलझ रहा है। उन्होंने उसे उसकी प्रधान सेना से पृथक् कर दिया है, वह एक हज़ार सवारों के साथ इधर ही भागा आ रहा है।"

"केवल एक हज़ार !"

"बस इतने ही। उसको सारी फ़ौज भायातों ने घेर ली है।"

"ठीक है, तुम ठहरो, खा-पीकर जाना, कहाँ के निवासी हो ?"

'मांडवी का हूँ, भायात उसे अजौर तक धकेल लाये। उसी में उसका मुख्य सेना से सम्बन्ध छूट गया। वह आत्मरक्षा के लिए इधर आ रहा है।"

समुद्र के तट पर मुंद्रा नगर एक अच्छा बन्दरगाह था। उसका किला दूर से काले दैत्य के समान जल-थल के यात्रियों को दिखाई देता था।

थानेदार की दातुन अधूरी रह गई। उसने अपनी सरबन्दी के जमादार को बुलाकर कहा—"शहर के सब दरवाज़े बन्द कर दो और उसकी रक्षा का पूरा इन्तज़ाम ठीक कर दो।"

इसके बाद उसने वस्त्र पहने। हथियारों से सुसज्जित हुआ और टेढ़े-तिरछे गली-कूचों को लाँघता हुआ एक बड़ी अट्टालिका में घुस गया।

अट्टालिका नगर के प्रमुख सेठ मेघजी की थी। सेठ भी अभी नित्यकर्म से निपट रहा था। उसने कहा—"सेठ, गज़नी का सुलतान आ रहा है।"

"क्या मुंद्रा में ?" सेठ ने आश्चर्य और आतंक से कहा।

"हाँ, परन्तु घबराने से काम नहीं चलेगा। जाओ तुम, सब महाजनों और नगर-निवासियों को कह दो, स्त्री-बच्चों को किले में पहुँचा दें। और सब मर्द, अपने-अपने हथियारों से सजकर नगरकोट पर चढ़ जायँ। आज सभी को हथियार देना पड़ेगा।"

सेठ ने कहा—"अभी एक क्षण में मैं चला।"

थानेदार नगर-द्वार की ओर बढ़ा। वहाँ सरबन्दी के सब सिपाही शहर के दरवाज़े बन्द कर तीर, कमान और तलवारों से लैस अमीर के सत्कार को सन्नद्ध खड़े थे।

थानेदार एक वृद्ध राजपूत था। वह जन्म से कच्छी था। उसके मुख पर सफ़ेद गलमुच्छा और माथे पर सफ़ेद पाग, कमर में कच्छी बागा, बागे पर लम्बी तलवार, और फट में कटार लटक रही थी।

उसने किले की राग पर चढ़कर देखा कि दूर धूल उड़ती आ रही है। देखते ही देखते सवारों के हथियार धूप में चमकने लगे। सबके आगे अरबी घोड़े पर

सवार अमीर महमूद था।

इसी बीच अपने-अपने तीर-कमान, पत्थर और तलवार, जो जिसके हाथ लगा, लिये सैकडो नगर-निवासी किले की राग पर चढ आये थे।

थानेदार ने कहा—"भाइयो, घबराना नही, और व्यर्थ अपने तीर नष्ट मत करना। अमीर भायातो की सेना से ताडा हुआ मुद्रा के किले की शरण पाने आ रहा है। उसके साथ केवल हजार सिपाही हैं। आज उसकी खैर नही है। ज्यो ही मेरा तीर छूटे, सब एक साथ तीर छोडना। पहले कोई न छोडे।"

सबने थानेदार की बात गाँठ बाँध ली। हजारों आदमी साँस रोककर समय की प्रतीक्षा करने लगे। सैकडो तीर धनुष पर चढे छूटने को तैयार थे।

अमीर की सेना निकट आई और थानेदार का तीर सनसनाता छूटा। साथ ही सैकडो तीरो की बौछार पडी।

अमीर की बढती हुई सेना रुक गई। तीरो से बिधकर घोडे हवा में उछलने और हिनहिनाने लगे। सैनिक चीत्कार कर उठे।

अमीर घोडा उछालता आगे बढा। उसने तलवार ऊँची करके कहा—"मैं गजनी का सुलतान तुम्हे हुक्म देता हूँ कि दरवाजे खोल दो और किला हमारे तावे करो।"

"किन्तु यहाँ गजनी के सुलतान का अमल नही है।" थानेदार ने हँसकर कहा।

"क्या तुम्ही मुद्रा के थानेदार हो ?"

"नामदार अमीर ने ठीक पहचाना।"

"तो तुम्हें जानना चाहिए कि तमाम गुजरात पर हमारा अमल है। और हम गुजरात के शाह हैं। दरवाजे खोल दो। मैं तुम्हे कच्छ का राज्य दूँगा।"

"दरवाजा एक शर्त पर खोला जा सकता है।"

"वह क्या है ?"

"यह कि गुजरात के बादशाह सुलतान महमूद हथियार रखकर अकेले शहर में दाखिल हो। फौज सब बाहर रहे।"

सुलतान ने होठ चबाये। क्रोध से गरजते हुए उसने कहा—"मैं मुद्रा में एक

भी आदमी जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।"

"यह बात पीछे देखी जायगी। अभी तो ग़ज़नी के अमीर को अपनी जान की खैर मनानी चाहिए।"

इसके साथ ही एक बाण अमीर की पगड़ी को उड़ाता हुआ दूर निकल गया और उसके साथ ही सैकड़ों तीर उस पर बरस पड़े।

क्रोध में अधीर हो अमीर ने अपनी सेना को फाटक तोड़ने का आदेश दिया। सैकड़ों सवार फाटक पर पिल पड़े, पर ऊपर से पत्थर तीर और बर्छी की मार से मर-मरकर वे ढेर होने लगे।

मध्याह्न काल आ गया। हवा में धूप और गर्मी भर गई। मुंद्रा के फाटक पर दोनों ओर से ज़ोर-आज़माई हो रही थी। इसी समय दूर से धूल के बादल उमड़ते दीख पड़े। अमीर ने भयभीत होकर इस नई विपत्ति को देखा, जिसका सामना करने की इस समय उसमें सामर्थ्य न थी। उसने जल्दी-जल्दी आक्रमण से विरत हो अपनी सेना को व्यवस्थित कर पीछे बाग फेरी। पीठ पर तीरों के घाव खाते अमीर के सैनिक लौट चले। परन्तु यह सब व्यर्थ था। उसकी सेना को चारों ओर से नये शत्रुओं की दृढ़ टुकड़ी ने घेर लिया। अमीर एक दुर्भेद्य चक्र के बीच फंस गया।

चारों ओर से मारता-काटता, वार करता यम के अवतार की भांति घुड़सवारों का यह फुर्तीला दल अमीर को दलमल करने लगा। ये सवार काठियावाड़ी मज़बूत टट्टुओं पर सवार, फुर्तीले और अद्भुत योद्धा थे। वे चारों ओर से घेरा समेटते-समेटते इस प्रकार सिमट गये कि अमीर के सैनिकों को हिलने-जुलने को भी स्थान न रहा।

इस दल का नायक एक ठिगना, मज़बूत और तेजस्वी योद्धा था। उसका रंग काला, आँखें लाल, चेहरे पर रगें भीगी हुई, भुजदण्डों पर उछलती हुई मछलियाँ, हाथ में रक्त से भरी नंगी तलवार।

महमूद घोड़ा बढ़ाकर सामने आया। उसने क्रोध और दर्प से कहा—"तू कौन है?"

"मैं पारकर का ताहर मियाना हूँ। डाका मारना मेरा खानदानी पेशा है।

तू कौन है ?"

"मैं गजनी का सुलतान महमूद हूँ।"

"तब तो बहार ही बहार है। सुना है गजनी के सुलतान महमूद के आदमी खूब मजबूत और घोड़े बहुत बढ़िया हैं।"

"तूने मेरी राह क्यों रोकी है ?"

"वाह, यह भी कोई पूछने वाली बात है ? यह तो मेरा पेशा है। हमारा भाग्य–जो तू हमारे हाथ चढ़ गया। घोड़े हमारे काम आएँगे और तुझे और तेरे आदमियों को रन में बेचकर अच्छे दाम उठाऊँगा।"

"तू डाकू है ? तुझे शर्म नहीं ?"

"अरे महमूद, हम तुम दोनों डाकू ही तो हैं। कल तेरा दाव था, आज मेरा है। तैंने दुनिया लूटी है। आज तू मेरे हाथ चढ़ा है। झटपट ताबे हो जा, नाहक खून-खराबी न करा।"

"तू क्या मुझे पकड़ना चाहता है ?"

"बेशक, पर दाम चुकाया कि छूटो।"

"कितना दाम ?"

"तीस लाख कोरी से कम नहीं। अकेले तेरे दाम। तेरे इस रेवड़ के अलग।"

"कितने !"

"करोड़ कोरी।"

अमीर का साँस रुक गया। गढ़ के कंगूरों पर चढ़े सैनिक ठठाकर हँस पड़े। प्रतापी विजयी सुलतान के लिए जीवन में यह पहिला ही समय पराभव का था। उसने तलवार ऊँची कर ताहर पर एक भरपूर हाथ मारा। ताहर ने घोड़ा कुदाकर उछाल भरी। उसने कहा—'बस कर, बेवकूफ, तू गजनी का सुलतान है, और मैं कच्छ के रन का राजा, तेरे ऊपर घाव नहीं करूँगा, नाहक इन पहाड़ी बकरों को मत कटा। या तो कोरी भर, नहीं तो घोड़े से उतर।"

इस समय अमीर के एक सरदार ने आगे बढ़कर तलवार से ताहर पर वार किया। वह अनजान में कन्धे में घाव खा गया पर बफरे हुए बाघ की भाँति उछल-

कर तलवार का एक तुला हुआ हाथ सरदार के सिर पर दिया। तलवार पगड़ी को चीरती हुई खोपड़ी के दो-टूक करती हुई छाती तक उतर गई। सरदार भूमि पर लोट गया।

अमीर ने उच्च स्वर से कहा—"खून-खराबे की ज़रूरत नहीं है, हम ताबे होते हैं।"

वह घोड़े से वीर दर्प से कूद पड़ा। ताहर ने कहा—"तू सवार रह और सब घोड़ों से उतर पड़ें। हथियार भी रख दें। देखते-देखते अमीर के सब सैनिक घोड़ों से उतर पड़े। अपने हथियार भी उन्होंने रख दिये। दुर्दान्त डाकू के साथियों ने कोतल घोड़ों की बाग मोड़ी, हथियार घोड़ों पर लादे और कैदियों को घरकर चल दिये। चलती बार ताहर ने दुर्ग की राग पर खड़े थानेदार को 'वालैकुम सलाम' कहा।

९३ : ताहर की गढ़ी में

अपने कैदियो को लेकर ताहर डाकू तेजी से लौट चला। वह राजमार्ग छोड जगल में घुसा। बीहड दुर्गम जगल में भूखे-प्यासे, गर्वीले, बलूची सवार अपने घोडे और हथियार तथा हिन्दुस्तान की समूची कमाई गँवा, पशु की भाँति बन्दी बने पाव प्यादे डाकुओ के साथ दौडे चल रहे थे। जब उन्होंने हिन्दू स्त्री पुरुषो को रोते-काँपते रस्सियो से बाधकर अपने घोडो के साथ निर्दयतापूर्वक घसीटा था, तब उन्होने उनके दुख, दर्द और दुर्भाग्य की कल्पना भी न की थी पर अब आज इस समय उन्हें अपनी गजनी की पहाडियो में प्रतीक्षा करती हुई पत्नियो और बच्चो की याद आ रही थी। वे अधीर हो रहे थे।

जगल के एक विस्तृत मैदान में एक स्वच्छ पानी का सरोवर था। वहाँ हरियाली भी काफी थी। ताहर ने वही डरा डाल दिया। कई डाकू कमर खोलकर हाथ-मुंह धोने और हवा खाने लगे। बहुत से डाकू घोडो पर चढकर आसपास के गाँवों में से भेड-बकरियाँ लूट लाये। बात की बात में पशुओ को काट-कूटकर वे खा गये। कैदियो को भी भोजन दिया। ताहर ने महमूद को पास बैठाकर भोजन कराया और वे फिर आगे को चले। रात भर वे चलते ही चले गये। दूसरे दिन उजाड रेगिस्तान के लक्षण दीख पडने लगे। चारो ओर बालू के टीले, थूहर और नागफनी के काँटदार झाड, बबूल और पीलू के इक्का-दुक्का पेड़, कही-कही पहाडी टीले, सूखी नगी चट्टानें।

अन्त में ताहर की गढ़ी जो कच्ची मिट्टी की बनी थी, आई। गढी की दीवार बारह हाथ चौडी थी। एक के बाद एक, इस प्रकार उसके तीन परकोटे थे। ताहर ने भीतर

"यहीं कहीं, रन के इधर-उधर।"

"क्या बहुत कीमती ?"

"तेरा तावान हज़ार गुना महमूद दे सकता है, पर उस दौलत की कीमत नहीं।"

"उसका अता पता ?"

"वह एक नाज़नीन है।"

'ग्रोफ़' ताहर खूब ज़ोर से ठहाका मारकर हँसा। उसने कहा—"वाह यार, खूब दिलफेंक है तू महमूद। मगर कह, कैसी है वह महबूबा ?"

"लामिसाल है, सूरत में भी ग्रौर सीरत में भी।"

'तो खुदा की कसम, मैं उसे ग्रभी ढूँढ लाऊँगा। लेकिन इनाम क्या देगा ?"

"ग्रपनी सारी दौलत, बादशाहत, ग्रौर तू माँगे तो जान भी।"

"तो तू इत्मीनान रख, तेरी दौलत सूरज निकलने से पहिले ही तुझे मिल जायगी।"

ग्रौर ताहर डाकू ने ग्रपने सैकड़ों डाकुग्रों को शोभना की खोज में भेज दिया।

ख्वाजा ग्रब्बास ग्रपने ढाई हज़ार मुस्तैद सवारों के साथ रन की बांक में पड़ा ग्रमीर की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बहुत से गोइन्दे ग्रमीर की तलाश में भेज रखे थे। ताहर के ग्रादमियों ने शीघ्र ही उन्हें पा लिया ग्रौर सूर्योदय से प्रथम ही उन्हें ताहर की गढ़ी में ले ग्राये। सवारों को बाहर रख उन्होंने ताहर को सूचना दी। महमूद की ग्रँगूठी लेकर ताहर का ग्रादमी बाहर गया ग्रौर शोभना को सांडनी को भीतर ले ग्राया। बाकी सवार बाहर रहे।

शोभना को पाकर ग्रमीर ने दोनों हाथ उठाकर खुदा की बन्दगी की, ग्रौर कहा—"मैं महमूद खुदा का बन्दा, वही कहूँगा, जो मुझे कहना चाहिए, मैं ग्रपने करार का पक्का हूँ ग्रौर ग्रपने सब सिपाहियों को हुक्म देता हूँ कि उनकी जेबों में जो कुछ जर-जवाहरात हों, ताहर के कदमों में ढेर कर दें। हर एक को गजनी लौटने पर चौगुना मिलेगा।"

देखते-ही देखते ताहर के सामने हीरे, मोती, सोना ग्रौर ग्रशर्फियों का ढेर

लग गया। महमूद ने अपने अंग से उतारकर कीमती मोती और पन्ने के कण्ठे, दस्तबन्द और कमरबन्द ताहर के सामने रख दिये। सिर्फ लालों की तस्बीह हाथ में रख ली जिसकी कीमत पचास लाख दीनार थी। यह देखकर शोभना ने भी अपने सब रत्नाभरण ताहर के ऊपर फेंक दिये। ताहर ने कहा—

"तुम से तावान नहीं लूंगा।"

"तावान नहीं, इनाम है।" शोभना ने रानी की गरिमा से कहा।

"इनाम?" महमूद ने शोभना के आगे सिर झुकाया।

इतने हीरे, मोती, जर-जवाहरात का ढेर देखकर ताहर खुशी से नाचने लगा। उसने कहा—"महमूद, यह तो सचमुच बहुत ज्यादा है। तू जितना चाहे वापस ले जा।"

"लेकिन जितना मैं देना चाहता था, उतना यह नहीं है।"

"अब तो तू सचमुच बादशाह है, ला दोस्ती का हाथ दे।"

महमूद ने अपना हाथ बढ़ाया। ताहर ने कहा—"अब माग ले, दोस्ती के सिले में जो चाहता है।"

"देना चाहता है तो मेरे आदमियों को घोड़े और हथियार दे दे। उनकी जीनों में जो जर-जवाहरात है, उन्हें बेशक ले ले।"

ताहर राजी हो गया। अमीर जाने लगा तो ताहर ने सदल-बल उसको दावत दी। नाच-रंग किया और अमीर महमूद अपनी दिलरुबा शोभना देवी को साडनी पर सुनहरी काम की जाली में बैठाकर सवारी सहित रन की ओर बढ़ा। ताहर से उसने महारन के सम्बन्ध में बहुत बातें पूछीं और पथदर्शक साथ ले कूच बोल दिया।

६४ : कच्छ का महारन

इस रन में रेत-ही रेत है। तीन सौ मील के विस्तृत मैदान में न एक झाड न पानी का ठिकाना। लाल-लाल रेत के पर्वत जो आंधी के थपेडों के साथ कभी इधर और कभी उधर अद्भुत और नये-नये दृश्य उपस्थित करते हैं। रह-रहकर रेत के भयानक तूफान आते हैं, और आग की भांति जलती हुई रेती की चट्टानें इधर-उधर घूमती प्रलय का दृश्य उपस्थित करती हैं। उनके बीच मनुष्य, हाथी, घोडा, पशु, पक्षी जो आता है उसकी समाधि लग जाती है। जो कोई जीवित मनुष्य इन रेतीले तूफानों के थपेडों में घिरता है उसे इस रेत में जीवित समाधि ही लेनी पडती है। दिन में सघन अन्धकार छा जाता है।

रन के मध्यस्थल में रनथम्भी माता का मन्दिर था। यह मन्दिर एक टेकडी पर था। कच्छ काठियावाड के बहुत श्रद्धालु जन रनथम्भी माता की मान मानते और यहां आते थे। यह स्थान रन में एकमात्र हरा-भरा स्थान था। कच्छ के किनारे से यह तीसरे पडाव पर था। यहां तक का मार्ग उतना विकट नहीं था। राह में एकाध झाड दीख जाता था, कहीं पानी भी मिलता था। इस टेकडी पर एक पुराना मन्दिर, दो तीन टूटी-फूटी झोंपडियां और पांच-सात जंगली वृक्ष थे। एक तालाब था, जिसमें वर्षाऋतु का जल एकत्र होता था। जल दूषित था पर इसी को लोग पीते थे। इसके बाद आगे तीन सौ योजन तक न झाड, न पानी। रनथम्भी माता को लांघकर आगे रन में घुसना साक्षात् मृत्यु के मुंह में प्रवेश करने के समान था। रनथम्भी माता को लांघने की बात सुनते ही लोग सहम जाते थे।

गजनी के इस दैत्य को रोकने जहाँ दूसरी ओर एक लाख साठ हजार तलवारें सन्नद्ध थीं वहाँ इस नाके पर मरुस्थली के स्वामी घोघाबापा का वीर पुत्र सज्जन अकेला ही रनथम्भी के रन पर अपनी चौकी लिये बैठा था। वह सोच रहा था, यदि दुर्भाग्य उस डाकू को यहाँ से लाया तो फिर यहाँ से उसका निस्तार नहीं है।

महीनों से वह इस कठिन साधना में तप कर रहा था। वह और उसकी ऊँटनी जिसे वह अपनी सन्तान की भाँति प्यार करता था और जिसके जोड़ की साँडनी काठियावाड़ भर में न थी, इस पर उसे भरोसा था। वह उसे नित्य अपने साथ स्नान कराता, अपने हाथ से वृक्षों के कोमल पत्ते तोड़कर खिलाता, उसकी गर्दन सहलाता, उससे बातें करता और उसे प्यार करता था। कितनी सूनी रातें उसने इस मरुस्थली के सूने वक्ष पर व्यतीत कीं, कितनी आँधियाँ, कितने तूफ़ान देखे। कितनी बार वह प्रलय के तूफ़ानी अंधड़ों को निमन्त्रित कर चुका था।

भूमिया लोग और श्रद्धालु यात्री जो रनथम्भी माता की मान मान यहाँ आते, वे संसार में कहाँ प्रलय हो रहा है—इसका उड़ता-गिरता वर्णन करते। सोमनाथ का पतन हो गया। देवता की प्रतिष्ठा भंग हो गई और गुजरात का राजा न जाने कहाँ चला गया। सारे गुजरात पर अमीर की दुहाई फिर गई है और सब जगह आग और तलवार का राज्य है। यही सूचनाएँ उसे मिलती रहती थीं। भूमिया लोग कभी-कभी उसे रोटियाँ ला देते, कभी वह सत्तू-चना खाकर पड़ा रहता। वह घण्टों तक आँखों पर हाथ रखकर अपने शत्रु को रनथम्भी के कराल गाल में प्रविष्ट होते देखता रहता।

अन्तत उसने एक दिन सुना—गजनी का ैत्य रन में धँसा चला आ रहा है। उसने अपनी साँडनी को थपथपाया। हर्ष से उसके रक्त की एक-एक बूँद नाच उठी। उसने कहा—"अब, बस, अब भगवान सोमनाथ रुद्रावतार तृतीय नेत्र खोलेंगे।"

और एक दिन उसने देखा, काली-काली चींउटियों-सी रेंगती हुई रन में बढ़ रही हैं। जैसे साँप कुण्डली मारकर बैठ जाता है उसी प्रकार अमीर की सेना ने टेकड़ी को चारों ओर से घेर लिया। दैत्य के समान तुर्क पठान सैनिक तालाब

पर पिल पडे। सारा पानी उन्होंने ऊँटों में भर लिया। अन्तत. उनकी दृष्टि सज्जन पर पडी। मैले वस्त्र, बढी हुई डाढी, दुर्बल शरीर, गढे में धँसी आँखें. उलझी हुई मूछें। वे उसे पकडकर सेनानायक के सामने ले गये। सेनानायक पूछा—

"तू कौन है ?"

"मैं भूमिया हूँ।"

"कहाँ का ?"

"भम्भरिया का।"

"तू रन का मार्ग जानता है ?"

"जानता हूँ।"

"हमें राह दिखा सकता है ?"

"न।"

"क्यों ?"

"रनथम्भोमाता की आन है। माता को लाँघकर कोई रन में नहीं जाता।"

"तू गया है ?"

"गया हूँ।"

"तो मार्ग दिखा, तुझे सोना मिलेगा।"

"नही दिखाऊँगा।

सज्जन ने मूर्ख भूमिया का अभिनय किया। नायक ने उसे पकडकर पहरे में रख लिया और अमीर की सेवा में पेश किया। अमीर ने देखकर पूछा—"क्यों राह दिखाने से इन्कार करता है ?"

"माता की आन है। माता को लाँघकर जाने से कोई जीता नहीं बचता।"

"लेकिन तुझे सोना मिलेगा।"

"कितना ?"

"बहुत।" अमीर के सकेत से एक पार्श्वद ने मुहरों से भरी एक भारी थैली उस पर फेंक दी। मुहरों को पाकर सज्जन ने खुश होने का अभिनय किया जैसे वह लालच में आकर अमीर को राह दिखाने को राजी हो गया हो।"

अमीर ने पूछा—"कितने दिन की राह है ?"

"आठ-दस दिन की।"

"दगा की—तो ज़िन्दा नहीं रहेगा।"

"ज़िन्दा कैसे रहूँगा।" सज्जन हँसा। उसे कड़े पहरे में रक्खा गया पर उसकी ख़ातिर ख़ूब की गई।

दो घड़ी विश्राम हुआ। और एक पहर रात गये अमीर ने रनयम्मी माता का उल्लंघन कर रन में प्रवेश किया। सबसे आगे सज्जनसिंह सांडनी पर सवार तारों की छाँह में तारों को देखता-परखता चला। उसके पीछे, अमीर के सब तीरंदाज़, पैदल—पदातिक, भारवाही ऊँट, खच्चर और घोड़े, उनके पीछे कीमती ऊँट पर जालीदार ज़रदोज़ी की काठी पर शोभना गुलाम अब्बास की कमान में पाँचसौ सवारों से घिरी हुई। इसके बाद अपने अरबी घोड़े पर सवार अमीर महमूद अपने बिलोची सवारों और ऊँटों के साथ। इसके पीछे कोतल हाथी, घोड़े, ऊँट और पानी—रसद। रात बीती दिन आया। विश्राम हुआ—फिर चले। दूसरा दिन, तीसरा दिन, चौथा दिन, अमीर की सेना रन में घुसती चली गई। परन्तु अब सूर्य का असह्य ताप झुलसाने लगा, घोड़े सब बेदम हो गये। पदातिक सिपाही लड़खड़ाने लगे। प्यास लगने पर बहुत कम पानी मिलता। घोड़े गिरकर मरने लगे। पैदल बेहोश होने लगे। ऊँटनियाँ हवा में मुँह उठाकर बलबलाने लगी। आकाश पर अंधड़ छा गया। ऊँटनियाँ इधर-उधर भागने लगीं पर सज्जन आगे ही बढ़ता चला गया। रेत के पर्वत इधर से उधर उड़ने लगे और हाथी, घोड़े, ऊँट उसमें डूबने लगे। अनगिनत बवंडर मनुष्यों और घोड़ों को लेकर घुमा-घुमाकर फेंकने लगे। हवा अधिकाधिक गर्म होने लगी। सैनिकों ने वस्त्र उतार कर फेंक दिये। रेत के बड़े-बड़े स्तम्भ बनने और आकाश तक उड़ने लगे।

सारी सेना की शृंखला बिगड़ गई। प्रबल वायु के थपेड़ों में बहकर हाथी, घोड़े, ऊँट, सब उड़ चले। अमीर ने तलवार ऊँची करके सज्जन से चीख़कर कहा—"तू कौन है शैतान ?"

"मैं भगवान सोमनाथ का गण हूँ। देख, भगवान सोमनाथ का वह तृतीय नेत्र !"

अमीर की तलवार उठी की उठी रह गई। एक भयानक काले बवंडर ने उसे घेर लिया। उसका घोड़ा उसी में चक्कर खाता हुआ उसे ले उड़ा। ऊँटनियां पूँछ उठाकर भागने लगीं। हाथी चिंघाड़ने लगे। घोड़े दो पैरों पर उछलने लगे। पैदल सवार सभी इस जलती-भुनती रेती में समाधिस्थ होने लगे। इसी समय प्रलय के समान घोर हुंकार भरते—शत सहस्र सूर्यों की भांति चमकते हुए रेत के पर्वताकार गोले आकाश में उड़-उड़कर भूमि पर फटने और अपनी चपेट में जीवित-अजीवित सभी को समाधिस्थ करने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रलय-काल आ पहुँचा है। अब वे रेत के टीले निस्सीम अग्नि-स्फुलिंग की भांति मंडलाकार घूमते—हाथी, घोड़े, ऊँट मनुष्य, सब को समूचा निगलते, हूहू घूघू करके प्रलय-गर्जन करने लगे।

इस प्रकार वह प्रलय का अंधड़—अप्रतिरथ विजेता महमूद की समूची विजयिनी सेना को अपने में लपेट, इस विनाश की दूत-राशि को विनाश के आँचल में लपेट कर विलीन हो गया। रुद्र का तृतीय नेत्र अपना संहार कर निमीलित हो गया।

९५ : सुर-सागर पर

प्रभात हुआ। आकाश स्वच्छ था और शीतल मन्द पवन बह रहा था। कल के विनाशक महाकाल के विकराल रूप का इस समय कुछ भी लक्षण न था। दूर तक लाल-लाल रेत के टीले ही टीले नजर आते थे। ऐसे ही समय में शोभना ने आँखें खोली। उसने देखा—उसका समूचा शरीर रेत में दबा पड़ा है और उसकी साडनी अपनी थूथड़ से उस पर अटे हुए रेत को उछाल रही है। थोडा बल लगाकर उसने अपने शरीर को रेत की समाधि से बाहर निकाला। वह उठ खडी हुई। साँडनी आगे आकर उसके निकट आ खड़ी हुई। शोभना ने प्यार से उसकी पूँछ को हाथों में लेकर थपथपाया। उसने अपने चारो ओर दृष्टि डाली। किसी जीवित जीव का वहाँ चिह्न न था। उसने सोचा—हे भगवान, यह इतना बडा लश्कर और वह प्रतापी महमूद, सभी इस मरुभूमि के भोग बन गये। न जाने किस अलक्ष्य आकर्षण से अभिभूत हो वह मन में अमीर के लिए एक वैकल्य अनुभव करने लगी। उसने महमूद के हृदय का प्यार देखा था और उसके आँसू भी। उन आँसुओं ने उसे द्रवित कर दिया, इस समय वह अपनी सम्पूर्ण चेतना से अमीर की कल्याण-कामना करने लगी। पर, जिस अमीर पर शोभना की कृपाकोर पड़ी है—वह अमीर है कहाँ ?

धीरे-धीरे सूर्य ऊँचा उठने लगा। उसने देखा—इधर-उधर कुछ काली-काली वस्तुएं रेत में चमक रही हैं। दौड़कर उसने पास जाकर देखा—हाथी, घोड़े, ऊँट, सिपाही थे। सबकी रेत में समाधि हो गई थी। वह सोचने लगी—क्या अमीर भी यहीं-कहीं चिर-निद्रा में सो रहा है। वह भावुका और उद्वेग

से भरी, दौड-दौड़कर एक-एक को देखने लगी। बहुत मनुष्य और पशु दम घुट जाने से मर चुके थे। कुछ में दम था—पर शोभना को उनके लिए कुछ करना शक्य न था। थोडी देर में उसकी दृष्टि किसी चमकदार वस्तु पर पड़ी। प्रभात की सूर्य की किरणों में वह वस्तु आग के अंगारे की भाँति दहक रही थी। बालू हटाकर उसने देखा तो उसका हृदय धड़कने लगा। हे ईश्वर, यह तो सुलतान की कलगी का लाल है। अवश्य ही सुलतान भी कहीं पास है। थोड़े ही परिश्रम से अपने घोड़े के शरीर के नीचे दबे हुए सुलतान महमूद को उसने खोज निकाला। ज़ोर करके उसने उसे घोड़े के नीचे से निकाला—नाक पर हाथ रखकर देखा—धीरे-धीरे साँस चल रहा था। छाती पर कान रक्खा—हृदय धड़क रहा था। शोभना आनन्द से विभोर हो गई। उसने भूमि पर माथा टेककर भगवान सोमनाथ की वंदना की और फिर इधर-उधर देखा—कोई देखने वाला न था।

पर उसे अमीर को होश में लाने की चिन्ता हुई। उसे यह देखकर परम हर्ष हुआ कि अमीर के घोड़े की ज़ीन में पानी की भरी हुई मशक पड़ी थी। उसने पानी लेकर स्वयं पिया। पानी पीने से उसके प्राण हरे हो गये। फिर उसने पानी की बूँदें अमीर के मुँह और आँखों पर डालनी प्रारम्भ कीं। थोड़ी ही देर में अमीर ने आँखें खोलीं। उसने अपनी आँखें इधर-उधर घुमाईं। इधर-उधर घूमकर उसकी आँखें शोभना के मुख पर केन्द्रित हो गईं। उसके होंठ हिले—पर शब्द नहीं फूटा। शोभना ने थोड़ा जल और उसके मुँह में डाला। जल पीने से अमीर की चेतना ठीक हुई। उसने ध्यान से शोभना की ओर देखा—उसे देखने का अभिप्राय था—तुम कौन हो? शोभना की आँखों में हर्ष नाच उठा। उसने कहा—"आप क्या बैठ सकते हैं?" उसने सहारा देकर उसे अपने पास बैठा लिया।

थोड़ी देर में अमीर की चेतना और शक्ति लौट आई। अब शोभना ने अपने मुख पर थोड़ा आँचल खींच लिया। फिर उसने मृदु कण्ठ से कहा—"क्या आप ऊँट पर चढ़ सकते हैं?"

अमीर ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। फिर उसने बेचैनी से चारों ओर देख-

कर कहा—"उस क़यामत के तूफ़ान में कौन-कौन जिन्दा बचा ?"

शोभना ने दो उंगली उठाकर कहा—"केवल दो। मैं और आप।"

"बहुत हैं, बहुत है।" शुक्र है खुदा का।

उसने वहीं, बालू से वजू किया और घुटनों के बल बैठकर नमाज़ पढ़ी। फिर फ़ातिहा पढ़कर दो मुट्ठी बालू उठाकर भूमि पर डालकर—"अलविदा, बहादुर साथियो" कहा। उसी के साथ दो बूंद आंसू खसक कर उसकी डाढ़ी को छू गये। फिर अमीर ने सहारा देकर शोभना को साडनी पर सवार कराया और आप भी सवार हुआ। रेत के समुद्र में तैरती हुई साडनी वहां से चल खड़ी हुई।

सूरज का ध्यान कर वह पूर्व की ओर बढ़ता चला गया। चारों ओर से गीधों की काली-काली टोलियां उसी ओर को चली आ रही थीं। उसने राह में रेत में ढके, उघड़े हाथी, घोड़े, ऊंट और सिपाहियों को चुपचाप पड़े देखा। बहुतों तक गीध पहुंच चुके थे। मीलों तक मुर्दों की कतार-ही-कतार बंधी थी। बीच-बीच में हाथी रेत में दबे हुए सूंड हिला रहे थे और घोड़े पड़े हुए पैर फड़फड़ा रहे थे। किसी-किसी मुर्दे सिपाही की आंखें गीधों ने निकाल ली थीं। कहीं-कहीं गीदड़ों के झुण्ड-के-झुण्ड रेत से मुर्दों को उखाड़ कर उनका पेट फाड़ आंतें खींच रहे थे। यह सब हृदय-विदारक दृश्य देखते हुए कठोर हृदय अमीर महमूद आंखों से अश्रु-विमोचन करते हुए चला जा रहा था, बिना राह की राह पर, भूख और प्यास, दुःख और दर्द से ओत-प्रोत, परन्तु शोभना के सान्निध्य से सम्पन्न।

तपता सूर्य इन आरोहियों के सिर पर होकर अस्ताचल को चला गया। दिशाएं लाल हुईं और फिर उन्होंने अन्धकार के पर्दे से मुंह ढांप लिया। इसी समय उनकी साडनी सुरसागर के तीर पर जा रुकी। अमीर साडनी से उतरा, शोभना को हाथ पकड़कर उतारा। पाल पर बसना बिछा दिया, उस पर शोभना को बैठने का सकेत कर उसने वजू किया, नमाज़ पढ़ी, और फिर चुपचाप आकर शोभना के सामने खड़ा हो गया।

वह गज़नी का सुलतान अमीनुद्दौला निज़ामुद्दीन कासिम महमूद, जो बीस वर्ष गज़नी के वीरों के शीर्ष-स्थल पर सुशोभित रहा, जिसकी विजयिनी तलवार का आतंक आधे भूमण्डल पर व्याप्त हो गया था, जिसने अपने साहस से अतुल

सम्पदा, सत्ता और वैभव प्राप्त किया था, खुरासान और गज़नी अधिकृत कर जो अतुल ऐश्वर्य का स्वामी बना, जिसने ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली, सपादलक्ष और गुजरात की संयुक्त सैन्यों को पराजित किया, जिसका प्रखर प्रताप दिदिगन्त में फैला था, जिसने नगरकोट की अपरिमित सम्पदा हस्तगत की, और मथुरा की शताब्दियों की संचित सम्पदा को लूट उसे भस्म कर दिया था, जिसने बड़े-बड़े अभिमानी पंडितों और श्रेष्ठियों को गज़नी के बाजारों में दो-दो रुपयों में बेचा था, जिसके शौर्य और तेज की यशोगाथा कविगण गाते नहीं थकते थे, जो अद्वितीय नेता, अप्रतिरथ विजेता और प्रचण्ड योद्धा था—आज सुरसागर के तीर पर एकाकी, तारों की छाँह में खड़ा, भूख की चिन्ता से चिन्तित, निरुपाय उस स्त्री का मुँह ताक रहा था, जिसका मूल्य उसकी नज़र में उसकी समूची बादशाहत से भी अधिक था। उसके कण्ठ से बात नहीं फूट रही थी।

शोभना ने पेट पर हाथ रखकर हँसते हुए कहा—"पेट का बन्दोबस्त।"

महमूद ने एक अँगूठी निकालकर कहा—"यह अँगूठी मेरे पास है, मगर यहाँ इसे मोल कौन लेगा?"

'एक अशरफ़ी मेरे पास भी है।"शोभना ने अशरफ़ी हथेली पर रखकर महमूद को दिखाई।

अमीर ने सिर हिलाकर भुनभुनाते हुए कहा—

"लेकिन इसका भुनाना इस वक्त ठीक नहीं है। लोगों को शक हो गया कि हमारे पास सोना है, तो अजब नहीं हम लूट लिये जायँ। फिर भी दो, मैं देखूँ।"

अमीर ने शोभना के आगे हाथ फैला दिया। शोभना ने अमीर का हाथ अपनी दोनों नर्म-नर्म हथेलियों में लेकर कहा—"यह हाथ क्या कभी किसी के आगे इससे पहिले फैला था?"

"नहीं।" अमीर ने झुककर शोभना की कोमल हथेलियाँ अपनी आँखों से लगा लीं। आँसुओं से शोभना की अञ्जलि भर गई।

धीरे-धीरे शोभना ने हाथ खींच लिया। उसने कहा—

"आप ठहरिए, मैं जाती हूँ।"

अमीर ने व्यस्त भाव से कहा—"नहीं बानू।"

"कैदी हूँ, भागूँगी नहीं। लेकिन ब्राह्मण की बेटी हूँ। सुर-सागर तीर्थ में मेरे लिए भिक्षा की कमी नहीं है।" वह हँसी। अपनी हथेली से अमीर का वक्ष छुआ और तेज़ी से चली गई।

और जब वह आई—उसके हाथ में एक हाँडी में दूध, कुछ भात और रोटियां थीं। अमीर ने हथेलियों पर रखकर भोजन किया और सागर-तीर पर जाकर चुल्लू से पानी पिया। फिर उसने साँडनी को भी जल पिलाया, आहार दिया। इस समय अमीर एक अत्यन्त कोमल भावुक भावना से ओत-प्रोत था। वह शोभना से दिल भर कर बात करना चाहता था, पर भावातिरेक से उसका कण्ठ अवरुद्ध था। शोभना का मुख चन्द्रमा की स्निग्ध चाँदनी में अपूर्व सुषमा प्रकट कर रहा था। वह चौला की क्षण-भर देखी मूर्ति को विस्मृत कर चुका था। और शोभना को निकट पाकर अमीर आज असहाय—एकाकी होने पर भी अपने को संसार का सबसे बड़ा बादशाह समझ रहा था। वह सब कुछ खो चुका था और सब कुछ पा चुका था।

९६ : छम छननननननन

सिन्ध के युद्ध में अमीर के चहेते ममलूक योद्धा महाराज बीसलदेव की कृपाण के भोग बन तिल-तिल कर कट मरे। जो बचकर इधर-उधर भागे उन्हें सिन्ध के अमीरों और जाटों ने लूट-पाटकर बराबर कर दिया। समूची गजसैन्य और अमीर का सारा खजाना लेकर राजपूतों की सेना धौंसा बजाती हुई पीछे फिरी।

इधर महाराज भीमदेव ने कन्थकोट से लौटते हुए तुर्क और ईरानी धनुर्धरों को पीठ पर करारी मार-मारकर उनका सम्बन्ध अमीर से तोड़, उन्हें छिन्न भिन्न कर दिया। अमीर की यह शक्ति-सम्पन्न सेना सर्वथा अनुशासन रहित हो, नष्ट-भ्रष्ट होकर सिन्ध और राजस्थान के उजाड़ इलाकों में बिखर गई। अपने लूटे हुए धन-माल के भय से जिसका जहाँ सींग समाया—भागकर छिप गया।

संयुक्त राजपूतों की सैन्य को लेकर महाराज भीमदेव सिद्धपुर लौटे, जहाँ दुर्लभदेव की साठ हजार सेना विद्रोही हो उनसे आ मिली। अब अवसर देख महाराज भीमदेव ने चढ़ी रकाब पाटन पर अभियान बोल दिया। दुर्लभदेव डरकर गद्दी छोड़ जंगलों में भाग गये और नगर-द्वार पर चण्डशर्मा ने महाराज भीमदेव का प्रमुख पौर-जनों के साथ स्वागत किया।

राज-गजराज पर महाराज भीमदेव की सवारी अनहिल्लपट्टन के बाजारों में निकली। गुजरात के इस तरुण त्राता के यश पूत दर्शन करने को समस्त गुजरात के प्राण ही पाटन में आ जुटे। पाटन का राजमार्ग फूलों से और बहुमूल्य स्वर्ण-खचित पाटम्बरों से सजाया गया था। घर-घर आनन्द की बधाइयाँ बज रही थीं।

नृत्य, गान, पान गोष्ठी-आयोजन हो रहा था। कंथकोट की दुर्लभ रणस्थली में जिन योद्धाओं ने शौर्य प्रकट किया था, उनका विविध प्रकार दान-मान से पौरषण सत्कार कर रहे थे। जगह-जगह अमल-कुसुम घोला जा रहा था। पुर-स्त्रियाँ घर-घर मंगल-गान कर रही थीं। आनन्द-बाद्यों से कान के पर्दे फटे जाते थे। गवाक्षों और वारजों से सुहागिनें और वधुएँ खील-पुष्प बरसा रही थीं।

महाराज भीमदेव का गजराज सुमेरुपर्वत की भाँति सिर से नख तक स्वर्ण-खचित मखमली झूल से सुसज्जित था। वह अम्बारी जिसमें गुर्जरेश्वर परम महेश्वर परम परमेश्वर श्री भीमदेव विराजमान थे—उसका स्वर्ण-कलश सूर्य के समान प्रभात की धूप में चमक रहा था। सवारी के आगे नगर-कुमारिकाएँ रवा-नृत्य करती जा रही थीं।

सुनहरी चूड़ियों से सज्जित राजगजदन्त पर एक चन्दन की चौकी रखी थी। चौकी पर राजनर्तकी नृत्य कर रही थी। गजराज ऊँची सूँड उठाये जैसे गुजरात के नये राजा का अभिनन्दन करता चल रहा था। उस गजदन्त पर का अद्भुत नृत्य देखकर लोग आश्चर्य और आनन्द से विह्वल हो रहे थे। जैसे वायु में चरणाघात हो इस प्रकार नर्तकी के चरण तैर रहे थे।

गुप्तवासिनी विप्रलम्भा चौला देवी अपने अछूते नवल प्रेम की अजस्र धाराओं को अपने नन्हें से कोमल हृदय में छिपाये, चण्डशर्मा के घर के झरोखे से लाज, आनन्द और उल्लास भरे नेत्रों से अपने अधीर प्राणों को धड़कते हृदय में यत्न से रोक, यह महोत्सव देख रही थी।

दामो महता अपनी चपल नीली घोड़ी पर सवार, दो-दो तलवारें कमर में बाँधे, कुसूमल पाग धारण किये, पान का बीड़ा चबाते, बगुले के पर के समान धवल चुन्नटदार बागा पहिने, कभी राज गजराज के इधर, कभी उधर, सारे जलूस पर नज़र डालते, आवश्यक आज्ञाएँ देते जा रहे थे।

राज-गजराज के पीछे एक सुनहरी हौदे में ब्राह्मण राज्यबन्धु चण्डशर्मा और मर्माकदेव बैठे बढ़ रहे थे। उनके पीछे गुजरात के प्रधान मन्त्री विमलदेवशाह की सवारी का हाथी था। विमलदेवशाह सिर से पैर तक उज्ज्वल परिधान किये, धनुष-बाण से सज्जित बैठे थे। उनके पीछे अश्व, रथ, गज, ऊँट और पैदल पलटन

थी। हाट-बाजार, चौबार, सतखण्ड महल, अटारी, बुर्ज, झरोखे, बारजे सब रंग-बिरंगी पोशाक धारण किये हुए दर्शनार्थी नर-नारियों से भरे थे।

महाराज वल्लभदेव ने राज्य त्याग तपस्वी की भांति एकान्त जीवन व्यतीत करना पसन्द किया और व अपने पिता महाराजाधिराज चामुण्डराय के पास शुक्ल-तीर्थ चले गये।

दर्बारगढ़ में दर्बार की भव्य तैयारियां थीं। विविध तोरण-पताकाओं से दर्बार-गढ़ सजाया गया था। सब राजा महाराजा, गिरासिए, जागीरदार, ठाकुर, भायात उपस्थित थे। यथाविधि राजतिलक सम्पन्न हुआ। बन्दी जनों ने पहिले पाटन का कीर्तिगान किया। राज पुरोहित ने सप्त तीर्थों का जल राजा के मस्तक पर सिंचन कर तिलक किया और घोषणा की— "महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक उमापति श्री सोमदेव वरलब्ध प्रसाद प्रौढ़प्रताप बालार्क अद्भुत पराभूत शत्रुगण श्री श्री श्री भीमदेव गुर्जरेश्वर का जय-जयकार हो।"

जय-जयकार की प्रचण्ड गर्जना से सभामण्डप गूंज उठा। फिर चारणों और भाटों ने महाराज की विरद बखानी। महाराज ने उन्हें सिरोपाव, इनाम-इकराम, जागीर बख्शीश दी। फिर भायातों ने भेंट दी, इसके बाद जागीरदार, गिरासिए राजा-महाराजाओं की बारी आई। महाराज भीमदेव ने युद्ध में काम आये योद्धाओं के उत्तराधिकारियों और परिजनों को नई जागीरें बख्शीं। वीरों को दान-मान, खिताब से सम्पन्न किया। फिर ब्राह्मणों, धर्म-संस्थाओं को दिये गये दान की घोषणाएँ हुईं। इसके बाद गुर्जरेश्वर श्री भीमदेव ने खड़े होकर सब को धन्यवाद दिया, आभार माना और धर्म की शपथ ली। प्रजा की सुख-शांति और समृद्धि की कामना की। चण्डशर्मा और मरमांकदेव को राज्य-बन्धु की उपाधि दी गई। विमलदेवशाह राज्य के प्रधान मन्त्री और दामोदर महता प्रमुख सन्धि-विग्राहिक अमात्य घोषित किये गये।

अन्त में नाचरंग की महफिल जमी और राज-नर्तकी के चरणाघात से घूंघरू बज उठे—छूम छननननननन।